CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

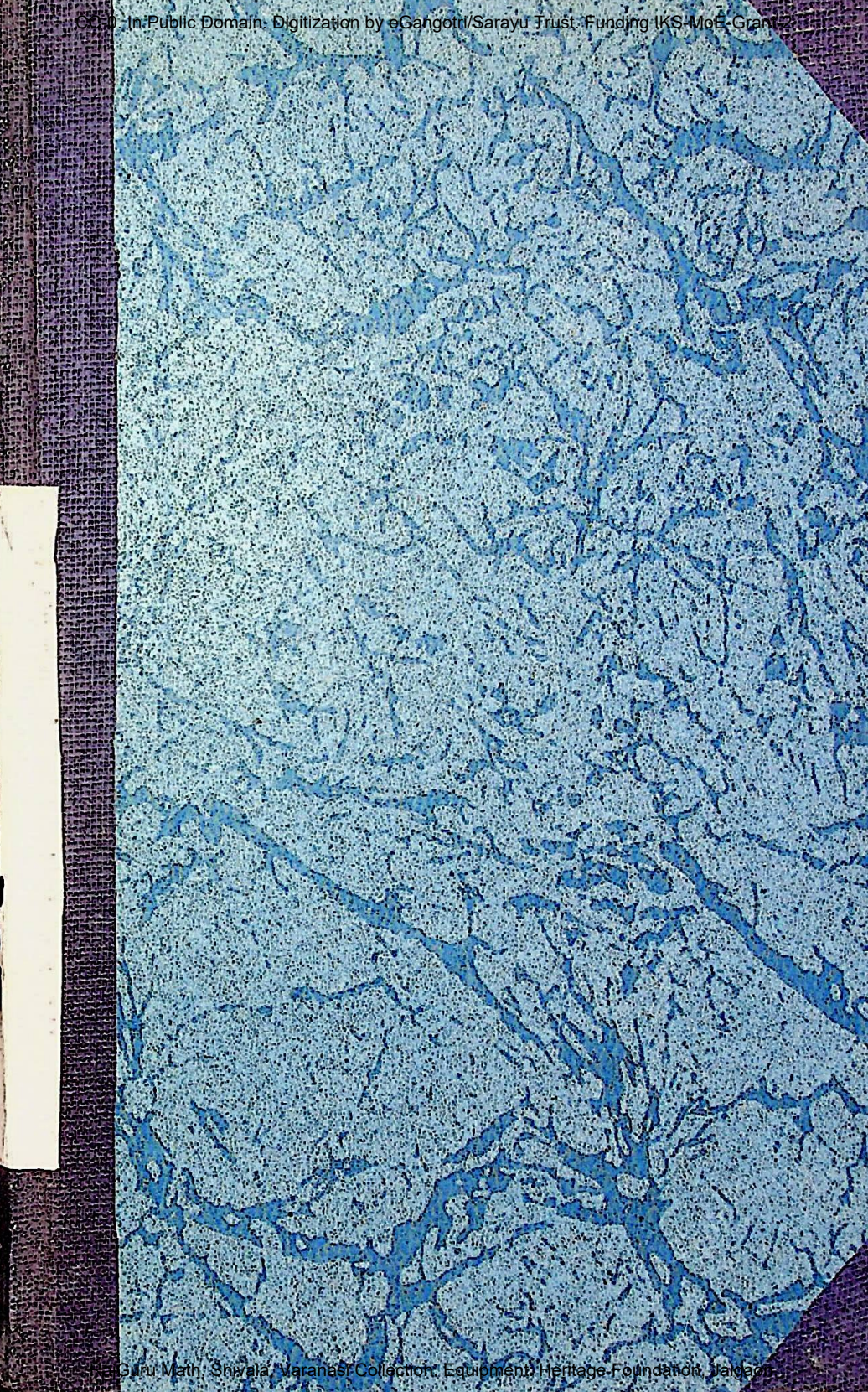

Digitized by Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jaigaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागवत-प्रबोध

पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
के सदुपदेश

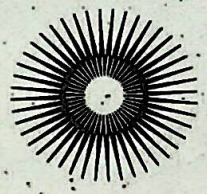

सङ्कल्पना
सुबुद्धानन्द ब्रह्मचारी
निजी सचिव - ज.शं.जी महाराज
ज्योतिष्पीठ / द्वारकापीठ

सङ्कलयिता
स्वामी सदानन्द सरस्वती
शारदापीठ, द्वारका, गुजरात

सम्पादक
स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती
श्रीविद्यामठ, केदारघाट, वाराणसी

स्वामी (डॉ.) महेश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक
निर्मलस्वरूप धमार्थ न्यास
"सद्गुरुछाया" 58/44 प्रिन्स अनवर शाह रोड
लेक गार्डेन्स, कोलकाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागवत-प्रबोध

पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
के सदुपदेश

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
तृतीय संस्करण ५०० प्रतियाँ

प्रकाशक
निर्मलस्वरूप धमार्थ न्यास
"सद्गुरुछाया" 58/44 प्रिन्स अनवर शाह रोड
लेक गार्डेन्स, कोलकाता

मूल्य : 40/- 50/- रुपये मात्र
15/9/2011.

मुद्रक
श्रीमाता कम्प्यूसिस प्रा. लि.
बी. 7/193, केदारघाट, वाराणसी
दूरभाष - 0542 - 2275272, 2275274

प्राप्ति स्थान
श्रीमाता साहित्य सदन
बी. 7/193, केदारघाट, वाराणसी फोन - 0542-2275272/74
राजराजेश्वरी सेवा मठ, कोन्नगर, हुगली, (प.ब.) फोन-033-26742001
श्री परमहंसी गंगा आश्रम, झोंतेश्वर, नरसिंहपुर (म.प्र.) फोन-07794-285201
श्री शारदापीठ, द्वारका, जामनगर, गुजरात फोन-02892-234064

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

एक ब्राह्मण को इच्छा हुई कि वह श्रीमद्भागवत का पण्डित बनकर पूरे देश में विशेष-विशेष लोगों को कथा सुनाए । अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिए वह काशी आदि विद्वद्क्षेत्रों में गया और वहाँ जाकर श्रीमद्भागवत का विधिवत् अध्ययन किया । अध्ययन के बाद उसने अपने परिचित राजा को पत्र लिखा कि अब मैं कथा में निपुण हो गया हूँ अतः आप आयोजन करें और मैं आकर आपको कथा सुनाऊँगा । राजा ने उत्तर में लिख भेजा कि अभी तो हमारी इच्छा नहीं है । एक वर्ष बाद पुनः सम्पर्क करने पर राजा ने एक वर्ष और रुकने को कहा । इसी तरह अनेक वर्ष बीत गए और उस पण्डित को श्रीमद्भागवत का अध्ययन करते-करते वैराग्य हो गया । उसने सोचा कि जिस कथा के समाश्रय से मुक्ति तक सुलभ हो जाती है, जिस कथा को पाने के लिए देवता अमृत लेकर विनिमय के लिए आ गए थे फिर भी न पा सके, उस दुर्लभ कथा को मैं थोड़े से रूपयों और प्रशंसा के लिए सुनाता फिरूँ यह उचित नहीं ।

वैराग्य हो जाने के बाद पण्डितजी ने संकल्प ले लिया कि एक ही क्षेत्र में रहकर परमात्मचिन्तन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना है । इधर राजा ने जब सुना कि पण्डित जी को वैराग्य हो गया है तो उन्होंने पण्डित जी को अपनी ओर से सन्देश भेजा कि अब हम कथा सुनने को सन्नद्ध हैं कृपया आप पधारें और हमें कथासुधा का पान कराएँ । लोगों ने राजा से पूछा कि आखिर जब पण्डितजी स्वयं बारम्बार आपसे कथा सुनने का आग्रह कर रहे थे तब आपने कथा न सुनी और अब सुनना चाहते हैं आखिर रहस्य क्या है ? राजा ने बताया कि जब पण्डित जी मुझसे कथा सुनने का आग्रह कर रहे थे तब उन्होंने केवल भागवत के श्लोक और उनके अर्थ पढ़े थे, केवल श्लोक और उनका अर्थ सुनने का कोई लाभ नहीं था । अब श्रीमद् भागवत उनके जीवन में उतर चुकी है । परमात्मा की ओर उनकी दृष्टि उन्मुख हो चली है । अब यदि उनसे कोई कथा सुनेगा तो उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन पर भी उनके द्वारा सुनाई गई कथा का असर पड़ेगा । यही कारण है कि अब मैं उनसे कथा सुनना चाहता हूँ ।

कहा गया है कि श्रीमद्भागवत के श्रवण की इच्छा मात्र से ही भगवान् स्वयं आकर हृदय में निवास करने लगते हैं । परन्तु वक्ता ऐसा होना चाहिए जिसके हृदय में भगवान् स्वयं निवास करते हों । आज के युग में ऐसा वक्ता मिलना कितना कठिन है यह किसी भी विचारवान् से छिपा नहीं है । उन लोगों का सौभाग्य ही होगा जिन्होंने आप्तकाम आत्माराम जीवन्मुक्त अमलात्मा योगीन्द्र भगवत्पाद शंकराचार्य जी महाराज की परम्परा में उनके द्वारा स्थापित चार आम्नाय पीठों में से शारदापीठ,द्वारका एवं ज्योतिर्मठ,बदरिकाश्रम के **अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज** के श्रीमुख से श्रीशुक की वाणी के श्रवण का लाभ प्राप्त किया है। पूज्यपाद महाराजश्री की मधुगम्भीर वाणी श्रोता के अन्तःकरण को आह्लाद से पूरित किए बिना नहीं रहती । श्रोता चाहे किसी भी आयु,बुद्धि,स्तर का हो उसे पूज्य महाराजश्री के प्रवचनों से स्वयं के उद्धार का पूर्ण आश्वासन प्राप्त होता है। यदि एक साथ लक्षाधिक लोग भी महाराजश्री के प्रवचन सुन रहे हों तो उनमें से सभी को एक साथ यह प्रतीति होती है कि पूज्यश्री का प्रवचन उसी को लक्ष्य करके किया जा रहा है ।

ऐसी गरिमामयी पुण्यवाणी का लाभ प्रत्येक भावुक को प्राप्त हो इसी भावना से अहमदाबाद में आयोजित विशाल श्रीमद् भागवतकथा में पूज्य महाराजश्री द्वारा किए गए श्रीमद्भागवत प्रवचन को संकलित करके शारदापीठ, द्वारका के मन्त्री पूज्य स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी ने सभी सनातन धर्मावलम्बियों के प्रति बड़ा उपकार किया है ।

हमें बड़ी प्रसन्नता है कि पूज्य महाराजश्री के श्रीमुख से निःसृत श्रीमद्भागवत के कथारूपी अमृत को भक्तों के समक्ष लाने का श्रेय **श्रीनिर्मलस्वरूप धर्मार्थ न्यास, कोलकाता** को मिल रहा है । आशा है इससे पाठकगण लाभान्वित होंगे।

-न्यासीगण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय संस्करण पर निवेदन

जब कोई परिणाम आशा और अपेक्षा से आगे बढ़कर मिलता है तब धीर, गम्भीर व्यक्ति अथवा संस्था का उत्साह उदधि की उन उत्ताल तरङ्गों का रूप प्राप्त कर लेता है, जो स्वाभाविक रूप से सहज गम्भीर माने जाने वाले सागर से समुद्भूत होती हैं ।

आज ऐसा ही उत्तुङ्ग उत्साह हममें भी संचरित हो रहा है जब अभी मात्र चार महीने पहले भक्तों को उपलब्ध कराए गए पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य **स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज** के श्रीमुख से निःसृत पुण्यमयी भागवती कथा के लिखित रूप **भागवत-प्रबोध** की एक हजार प्रतियाँ समाप्त हो गईं हैं और माँग बनी हुई है।

इतने कम समय में किसी ग्रन्थ का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना न केवल प्रकाशक का सुख-संवर्धन है अपितु उस गरिमामयी गुरुवाणी का गौरव भी है जिसके श्रोता और पाठक उसे प्राप्त कर धन्यता का अनुभव करते हुए आध्यात्मिक आनन्द में निमग्न हो जाते हैं ।

ग्रन्थ के प्रकाशन में पूर्व की भाँति ही पूज्यपाद शङ्कराचार्य जी महाराज के आशीर्वाद से संवलित और संवर्धित 'श्रीमाता कम्प्यूसिस प्रा.लि.' की संचालिका सुश्री सरला पाण्डेय जी एवं सुश्री नन्दिनी जोईस जी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। साथ ही महाराजश्री की आज्ञा से श्रीमद्भागवत की कथा को अपना जीवन समर्पित कर चुके 'अभिनव शुक' श्री हितेन्द्र पाण्डेय जी, जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती न्याय वेदान्त महाविद्यालय में अध्यापन कर रहीं श्रीमती विजया तिवारी जी का सहयोग भी विस्मरण योग्य नहीं है ।

एतदतिरिक्त अनेक ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन एवं वितरण कार्यों में अपना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान किया है । उन सभी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हम सभी पाठकों के प्रति अपना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने महाराजश्री की वाणी को अपनाने में हमें भी निमित्त बनाकर श्रेयोदान दिया है ।

पूज्य महाराजश्री के कृपापात्र शिष्य दण्डी स्वामी सदानन्द सरस्वती जी, दण्डी स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती जी एवं पूज्य महाराजश्री के निजी सचिव ब्रह्मचारी श्री सुबुद्धानन्द जी का सौजन्य एवं सहयोग तो हमारा सम्बल ही है । ये सभी हमारे इतने आत्मीय हैं कि हम उनके लिए कोई भी औपचारिक भावना प्रकट कर उन्हें अपने से अलग निरूपित नहीं करना चाहते ।

पूज्यपाद महाराजश्री की अनुकम्पा एवं संरक्षण से स्थापित 'निर्मलस्वरूप धमार्थ न्यास'- कोलकाता अपने उद्देश्यों के प्रति सतत समर्पित रहे, यही आकांक्षा है ।

-महुआ डे, इन्द्रनील डे
(न्यासीगण)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

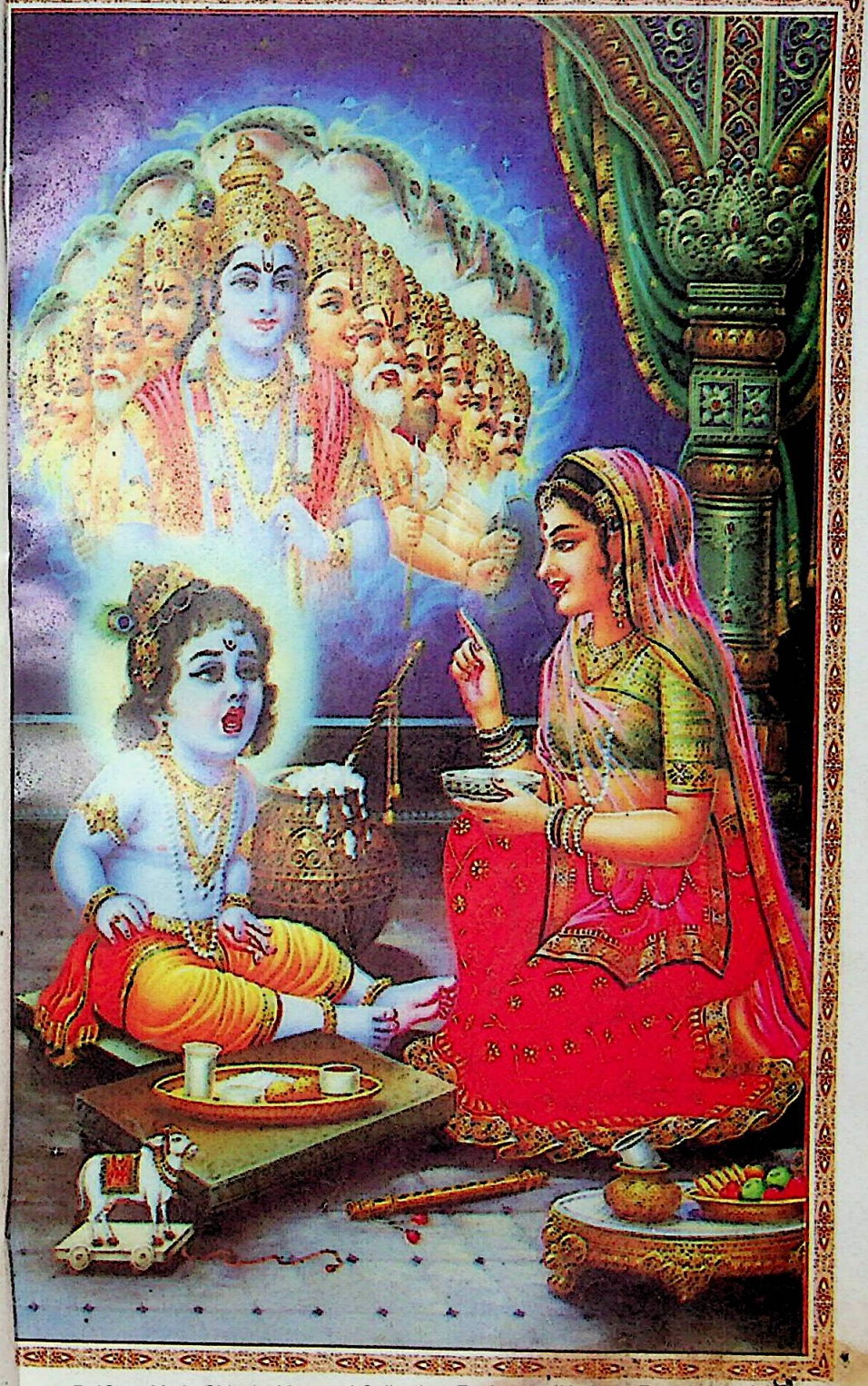

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaipur.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS MoE Grant 2

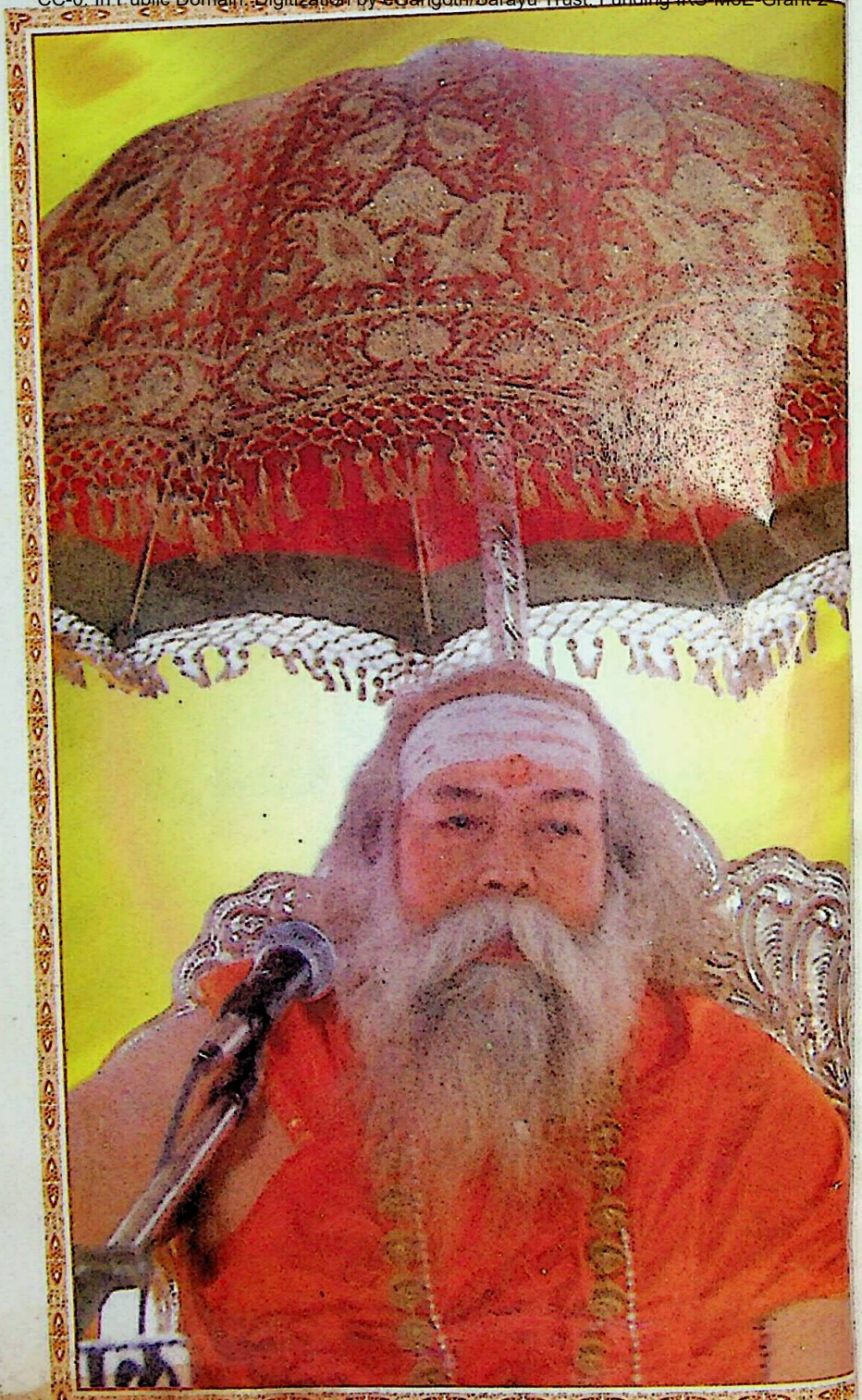

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम दिवस

समुपस्थित विद्वद्वृन्द, देवियो-सज्जनो !

जब जीव के जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर के पुण्यों का उदय होता है, तब उसको सत्संग मिलता है । उसमें भी श्रीमद्भागवत की कथा का श्रवण और अधिक पुण्यों का फल है । कहा है-

जन्मान्तरे यदा पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ।

(श्रीमद्भा.माहात्म्य1/12)

जब अनेक जन्मों के पुण्य सम्मुख होते हैं, तब प्राणी को श्रीमद्भागवत की प्राप्ति होती है । इसके चार अक्षर हैं—भा ग व त ।

भाति सर्वेषु वेदेषु गतिर्यस्य दुरत्यया ।
वरिष्ठः सर्वशास्त्रेषु तत्त्वं परं योगिनाम् ॥

(श्रीमद्भा.माहात्म्य)

भागवत क्या है ? भगवान् का तत्त्व । समस्त वेदों में यही तत्त्व प्रकाशित होता है । **'गतिर्यस्य दुरत्यया'** और जिसकी अवगति, जिसका अनुभव बड़ा ही कठिन है । इसका प्रतिपादक जो शास्त्र है -**'वरिष्ठः सर्वशास्त्रेषु'** वह सब शास्त्रों में वरिष्ठ है और **'तत्त्वं परं योगिनाम्'** योगियों का यह परम तत्त्व है।

श्रीमद्भागवत **पारमहंस्य संहिता** है अर्थात् परमहंसों की संहिता है । श्रीशुकदेवजी महाराज इसके प्रवक्ता हैं । वे एक परमहंस थे । उनके सम्बन्ध में कथा आती है कि वे माता के उदर में जब आये तो वर्षों बीत गये, माता के उदर से बाहर निकले ही नहीं । व्यासजी ने पूछा - 'बालक ! माता के उदर में ही बैठे रहोगे ! बाहर क्यों नहीं आते ?' तो उन्होंने कहा - 'मैं बाहर आऊँगा तो माया मुझे मोहित कर लेगी। गर्भ में मुझे अपने अनेक जन्मों का ज्ञान है । इसीलिये मैं यहीं बैठा भगवच्चिन्तन कर रहा हूँ ।'

व्यास जी ने आग्रह किया - 'नहीं, तुम बाहर निकलो ।' वे बोले - 'एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही शर्त पर मैं बाहर निकल सकता हूँ । यदि साक्षात् भगवान् शङ्कर आकर मुझे दीक्षा प्रदान करें ।' व्यासजी ने भगवान् शङ्कर से अनुरोध किया और उन्होंने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया । सोलह वर्ष तक माता के उदर में रहने के बाद शुकदेवजी माता के उदर से बाहर निकले । निकलते ही भगवान् शङ्कर ने उनको उपदेश दिया और वे विरक्त होकर निकल पड़े ।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यम् ।

(श्रीमद्भागवत 1/2/2)

विना उपनयन संस्कार के ही, समस्त कर्मों का परित्याग करके बालक संन्यास लेने चल पड़ा । श्रुति कहती है-

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः।

(महानारायणोपनिषद् 8/14)

न कर्म से, न प्रजा से और न धन से परमात्मा की प्राप्ति होती है, परमात्मा की प्राप्ति होती है तो त्याग से ही - **'त्यक्त्वैव हि तज्ज्ञेयम्'**।

अतः उन्होंने सर्व कर्मों का परित्याग स्वीकार किया और संन्यास ग्रहण कर लिया । **'सम्यक् न्यास'** जो सम्यक् प्रकार का न्यास अर्थात् त्याग है, उसी का नाम संन्यास है ।

त्यक्ता का जो प्रत्यक् परम पद है, त्याग करते-करते ही वह जाना जा सकता है । श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी ने देखा कि बालक ने जन्म तो ले लिया, लेकिन जन्म लेते ही संन्यासी बनकर निकल पड़ा । 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहते हुए वे अपने पुत्र को मनाने के लिये पीछे-पीछे चले । पुत्र ने मुड़कर भी नहीं देखा। गहन-वन में प्रवेश कर लिया। वहाँ पर शुकदेवजी ने तो उनके पुकारने का कोई उत्तर भी नहीं दिया परन्तु **'तन्मयतया तरवोभिनेदुः'** वे तो सर्वभूतात्मा थे । उनकी ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया - **'हा पुत्र !** अर्थात् जो अज्ञानी है, वही पुत्र होता है । अतः व्यास जी आप पुत्र हो, ये पुत्र नहीं हैं ।' व्यासजी लौट पड़े । उसके बहुत पश्चात् भगवान् की कथा से शुकदेव का हृदय आकृष्ट हुआ और फिर वे श्रीमद्भागवत की कथा सुनने के लिये व्यासजी के पास आये ।

श्रीशुकदेवजी महाराज परमहंस हैं। इसीलिये यह श्रीमद्भागवत **'पारमहंस्य संहिता'** कहलाती है । इसमें एक अमल परम-तत्त्व का ही गुण गाया गया है। इस श्रीमद्भागवत का श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ने प्रणयन किया ।

हमारी भारतीय संस्कृति का यह नियम है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय तो उसके पहले मङ्गलाचरण किया जाता है । अपने इष्ट देवता का स्मरण करके जब किसी कार्य को प्रारम्भ किया जाता है तो वह कार्य निर्विघ्न पूर्ण होता है। इतने बड़े ग्रन्थ का प्रणयन किया जा रहा है तब मङ्गलाचरण तो करना ही था।

मङ्गलाचरण तीन प्रकार का होता है - एक होता है प्रणामात्मक, दूसरा होता है आशीर्वादात्मक और तीसरा होता है स्मरणात्मक । यह जो मङ्गलाचरण है वह स्मरणात्मक है । अपने इष्ट देवता का मङ्गलाचरण में व्यास जी ने स्मरण किया।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(श्रीमद्भागवत 1/1/1)

व्यासजी बोले - **'सत्यं परं धीमहि'** हम परम सत्य का ध्यान करते हैं। **धीमहि** शब्द का प्रयोग किया । धीमहि शब्द वैदिक व्याकरण के अनुसार है। गायत्री में धीमहि आता है। धीमहि शब्द का प्रयोग करके मानो व्यासजी ने यह प्रकट किया कि 'यह साक्षात् गायत्री रूप है।' धीमहि की अगर हम लौकिक व्याकरण के अनुसार व्याख्या करें तो धीमहि का अर्थ होता है - **'ध्यायेम'**। हम उनका ध्यान करते हैं । ध्यायेम में बहुवचन है और ध्यान करने वाले अकेले व्यास हैं । श्रीधर स्वामी, जो भागवत के अच्छे टीकाकार माने जाते हैं, उन्होंने कहा - **'बहुवचनं शिष्याभिप्रायेण'** अपने शिष्यों के अभिप्राय से उन्होंने बहुवचन का प्रयोग किया । अर्थात् हम शिष्यों सहित उस परम सत्य का ध्यान करते हैं । वह परमसत्य क्या है ?

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्जायते न तु प्रतिज्ञामात्रेण ।

लक्षण और प्रमाण के द्वारा वस्तु की सिद्धि होती है केवल प्रतिज्ञा मात्र से नहीं होती है । लक्ष्य कौन है ? वह परमतत्त्व, परम सत्य, जिसका हम ध्यान कर रहे हैं । उसी का लक्षण करना है ।

किसी भी वस्तु के लक्षण दो प्रकार के होते हैं । एक होता है तटस्थ लक्षण और दूसरा होता है स्वरूप लक्षण । लक्षण उसको कहते हैं जो केवल लक्ष्य में ही रहे । **'लक्ष्यैकमात्रवृत्ति'** लक्षण ही **'सल्लक्षण'** माना जाता है । उदाहरण के लिये समझ लीजिये - आप 'गौ' का कोई लक्षण करें -**'गोर्लक्षणं किं'** अर्थात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गौ का क्या लक्षण है ? एक सज्जन खड़े हो गये । उन्होंने कहा - **'शृङ्गित्वं गोर्लक्षणं'** जिसको सींग है, वह गाय है । यह लक्षण तो है, लेकिन अतिव्याप्ति दोषयुक्त हो गया, क्योंकि सींग तो भैंस के भी होती है, बकरी के भी होती है। यह लक्षण गाय से अतिरिक्त अन्य प्राणियों में भी चला गया । इसीलिये अतिव्याप्ति दोष से युक्त होने के कारण यह लक्षण सल्लक्षण नहीं है । दूसरे सज्जन खड़े हुए । वे बोले - **'एकशफवत्त्वं गोर्लक्षणं'** जिसकी एक खुर हो वह गाय है । यह बिलकुल असम्भव है । गाय के दो खुर होते हैं । इसीलिये इसमें असम्भव दोष है । फिर तीसरे ने कहा - **'कपिलात्वं गोर्लक्षणं'** जो कपिला है, वह गौ है। **'कपिलात्वं गोर्लक्षणं'** यह कपिला गाय के लक्षण में चला जायेगा लेकिन जो श्यामा गौ है, उसमें तो लक्षण नहीं जायेगा । यहाँ अव्याप्ति हो गयी । **'लक्ष्यैकदेशवृत्तित्वमव्याप्तिः'**। लक्ष्य के एक देश में रहना अव्याप्ति है । फिर किसी विद्वान् ने कहा - **'सास्नादिमत्वं गोर्लक्षणं'** जिसके गले में सास्ना हो वह गाय है । यह सल्लक्षण हो गया क्योंकि गाय मात्र में सास्ना होती है और अन्य पशुओं में सास्ना नहीं होती ।

ऐसे ही ब्रह्म का लक्षण होना चाहिये । जो केवल ब्रह्म में ही जाय। ब्रह्म से इतर और कहीं सम्बन्धित न हो । पहले तटस्थ लक्षण के द्वारा ब्रह्म को व्यासजी ने लक्ष्य करने का प्रयास किया । **'जन्माद्यस्य यतः'** यतः अस्य जन्मादि । **यतः** माने जिस परमात्मा से **'अस्य विश्वस्य जन्मादि उत्पत्ति-स्थिति-संहारा भवन्ति'** अर्थात् जिस परमात्मा से इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, वह परम सत्य है, वही ब्रह्म है। **'जन्माद्यस्य यतः'** इसमें श्रुति भी प्रमाण है - **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'** (भस्मजाबालोपनिषद् 2/5) माने जिससे ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसमें रहते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, वह परमात्मा है। इसी रूप में श्रुति में भी है - **'तज्जलानीति शांतमुपासीत्'** उस परमात्मा का शान्त होकर अपने हृदय को सम बनाकर उपासना करें । इस प्रकार जो जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार का कारण है, उस परमात्मा को हृदय में समाहित करके ध्यान करें - **'शान्तमुपासीत्'**। यह लक्षण ब्रह्म में कैसे घटता है ? बोले - **'अन्वयादितरतः'** **'कार्येषु अन्वयाद्'** और **'अकार्येषु इतरतः व्यतिरेकात्'** जो परमात्मा से उत्पन्न है, उसमें परमात्मा का अन्वय है और जो परमात्मा से उत्पन्न नहीं हुआ है उसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमात्मा का व्यतिरेक है। परमात्मा का सबमें अन्वय है ।

आप यह समझ लीजिये कि पाँच प्रकार से वस्तु को हम जानते हैं - **अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप** । 'अस्ति' माने 'है' । 'भाति' माने 'प्रतीत होता है।' 'प्रिय' माने 'प्रियता है' उसमें । उसका कोई 'नाम' और 'रूप' है। पाँच प्रकार से ही संसार की प्रत्येक वस्तु का अनुभव होता है। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप । हम यह देखते हैं कि नाम और रूप में तो अन्तर हो जाता है । लेकिन अस्ति, भाति और प्रिय इन तीन में अन्तर नहीं होता । तीनों सर्वत्र एक से मिलते हैं। अब आप समझ लीजिये कि यह वृक्ष है । इसका भान होता है। वृक्ष प्रिय है । वृक्ष नाम है । वृक्ष रूप है । अब उस वृक्ष को काट दिया जाय तो उसकी संज्ञा हो गयी - लकड़ी । अब हम क्या कहेंगे ? लकड़ी है । लकड़ी का भान होता है। लकड़ी प्रिय है, लकड़ी नाम है और लकड़ी रूप है । अब उस लकड़ी से किसी ने मेज बना दी । अब हम क्या कहेंगे ? 'मेज है'। मेज का भान होता है, मेज प्रिय है । मेज नाम एवं रूप । वह मेज जीर्ण-शीर्ण हो गयी। हमने उसको जला दिया । कोयला बन गया । अब हम क्या कहेंगे? कोयला है। कोयले का भान होता है, कोयला प्रिय है। कोयला नाम है और कोयला रूप है। कोयले को भी सिगड़ी में जला दो। बची उसकी राख । तो कहेंगे कि राख है । राख का भान होता है, राख प्रिय है, राख नाम और राख रूप ।

अब देखो ! लकड़ी से लेकर राख तक नाम-रूप बदलते गये, लेकिन अस्ति, भाति, प्रिय का सबमें अन्वय है। इसी तरह से हम दूसरे-दूसरे पदार्थों को लें । कहीं पर आप देख लीजिये - यह पुस्तक है, यह घड़ी है। सबके साथ होना लगा हुआ है । मालूम पड़ना भी सबके साथ लगा हुआ है । प्रियता लगी है - पर नाम व रूप अलग है । पुस्तक का नाम अलग, घड़ी का नाम अलग और रूप भी अलग-अलग है । अस्ति का अर्थ होता है - 'सत्' और भाति का अर्थ होता है 'चित्' तथा प्रिय उसको कहते हैं, जिसमें आनन्द हो । सत्-चित् आनन्द का सर्वत्र अन्वय है । इसलिये सारा विश्व प्रपंच उसी सच्चिदानन्द से उत्पन्न हुआ है, यह सिद्ध हो जाता है । **'अन्वयाद्'** और जो उससे उत्पन्न नहीं हुआ है, उसमें अस्ति नहीं लगता है। बन्ध्या का पुत्र है, ऐसा कोई कहेगा? इसी तरह आप खरगोश की सींग, आकाश-कुसुम । पूछो, है ही नहीं । ये सभी अकार्य हैं। ये उत्पन्न हुए ही नहीं । इसलिए उनमें अस्ति, भाति, प्रिय का अन्वय न होने के कारण परमात्मा का इसमें अन्वय नहीं है । इसीलिये स्थिर नहीं है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्ति, भाति, प्रिय का जिनमें अन्वय है, वे परमात्मा के कार्य हैं । इस प्रकार जो सबका कारण है **'कार्येषु अन्वयात् अकार्येषु व्यतिरेकात्।'** अर्थात् कार्यों में अन्वय होने के कारण और अकार्यों में व्यतिरेक के कारण उसी परमात्मा से संसार की रचना हुई है। यह सिद्धान्त है । **जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतः।**

किसी ने कहा है कि आपने जो ब्रह्म का लक्षण बताया यह ज्यों का त्यों सांख्य शास्त्र में परिकल्पित प्रधान है । जिसको प्रकृति कहते हैं, उसमें यह समन्वित हो जाता है। प्रकृति से ही सारा संसार उत्पन्न होता है, प्रकृति में ही रहता है और अन्त में प्रकृति में ही लीन हो जाता है ।

प्रकृति माने कारण । जैसे मिट्टी से घड़ा पैदा हुआ । मिट्टी में घड़ा रहता है और अन्त में फूटकर मिट्टी में ही मिल जाता है । इसी तरह से जो यह प्रकृति है, इसमें तीन गुण हैं - सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण । सारे संसार में तीन गुण पाये जाते हैं । सत्त्वगुण से ज्ञान होता है, रजोगुण से कर्म होता है, तमोगुण से अज्ञान होता है। सत्त्वगुण से सुख होता है, रजोगुण से कर्म होता है और तमोगुण से मोह होता है । संसार की जितनी भी जड़-चेतन वस्तुएँ हैं, उनमें तीन स्वभाव मिलते हैं । किसी भी वस्तु को ले लीजिये । किसी का सेवन करने से ज्ञान होगा, किसी का सेवन करने से मोह होगा, किसी का सेवन करने से स्फूर्ति आयेगी, किसी में आलस्य आयेगा ।

इस संसार में हर प्राणी में, हर पदार्थ में हर चीज में हम तीन गुण पाते हैं और ये तीन गुण प्रकृति के हैं । प्रकृति को ही सांख्य शास्त्र में प्रधान माना गया है। इसीलिये क्यों न हम मान लें **'जन्माद्यस्य यतः'** अर्थात् जिससे संसार का जन्मादि हुआ हो, वह ब्रह्म है। तब प्रश्न उठता है कि आप प्रधान को ही ब्रह्म मानकर उसका ध्यान कर रहे हैं क्या? उस प्रधान का वारण करने के लिये कि ये लक्षण प्रधान में न चला जाय, इसके लिये ही व्यासजी ने कहा—**'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः ।' अर्थेष्वभिज्ञः** अर्थात् पदार्थों का ज्ञाता है क्योंकि बिना जाने कोई किसी वस्तु की रचना नहीं कर सकता । **'जानाति इच्छति अथ करोति'** अर्थात् किसी वस्तु को कोई जानता है, फिर उसको बनाने की इच्छा करता है, फिर प्रयत्न करके उसका निर्माण करता है। कुम्हार घड़े को बनाता है तो पहले घड़े को जानता है, फिर उसको बनाने की इच्छा करता है । तब उसके बाद चक्र चीवर लेकर उसका निर्माण करता है। उसका ज्ञान तो होना चाहिये । प्रकृति में ज्ञान ही नहीं, यह तो जड़ है। इसीलिये **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ब्रह्मसूत्र 1/1/5) यह ब्रह्मसूत्र है । **'अशब्दं'** माने **'शब्द प्रमाणरहितं सांख्यपरिकल्पितं प्रधानम् जगत्कारणं न '** सांख्य के द्वारा परिकल्पित जो प्रधान है, वह जगत् का कारण नहीं है ।

इसीलिये श्रुतियों ने कहा - **'तदैक्षत्** । **'एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय'** उस परमात्मा ने देखा कि 'मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ' यह देखकर उन्होंने सृष्टि की है । इसीलिये यह माना जा सकता है कि 'वह ज्ञानवान् है, जो इस तरह का रचयिता है, वह अज्ञानी प्रकृति नहीं है ।' **'अर्थेष्वभिज्ञः'** अर्थात् वह सर्वज्ञ है । **'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** ब्रह्मसूत्र में आता है - **'शास्त्रयोनित्वात्'**। शास्त्र क्या है ? **'शिष्यते हितमुपदिश्यते अनेन इति शास्त्रं'** जिसके द्वारा हित का उपदेश हो, उसका नाम शास्त्र है । वह शास्त्र कौन है ? वेद है, और वेद में समस्त विद्याएँ हैं । चतुर्दश विद्याएँ वेदों में पठित हैं । उन वेदों का जिसने निर्माण किया, स्वाभाविक रूप से उसका ज्ञान वेदों के ज्ञान से भी विशाल होगा । जैसे कोई लेखक किसी पुस्तक का निर्माण करता है तो उस पुस्तक में जितना ज्ञान होता है उससे उसको कहीं अधिक होता है । उसी प्रकार जिसमें अनन्त ज्ञान है, जो सर्वज्ञ है, वह परमात्मा है । उसी का हम ध्यान करते हैं।

फिर किसी ने यह प्रश्न कर दिया कि 'आप कहीं किसी ऐसे जीव का ध्यान तो नहीं कर रहे हैं, जिसने तपस्या करके सर्वज्ञता प्राप्त कर ली हो । जीव भी तो सर्वज्ञ हो जाता है ।' बोले - 'नहीं, इसने तो प्रयत्न से सर्वज्ञता प्राप्त की है, जिसमें सहज ही सर्वज्ञता है' - **'स्वेनैव राजते इति स्वराट्'** जो अपने द्वारा ही प्रकाशित हो वह स्वराट् होता है । स्वयं जो ज्ञानवान् है, वह स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा ही हमारे ध्येय हैं। **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्'** और **'आदिकवये ह्रदा ब्रह्म तेने'** जिस परमात्मा ने आदिकवि ब्रह्मा के हृदय में वेदों का विस्तार किया । **'ह्रदा'** माने संकल्पमात्रेण । सृष्टि के आरम्भ में जब ब्रह्माजी का जन्म हुआ तो भगवान् ने उनको अन्तःप्रेरणा से वेदमन्त्रों का साक्षात्कार कराया । भगवान् ने ब्रह्माजी को उपदेश नहीं दिया अपितु उनको हृदय में स्वयं वेदों के मन्त्रों का दर्शन हुआ । वेदमन्त्र उनके हृदय में प्रकट हुए । इस प्रकार ब्रह्माजी वेदज्ञ बने। कहते हैं कि उनके चारमुख थे । वेदों को उन्होंने चार मुखों से शिष्यों को बताया। इसलिये उनके चार विभाग हो गये । यहाँ परमात्मा **'आदिकवये ह्रदा ब्रह्म तेने** तथा **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्'** आदि कहकर यही बतलाया कि जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को वेद का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपदेश दिया,वेद को उनके हृदय में प्रविष्ट कराया, उन भगवान् के चरणों में मुमुक्षु होकर मैं शरण लेता हूँ । **'मुह्यन्ति यत्सूरयः । यत् यस्मिन् सूरयोऽपिमुह्यन्ति'** अर्थात् जिस परमात्मा से बड़े-बड़े सूर माने विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं ।

अब स्वरूप लक्षण कहते हैं - वस्तु के स्वरूप से पृथक् होकर वस्तु के स्वरूप का जो बोध कराये, वह हो गया तटस्थ लक्षण और जो वस्तु का स्वरूप ही हो, उस लक्षण को स्वरूपलक्षण कहते हैं। **'यस्मिन् परमात्मनि सूरयोऽपि मुह्यन्ति'** अर्थात् जिस परमात्मा के स्वरूप को जानने में **सूरी** माने बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं ।

प्रश्न आया 'यदि वे सूरी हैं तो मोहित क्यों हो गये? विद्वान् हैं तो मोहित कैसे हो गये? और यदि मोहित हो गये तो विद्वान् क्यों कहा उनको? इसके उत्तर में कहा गया है कि 'वह वस्तु ही ऐसी है।' **'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः। अतस्मिन्स्तद्बुद्धिरध्यासः'**। जो वस्तु नहीं है, उसमें उस प्रकार की बुद्धि हो जाना मोह कहलाता है । आत्मा-अनात्मा सर्वथा एक-दूसरे से पृथक् हैं ।

'युष्मद्-अस्मत्-प्रत्ययगोचरयोः' (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, अध्यास भाष्य भूमिका) युष्मद् अस्मद् प्रत्यय का गोचर जो आत्मा और जगत् है, वह आत्मा और अनात्मा है । इन दोनों का एकीकरण हो जाता है । इसके एकीकरण का नाम ही अध्यास है। अनात्मा को आत्मा में अध्यस्त कर देना इसको कहते हैं **'अन्योन्याध्यास'**। अनन्य में अन्य का अध्यास । अन्य कौन हुआ? 'परमात्मा' और इसमें अन्य माने अनात्मा तो अनात्मा का आत्मा स्वरूपाध्यास है और अनात्मा में आत्मा का संसर्गी अध्यास है क्योंकि यदि हम स्वरूपाध्यास मानेंगे तो जैसे आत्मा के ज्ञान से आत्मा का बाध हो जाता है इसी तरह अनात्मा के ज्ञान से आत्मा का बाध हो जायेगा । इसीलिये उसका बाध तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह अबाध है। सत् है तो उसके संसर्ग का बाध होगा ही । आत्मा के साथ अनात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है । उसका बाध होगा । इसी को कहते हैं - चिज्जड-ग्रन्थि माने जड़-चेतन की ग्रन्थि ।

जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

(श्रीरामचरितमानस उ.का. दोहा 116 बाद चौ 4)

जड़ और चेतन की जो गाँठ पड़ गयी है, वह यद्यपि सच्ची नहीं है । तो भी **छूटत कठिनई** । माने छूटना बड़ा कठिन है । सच्ची चीज हो तो छूट जाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

झूठी कैसे छूटेगी ?

एक पण्डितजी कहीं जा रहे थे । पैदल जाना था । उनका विचार था कि ब्राह्म मुहूर्त में निकलेंगे । सूर्योदय होने के साथ ही चलें तो वहाँ पहुँच जायेंगे। अपनी सदरी गले में टाँगी, लोटा डोर लिया, कुबड़ी गले में दबाई और चल दिये पण्डितजी । चलते-चलते शाम हो गयी । धीरे-धीरे अंधेरा छा गया। पण्डितजी को एक ठूँठ दिखायी पड़ा । उनको भ्रम हो गया कि यह ठूँठ कोई प्रेत है । वे रुक गये । उनका हृदय धड़कने लगा, इस सोच में कि कोई प्रेत सामने खड़ा है । वे हनुमान् चालीसा का पाठ करने लगे ।

भूत पिसाच निकट नहिं आवे। महाबीर जब नाम सुनावे॥

(श्रीहनुमान चालीसा)

लेकिन प्रेत हटे ही न । पण्डित जी ने कहा - 'बहुत बड़ा प्रेत है। यह हनुमान् चालीसा से नहीं भागेगा, गायत्री-मन्त्र से भागेगा। पण्डितजी ने अपने हाथ में जल लिया और लगे गायत्री मन्त्र पढ़ने । मन्त्र पढ़कर जल ठूँठ की ओर फेंका। फिर भी वह न हटा । कहा - 'बड़ा भयंकर प्रेत है ।' मन्त्र पढ़ते-पढ़ते जब पण्डितजी ऊब गये तो सोचा - 'यह हटता नहीं है तो इससे निबट ही लें।' सोचकर पण्डितजी ने अपनी सदरी एक तरफ फेंकी, लोटा और डोर एक ओर रख दिया और चलाया डंडा । डंडा चलते ही पता चल गया यह तो ठूँठ है । प्रेत नहीं है । अगर सच्चा प्रेत होता तो हनुमान् चालीसा और गायत्री मन्त्र से भाग गया होता । यह तो प्रेत था ही नहीं, प्रेत का भ्रम था ।

गाँठ सच्ची होती तो खोलने से खुल जाती । कर्म से हम उसको खोल सकते थे । लेकिन जो गाँठ वस्तुतः है नहीं और वह बन गयी है तो कर्म से उसका निवारण नहीं हो सकता । जो वस्तु अज्ञान से होती है, उसका निवारण ज्ञान से ही हो सकता है । अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता । यह अध्यास पड़ गया। अध्यास कैसे छूटे ?

रामायण की कथा आप लोग सुनते हैं । रामायण में आता है कि रावण सीताजी को हर ले गया और उन्हें अपनी लंका स्थित अशोक वाटिका में रख दिया। भगवान् श्रीराम सीता के वियोग में व्याकुल हो गये । उन्होंने सीता का पता लगाने के लिये हनुमान् जी को भेजा । हनुमान् जी ने सौ योजन के समुद्र को पार करके सीताजी का पता लगाया ।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो यह श्रीरामकथा अपने ऊपर भी लागू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है । आत्मा राम है । शान्ति सीता है । मोहरूपी रावण ने इस शान्ति रूपी सीता को अविद्या रूपी लंका में छिपा कर रखा है। आत्मा रूपी राम, शान्ति रूपी सीता के विरह में व्याकुल होकर विचार रूपी हनुमान् को उनका पता लगाने के लिये भेजते हैं । विचार रूपी हनुमान् शान्ति रूपी सीता की खोज में जब चलते हैं तब उनको सौ योजन का समुद्र सामने दिखलायी पड़ता है । यह सौ योजन का समुद्र क्या है ? यह देहाभिमान है । जब तक देहाभिमान रहेगा तब तक शान्ति कहाँ ? देहाभिमान रूपी समुद्र को लाँघने के लिये विचार रूपी हनुमान् जब चलते हैं तब तीन प्रकार की माया उनको घेरती है । सबसे पहले सात्त्विकी माया आती है । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं -

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥

(श्रीरामचरितमानस सु.का. चौ 9)

समुद्र ने देखा कि यह वानर हमें लाँघ कर जायगा तो हमारा अपमान होगा। इसीलिये उसके भीतर जो मैनाक पर्वत छिपा हुआ था, उसने उससे कहा - 'तुम यहाँ से बाहर निकल कर हनुमानजी को थोड़ा विश्राम करा दो, मेरी नाक रह जायेगी । यदि यह लाँघ गया तो मेरी क्या इज्जत रह जायेगी ?' तब मैनाक बाहर आया और हाथ जोड़कर हनुमानजी से बोला - 'महाराज ! आप कुछ देर विश्राम कर लें । समुद्र बहुत लम्बा-चौड़ा है ।'

जो भगवान् के भक्त हैं, दूत हैं, उनकी सहायता करना तो स्वाभाविक है। संत-महात्माओं की आप लोग सेवा करते हैं । उनको भिक्षा देते हैं । वस्त्र देते हैं । रहने के लिये छाया देते हैं । रघुपति के दूत भगवान् के मार्ग पर चलने वाले हैं, थोड़ा इनको सहयोग कर दो । इनकी साधना में सहायता कर दो । किसी प्रकार का विघ्न न आने पाये । इस बात का अपने जीवन में सदा ध्यान रखो।

हनुमान्जी ने देखा कि इस समय हम यदि सुख में आसक्त हो गये तो हमारी साधना नहीं हो पायेगी । सुख की आसक्ति साधना में बाधक है । सबसे अच्छा समय भगवान् के ध्यान का होता है ब्रह्म-मुहूर्त । आजकल लोगों को ब्रह्म-मुहूर्त में ही ज्यादा नींद आती है । करीब-करीब दो बजे के पहले तो कोई सोता नहीं है और ब्रह्म-मुहूर्त तो बस ऐसे लोगों के लिये आधी रात है। आठ बजे से पहले वे उठते नहीं। आप समझ लीजिये आजकल के जो 20-22 वर्ष तक के लड़के हैं, उन्होंने प्रभात देखा ही नहीं । आप पूछिये उनसे कि 'तुमने सबेरा देखा है? प्रातःकाल की शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन का क्या तुमने अनुभव किया है?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तर मिलेगा -'नहीं'। कैसा स्वर्णिम प्रभात है, यह पृथ्वी कैसी स्वर्णिम दिखायी पड़ती है क्या तुमने अनुभव किया है?' क्यों भाई? कहीं तो आनन्द का अनुभव उसे नहीं हुआ । वे मोह की निद्रा में पड़े रहे । एक लड़के से हमने पूछा-' तुमने सूर्योदय देखा है ? बोला-हाँ ! पूछा कब ? बोला-'टी.वी. में' । यह हालत है।

हम लोग कुछ दिन पहले प्रयाग में थे वहाँ बहुत से लोग माघ-मास में कल्पवास करते हैं । फूस की झोपड़ी में रहते हैं । टैण्टों में रहते हैं । प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ठिठुरते हुए त्रिवेणी में जाते हैं और वहाँ जाकर गोता लगाते हैं । गोता लगाने के पहले तो ठंड लगती है, लेकिन जैसे ही त्रिवेणी में गोता लगाते हैं, ठंड दूर हो जाती है, सूर्य का दर्शन होता है, उनको लोग अर्घ्य देते हैं । वह जो आनन्द आता है, उस आनन्द का अनुभव इन युवकों को नहीं हो सकता, जो नौ-दस बजे तक रजाई में लिपटे पड़े रहते हैं । उस आनन्द के लिये मोह का त्याग करना पड़ेगा । कई लोग तो ऐसा कहते हैं कि 'अरे भाई ! हमसे उठा नहीं जाता । हम तो सोये-सोये ध्यान कर लेते हैं । पाँच मिनट के बाद फिर सो जाएँगे । सत्त्वगुण से ही ध्यान होता है । लेकिन तमोगुण को दूर करने के लिये सत्त्वगुण पर्याप्त नहीं है । पहले उठो उसके बाद थोड़ा टहल लो । नहा लो ।

देखो, भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थ थे । उनके बराबर का गृहस्थ इस संसार में कौन होगा, जिनकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं । इतना बड़ा गृहस्थ आज कौन है ?

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/70/4)

भगवान् माधव ब्रह्ममुहूर्त में उठकर प्रसन्नान्तःकरण होकर उस आत्मा का चिन्तन किया करते थे । यद्यपि वे अनादि हैं, अनन्त हैं, एक है, स्वयं ज्योति रूप है। सत्संग में यदि आलस्य आता है या इस प्रकार की सोच रखने वाले कि कौन जाय, वहाँ बैठना पड़ेगा तो इस प्रकार के लोग सत्संग का लाभ उठा नहीं पाते। हनुमान् जी ने सोचा कि साधना में सुख बाधक है । सत्त्वगुण का कार्य सुख है । इसीलिए -

हनूमान तेहि परसा, पुनि तेहि कीन्ह प्रनाम।
राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहाँ बिश्राम ॥

(श्रीरामचरितमानस सु.का. दोहा 1)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सौ योजन के समुद्र को कौन पार करेगा ? देहाभिमान का त्याग वही कर सकता है, जो आत्मा और अनात्मा का विवेक कर दे । आत्मा और अनात्मा का जब तक अविवेक रहेगा, तब तक देहाभिमान से कोई मुक्त नहीं हो सकता । तब अविवेक एक राक्षसी के रूप में प्रकट हुआ ।

निसिचर एक सिंधु महँ रहई । करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं । जल विलोकि तिनकी परिछाहीं॥
गहहिं छाहँ सक सो न उड़ाई । एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥

(श्रीरामचरितमानस सु.का. दोहा 2 के बाद चौ 1)

एक राक्षसी समुद्र में रहती थी । नाम था माया । वह आकाश में उड़ने वाले जन्तुओं को खा जाती थी । 'गगनचर' अर्थात् पक्षी जो गगनचर होते थे। जल से उन जन्तुओं का कोई सम्बन्ध नहीं था । परंतु जल में जब उनकी छाया पड़ती थी वह राक्षसी उनकी छाया को पकड़ लेती थी । छाया के पकड़े जाने पर वह गगनचर जन्तु यह समझता था कि 'मैं पकड़ा गया' और वह निष्क्रिय होकर गिर पड़ता था । उसके गिरते ही वह राक्षसी उसे खा जाती थी । यही थी चिज्जड़ ग्रन्थि । अनात्मा के धर्मों को आत्मा में आरोपित कर लिया । अनात्मा में आत्मा का आभास पड़ा, प्रतिबिम्ब पड़ा तो अनात्मा के गुण-धर्मों को आत्मा में मान लिया । वे समझने लगे कि हम सुखी-दुःखी, संसारी हैं, अनेकानर्थ परिप्लुत हैं। बस, यही तो जीव के बन्धन का कारण है । शरीर के साथ जुड़ गये, शरीर के साथ जुड़ जाने के कारण अब हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं, अपनी आत्मा को कैसे जान सकते हैं ?

हनुमान्‌जी ने समझ लिया - यह जड़-चेतन की ग्रंथि है । इसको बिना खोले (बिना मारे) देहाभिमान रूपी समुद्र को पार करना कठिन है । इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा -

सोइ छल हनूमान सन कीन्हा । तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥

(श्रीरामचरितमानस उ.का. दोहा 2के बाद चौ 4)

इस रजोगुणी माया को हनुमान्‌जी ने सत्‌गुण से जीत लिया । अब आयी रजोगुणी माया सुरसा । चूँकि रजोगुण को सत्‌गुण से ही जीता जा सकता है अतः प्रथमतः सुरसा के साथ रजोगुण दिखाते हुए हनुमान भी बढ़ने लगे परन्तु अन्त में छोटे होकर विनयपूर्वक उसके शरीर में प्रवेश कर बाहर आ गये और उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्मान करते हुए विदा ली । इस तरह उस पर भी हनुमानजी ने विजय पा लिया । तमोगुणी लंकिनी पर भी विचार हनुमानजी विजय प्राप्त कर लिये । तब कहीं जाकर वे शान्ति रूपी सीता का पता लगा पाये । उन्होंने भगवान् आत्मारूपी राम को सूचना दिया । आत्मारूपी राम ने शमदमादि साधनरूपी वानर भालुओं की सेना लेकर उस क्रोध कुम्भकर्ण, मद मेघनाद और मोहरूपी रावण का वध करने के लिये अविद्या रूपी लंका पर आक्रमण किया । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि सब सखा थे रावण के । वे सब मारे गये और अन्त में मोह को मार कर भगवान् राम ने शान्ति रूपी सीता को प्राप्त करके परम सुख का अनुभव किया । कहने का मतलब यह है कि अध्यास का निराकरण होने पर ही मनुष्य को शान्ति मिल सकती है । लेकिन अध्यास बड़ा कठिन है ।

अध्यास कैसे आ जाता है ? **'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो'** तेज में, मरुभूमि में जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उन तेजोमयी सूर्य की किरणों में जल का भ्रम हो जाता है ।

मंदाकिनी के सामने बालुकाराशि है, तेज प्रकाश में लगता है मानो गंगा लहरें मार रहीं हैं । ऐसा प्रतीत हो रहा है - तेज में वारि और मृदा । काठ पड़ा हो काठ मिट्टी है, उसमें जल का भ्रम हो जाता है । युधिष्ठिर की सभा में दुर्योधन को जल में स्थल का भ्रम हो गया था और स्थल में जल का भ्रम हो गया था । **'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो'** जल में स्थल का भ्रम और स्थल में जल का भ्रम। जैसे जो वस्तु नहीं है, उसमें इस प्रकार का भ्रम हो जाता है और उसका भ्रम मिटना बड़ा कठिन होता है । जब तक अधिष्ठान का ज्ञान न हो, तब तक भ्रम दूर नहीं बड़ा कठिन होता है । अंधेरे में आप चले जा रहे हैं । रास्ते में टेढ़ी-मेढ़ी रस्सी पड़ी है। आपको भ्रम हो गया कि सर्प पड़ा है, आप चीख कर पीछे की ओर दो-चार कदम लौटते हैं आपका हृदय धड़कने लगता है । ओ हो ! यह साँप है, इसके ऊपर पैर पड़ जाता तो गये ही थे ।

आप आगे नहीं बढ़ सकते, जब तक आपको रस्सी का ज्ञान न हो जाय, तब तक आपको भय बना रहेगा, तब तक हृदय धड़कता रहेगा । रस्सी का ज्ञान होने पर ही साँप का भ्रम दूर हो सकता है और भ्रम के दूर होने के साथ-साथ भय और हृदय का धड़कना भी दूर हो जायेगा ।

इसी तरह आप कोई स्वप्न देख रहे हैं कि घर में चोर घुस गये हैं और आपके अच्छे से अच्छे सामान सब ले गये । आपके गले में जो आभूषण थे वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी ले गये । आपके हाथ में जो मुद्रिकाएँ थीं, वह भी ले गये । गले का हार भी ले गये । तिजोरी का सारा सामान ले गये । आप बड़े चिन्तित एवं असहाय-से हो गये कि जीवन भर की कमाई चली गयी । आप रो रहे हैं । अब आप बताइये कि आपका रोना कब बन्द होगा ? जब आप जाग जायेंगे । अरे, कुछ तो नहीं गया । यह तो सब हमने स्वप्न में देखा था । गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है -

जो सपने सिर काटइ कोई।
बिनु जागे दुःख दूरि न होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई ।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥

(श्रीरामचरितमानस बा.का. दोहा 117 बाद चौ 2-3)

जैसे स्वप्न में हमारा कोई सिर काट ले और हम सोचे बैठे रहें कि हाय! हम तो मर गये । परिवार का क्या होगा ? बेटे का क्या होगा ? बेटी का क्या होगा ? किसी की अभी शादी नहीं हुई है । सभी लड़के नासमझ हैं । हाय! मेरा परिवार तो बरबाद हो गया । मन में रो रहे हैं और देख रहे हैं कि हमारा शरीर कटा पड़ा है । इतने में सब बन्धु-बान्धव आदि ने रोते-गाते हमारी अर्थी बनायी। शरीर को उसमें रख कर बाँधा और 'राम-नाम सत्य है' कह कर ले चले। श्मशान में ले गये । लकड़ी की चिता बनाकर उसपर हमारे शरीर को रखकर चिता में आग लगा दी। अग्नि जोर पकड़ने लगी । हमारी चिता जल रही है । स्वप्न में हम अपने शरीर की दशा देखकर दुःखी हो रहे हैं। जिनकी कृपा से यह भ्रम मिट जाये, जो सोते से जगा दें वह कौन हैं ? गुरु ही सोते से जगा देते हैं । जो मोह की निद्रा में सो रहे हैं, उनको जागृत कर देना ही गुरु का कार्य है । इस दृष्टि से देखा जाय तो गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं -

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ।

जब तक भगवान् की कृपा नहीं होती तब तक सद्गुरु की प्राप्ति भी नहीं होती । आत्मा में स्वप्न दीखता नहीं, कल्पित होता है । सद्गुरु के उपदेश से ही इसका ज्ञान होता है ।

'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा।'

जिस परमात्मा में तीनों प्रकार का सर्ग- दैहिक, दैविक और भौतिक, तीनों प्रकार का भ्रम- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, तीनों प्रकार का गुण- सत्त्व-रज-तम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तीनों प्रकार का शरीर- स्थूल, सूक्ष्म और कारण मृषा भासते हैं, जो वास्तव में है नहीं । बिना हुए भी दिखायी पड़ते हैं -

झूठेउ सत्य जाइ बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥

(श्रीरामचरितमानस बा.का. दोहा 111 बाद चौ 1)

जिस परमात्मा को न जानने से झूठा भी सत्य प्रतीत होता है । जैसे बिना रज्जु को पहचाने झूठी रस्सी भी सच्चे सर्प की तरह लगती है और जिसको जान लेने के बाद जगत् उसी प्रकार खो जाता है जैसे जाग जाने पर स्वप्न खो जाता है। उसी प्रकार परमात्मा भी ।

राम ब्रह्म परमातम रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गत भेदा।
कहि नित नेति निरुपहिं वेदा॥

(श्रीरामचरितमानस अ.का. दोहा 92 बाद चौ 7-8)

'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम्'

जिस परमात्मा के धाम माने तेज से 'सदा निरस्त कुहकं' माने कपट लक्षणी माया सदा ही निरस्त है । परमात्मा ने द्वैत को देखा ही नहीं । प्रश्न यह आता है कि जब तक अधिष्ठान का ज्ञान न हो जाय, तब तक उसमें अध्यास नहीं हो सकता । यह सिद्धान्त है कि अधिष्ठान के अज्ञान से ही अध्यास होता है । इसीलिये शून्यवाद कट जाता है । शून्यवादी बौद्ध भी कहते हैं कि 'संसार असत्य है । संसार स्वप्न के समान मिथ्या है ।' लेकिन वे ब्रह्म को भी नहीं मानते हैं। वे कहते हैं - **'सर्वं शून्यम्'**। पर यह नियम है कि भ्रम निरधिष्ठान नहीं होता। ब्रह्म का कोई न कोई अधिष्ठान होता है - **'किञ्चित् क्वचिदध्यस्यते ।'**

कोई वस्तु कहाँ अध्यस्त होती है ? किसमें अध्यस्त होती है ? जो अध्यस्त हो वह अधिष्ठान है। अधिष्ठान का अज्ञान सामान्य रूप से ज्ञान है और विशेष रूप से अज्ञान है । यह अध्यास का कारण होता है । शुक्ति में रजत का भ्रम कब होगा ? जब हम शुक्ति का (सीपिका का) हिस्सा देखेंगे तो जो चमकीला हिस्सा है और उसका नील पृष्ठत्व है, उसे नहीं देखेंगे । पुनः जब उसे उलट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर देखेंगे तब 'इदं रजतं न' इत्याकारक ज्ञान होगा । इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है -

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 9/4)

भगवान् श्रीकृष्ण ने इसमें बताया है कि **'मया अव्यक्तमूर्तिना इदं सर्वं जगत् ततम्'** मैं अव्यक्त मूर्ति हूँ । मेरे द्वारा यह संसार व्याप्त है । **अव्यक्त मूर्तिना** कहकर इसमें बतलाया गया कि जब ब्रह्म अविद्या से, माया से उपहित होता है, तब वह जगत् का कारण बनता है । शुद्ध ब्रह्म जगत् का कारण नहीं हो सकता।

अब यह प्रश्न आ गया कि ब्रह्म में भी अज्ञान होना चाहिये । संसार में कोई अज्ञान का आश्रय हो वह अच्छी बात नहीं है । जिस प्रकार 'आप नहीं जानते' यह बात आपको अच्छा नहीं लगेगी। 'मैं आपको नहीं जान पाया ।' यह बात प्रशंसा हो जाएगी । किसी को न जानना, अज्ञान का विषय होना, दोष नहीं है । अज्ञान का आश्रय होना दोषपूर्ण है । क्या परमात्मा में अज्ञान है ? उसमें आश्रय है । हमारे यहाँ के दार्शनिक लोग वेदान्त को मानते हैं । वाचस्पति मिश्र का कहना है - **'जीवाश्रया ब्रह्मपदा अविद्या ब्रह्मविन्मता'** अविद्या माने अज्ञान, माया । **'जीवाश्रया'** उसका आश्रय जीव है। **'ब्रह्मपदा'** माने ब्रह्म उसका विषय है । लेकिन वेदान्त के एक बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं 'सर्वज्ञात मुनि'। जिन्होंने 'संक्षिप्त शारीरक' नाम का ग्रंथ लिखा है । वे कहते हैं -

'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला ।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाऽऽश्रयो भवति नापि गोचरः।'

(संक्षेपशारीरकम् 1/319)

केवल निर्विभागचितिरेव आश्रयत्वविषयत्व भागिनी । पूर्वसिद्ध तमसः हि पश्चिमः नाश्रयो भवति, नापि गोचरः । अर्थात् अज्ञान के आधार पर जीव और ईश्वर का विभाग होता है अतः अज्ञान का आश्रय और विषय न तो जीव हो सकता है और न ही ईश्वर । किन्तु जीवेश्वर विभागशून्य अद्वितीय शुद्ध चेतन ही आश्रय भी है और विषय भी । यद्यपि जीवादि विभाग अनादि माना जाता है, अज्ञान तथा जीवादि में पौर्वापर्य बनता नहीं, तथापि वह विभाग वास्तविक नहीं अपितु मायिक है । अतः वह अज्ञान प्रयुक्त होने से अज्ञान का आश्रय नहीं बन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता । यदि बनाएंगे तो अन्योन्याश्रय दोष हो जाएगा । इसीलिए जड़ पदार्थ भी अज्ञान का आश्रय नहीं बन सकता । एतावता पूर्णब्रह्म ही अज्ञान का आश्रय भी है और विषय भी ।

इसलिए कहना होगा - निर्विशेष चिति अविद्या का आश्रय और विषय दोनों है । जैसे घर के भीतर का अंधकार जो मठाकाश (मठ के भीतर का आकाश) है, उसका भी आश्रय वही है । वह विषय भी हो सकता है । उसी आकाश में अन्धकार रहता है और उसी अन्धकार को ढँकता भी है । आप समझ लीजिए कि अज्ञान के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि जैसे हम सूर्य को बदली से ढका हुआ देखते हैं । कहते हैं कि 'आज सूर्य मेघाच्छन्न है । सूर्य मेघ से ढक गया है।' पर विचार करें कि सूर्य मेघ से ढक गया है यह आप किसके प्रकाश से देख रहे हैं? सूर्य के ही प्रकाश से देख रहे हैं । सूर्य ही यह बतला रहा है कि 'मैं मेघ से आच्छन्न हूँ। इसी तरह से कोई कहता है **'अहं ब्रह्म न जानामि'** माने मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूँ ।' तो 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता' यह कौन जान रहा है ? 'नहीं जानता' इस वाक्य को भी ब्रह्म ही जानता है । इसीलिए ब्रह्म का अनुभव ब्रह्म के ही द्वारा होता है ।

अज्ञानी की भी सिद्धि बिना ब्रह्म के नहीं हो सकती । यदि वह अज्ञान से आवृत्त हो जाय तो ? वेदान्त शास्त्रों में बतलाया गया है कि केवल ब्रह्म अज्ञान का निवारक नहीं है । क्योंकि वह तो सर्वत्र व्यापक है । अज्ञान का जो प्रकाशक है वह न किसी का साधक है और न बाधक । वह बाधक तब बनता है जब महावाक्यजन्य ब्रह्माकाराकारित चित्तवृत्ति में अधिरूढ़ होता है। जैसे रूई के ढेर पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं लेकिन रूई नहीं जलती । जब आक्सी माने शीशा (सूर्यकान्त मणि) के द्वारा सूर्य की किरणों को रूई पर डाला जाता है तब वह जल जाती है। इसी प्रकार महावाक्यजन्य ब्रह्माकाराकारित वृत्ति में अधिरूढ़ होकर ही चेतन अज्ञान का नाश करता है ।

इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि 'जो मेरा निरन्तर भजन करते हैं वे मेरे भक्त हैं'।

'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥'

(श्रीमद्भगवद्गीता 10/10)

जो मेरा नित्य भजन करते हैं मैं उनको बुद्धियोग दे देता हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।'

(श्रीमद्भगवद्गीता 10/11)

उन भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने के लिये मैं उनके आत्मभाव में स्थित होकर प्रकाशित ज्ञान रूपी दीपक से उनके अज्ञान से उत्पन्न होने वाले अन्धकार को नष्ट कर देता हूँ। जब साधक ब्रह्म को आत्मा से अभिन्न समझ लेता है तब उसके अज्ञान का नाश हो जाता है।

आत्मभाव का अर्थ है **'महावाक्यजन्यब्रह्माकाराकारितवृत्ति'**। यह वृत्ति जब बनी तब उसमें चैतन्य अधिरूढ़ हुआ और उसने अज्ञान का नाश कर दिया। वह नाशक ब्रह्म सोपाधिक है। महावाक्यजन्य ब्रह्माकाराकारितवृत्ति में अधिरूढ़ है। लेकिन जो सहज ब्रह्म है, वह भी अज्ञान से रहित है। अज्ञान का भी वही साक्षी है। इसीलिए उसमें न अज्ञान था, न है और न आगे होगा। ज्ञानी का यही लक्षण है।

वस्तुतः जो सच्चा ज्ञानी है वह यह नहीं कहता कि 'मैं पहले अज्ञानी था अब ज्ञानी हो गया। वह तो यही कहेगा कि 'मैं पहले भी अज्ञानी नहीं था। मुझमें तो अज्ञान था ही नहीं। अगर तुम पहले अज्ञानी थे, अब ज्ञानी हुए तो इसका मतलब तुम्हें ज्ञान हुआ ही नहीं। अभी भी तुम अज्ञानी ही हो। ज्ञान का लक्षण यह है कि अज्ञान कभी था ही नहीं।

मुक्ति (मोक्ष) क्या है ? कोई कहे कि 'पहले हम बद्ध थे अब मुक्त हो गये हैं। यह तो नासमझी की बात है। जो मुक्त होगा, वह तो यह समझेगा कि बन्धन मुझमें था ही नहीं। मैं तो नित्य मुक्त हूँ।' यही भाव होना चाहिए। इसी भाव से व्यास जी कहते हैं -

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।

(श्रीमद्भागवत 1/1/1)

अब थोड़ी भक्ति की चर्चा कर ली जाय। इस श्रीमद्भागवत की रचना व्यासजी ने तब की थी जब नारदजी ने उनसे कहा था कि 'तुमने सब कुछ तो कहा लेकिन श्रीकृष्ण के गुण-गणों का वर्णन नहीं किया।' तब श्रीकृष्ण गुण-गण प्रधान श्रीमद्भागवत का प्रणयन श्रीकृष्णद्वैपायन महामुनि ने किया। फिर यह तो स्वाभाविक था कि वे अपने मङ्गलाचरण में भगवान् श्रीकृष्ण के गुण-गणों का स्मरण करते ही। श्रीमद्भागवत में दस विषय हैं। यह महापुराण है -

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।

(श्रीमद्भागवत 2/10/1-2)

इस श्रीमद्भागवत महापुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है ।

पञ्चमहाभूत, पञ्च तन्मात्रा और इन्द्रियों के अहंकार को सर्ग कहते हैं । विविधि प्रकार के प्राणियों की सृष्टि को विसर्ग कहते हैं । मन्वन्तर और उनमें होने वाली कथा को ईशानुकथा कहते हैं । ईश माने भगवान् । भगवान् और उनके भक्तों की कथा ईशानुकथा है। भगवान् का अपनी शक्तियों के सहित योगनिद्रा में सो जाना प्रलयकाल है । यही निरोध है । अन्य के स्वरूप का त्याग करके स्वस्वरूप में स्थित हो जाने का नाम मुक्ति है । जिससे संसार की प्रतीति और अप्रतीति होती है, वह आश्रय श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं । उन श्रीकृष्ण का वर्णन इस भागवत का मुख्य विषय है ।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में सबसे पहले भगवान् के जन्म की कथा का वर्णन है । **'आद्यस्य जन्म'** माने जो आद्य, प्रथम पुरुष, पुराण पुरुष परमात्मा है, उसका जन्म कैसे हुआ ? देवकी वसुदेव के द्वारा दिव्य रीति से भगवान् का गर्भाधान हुआ और फिर भगवान् प्रकट हुए । प्रश्न उठता है कि भगवान् ने मथुरा में जन्म लिया तो फिर वे मथुरा से गोकुल क्यों चले गये ? कंस के भय से तो नहीं चले गये ? नहीं। क्योंकि कंस को तो उन्होंने मार ही दिया। देवकी, वसुदेव को भय था । इसलिए चले आए । कुछ लोग प्रश्न उठाते हैं कि क्या भगवान् उस समय कंस को मार नहीं सकते थे ? उसी समय मार दिये होते । कहा कि नहीं, **'अर्थेष्वभिज्ञः'** भगवान् अपने अवतार का प्रयोजन जानते थे । नन्द-यशोदा ने तपस्या की है कि 'वे हमें (श्रीकृष्ण) को पुत्र रूप में प्राप्त करें और उनको अपना पुत्र मानकर उनकी सेवा करे तथा हमें पुत्र का सुख प्राप्त हो ।' वे वहाँ बैठे हैं, गोपियाँ बैठी हैं, गौएँ बैठी हैं, ऋषि-मुनि बैठे हैं । उन सबके मन को संतृप्त करने तथा नन्द-यशोदा की तपस्या के फल को पूर्ण करने के लिए भगवान् मथुरा से व्रज को गये । इस तरह वे कंस से अलग हो गये । वहाँ जाकर भगवान् ने क्या किया? नन्दादि गोप इन्द्र की पूजा किया करते थे। भगवान् ने कहा - 'इन्द्र की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है । हमारे देवता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो गिरिराज गोवर्द्धन हैं। उन्होंने इन्द्र की पूजा छुड़ाकर इन्द्र का मान मर्दन किया और गिरिराज गोवर्द्धन की पूजा करवायी ।

'स्वराट् माने स्वेनैव राजते।' फिर इतना ही नहीं **'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये'** । एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ग्वाल बालों के साथ वन भोजन कर रहे थे । बालकों जैसी क्रीड़ायें कर रहे थे । ब्रह्मा उन्हें देखने आए । भगवान् की बाल लीलाओं को देखकर उन्हें मोह हो गया । वे सोचने लगे कि यह कैसे भगवान् हैं ? ग्वाल बालकों का जूठा खा रहे हैं । भगवान् की लीला तो बड़ी विचित्र है -

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्म रति ॥

(श्रीरामचरितमानस अ. का. सो. 1)

भगवान् का गूढ़ चरित्र भगवान् से विमुख लोगों को समझ में नहीं आता। उस समय भगवान् ग्वालबालों के साथ हँस रहे थे, खेल रहे थे । जूठा खिला रहे थे, खा रहे थे । उन्हें देखकर ब्रह्मा को लगा 'इतने बड़े परमात्मा और साधारण अहीर के ये बालक ? इनके साथ धृष्टता कर रहे हैं, अपना जूठा इन्हें खिला रहे हैं और कह रहे हैं - 'लो खाओ ।' ग्वाल बाल कह रहे हैं - 'देखो हमारा दही कैसा है ।' चखकर भगवान् कहते हैं - 'तेरा तो खट्टा है ।' किसी को कहते हैं - 'तेरा तो बड़ा मीठा है ।' उनका यह खेल देखकर ब्रह्मा जी के मन में मोह हो गया कि ये परमात्मा हैं या साधारण बालक ?

भगवान् की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा ने उनके बछड़ों को चुरा लिया और उनको मूर्च्छित करके ब्रह्मगुफा में सुला दिया । जब भगवान् बछड़ों को खोजने गये तो ब्रह्मा ने इधर ग्वाल-बालों को भी मूर्छित करके वहीं सुला दिया । भगवान् ने देखा कि बछड़े भी नहीं हैं और ग्वाल-बाल भी नहीं हैं । भगवान् ने ध्यान किया तो ब्रह्मा की करतूत समझ में आ गई । तब भगवान् ने ब्रह्मा के अभिमान को तोड़ने के लिए स्वयं अपने आपको ग्वाल-बाल और बछड़े के रूप में बना लिया । जिसका जिस-जिस तरह का वस्त्र-आभूषण आदि था, उसी तरह के ग्वाल-बालों और बछड़ों के रूप में भगवान् बन गये । वही बछड़े बन गये और वही ग्वाल-बाल बन गये । एक वर्ष तक ग्वाल-बाल बनकर अपने स्वरूप में ही रहकर भगवान् ने उन गाय बछड़ों को चराया । मानो भगवान् ने ब्रह्मा को यह बतला दिया कि 'मैं किस प्रकार एक होकर अनेक हो जाता हूँ । वेद के तत्त्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'एकोऽहं बहु स्याम' को भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला के द्वारा दिखला दिया **'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये'** आदि कवि ब्रह्मा के हृदय में ज्ञान करा दिया ।

जब ब्रह्मा जी आये तो उन्होंने देखा कि अरे, हमने तो ग्वाल बालों और बछड़ों को ब्रह्म गुफा में मूर्छित करके सुला दिया था और वही ग्वाल-बाल, बछड़े यहाँ खेल रहे हैं । ब्रह्मा गुफा में गये वहाँ देखा कि सभी ग्वाल-बाल, बछड़े सो रहे हैं । यहाँ आकर देख रहे हैं तो सभी ग्वाल-बाल खेल रहे हैं। बछड़े चर रहे हैं । दोनों तरफ ग्वाल बाल को देखकर वे भ्रमित हो गए ।ऐसा ही भ्रम माता कौशल्या को भी हुआ था ।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा ।
मति भ्रम मोर कि आन विसेषा ॥

(श्रीरामचरितमानस बा. का. दो.200 के बाद चौ.7)

तब भगवान् ने उन ग्वाल-बाल और बछड़ों का रूप दिखाया । **'सत्य ज्ञानानन्दाश्रयैकरसमूर्तयः'** सबके सब ज्ञानानंद की रसमयी मूर्ति हैं । बड़े-बड़े उपनिषद् द्रष्टाओं को उनके माहात्म्य का ज्ञान नहीं होता ।

प्रत्येक ग्वाल-बाल साक्षात् परब्रह्म हैं, बछड़े साक्षात् परब्रह्म हैं । इस तरह भगवान् ने ब्रह्मा को वेद के तत्त्व का ज्ञान करा दिया ।

'मुह्यन्ति यत् सूरयः' माने बड़े-बड़े विद्वान् जिनकी लीलाओं को देखकर मोहित हो जाते हैं ।

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ।

(श्रीरामचरितमानस उ. का. दो.77)

भगवान् का सगुण रूप निर्गुण की अपेक्षा दुर्गम है -

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन न जानै कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन-भ्रम होइ ॥

(श्रीरामचरितमानस उ. का. दो.73)

निर्गुण में एकरसता है । एक बार यदि उसका बोध हो गया तो संशय नहीं होता । लेकिन भगवान् के जो सगुण चरित हैं, उनको देखकर व्यक्ति कई बार मोहित हो जाता है ।

जब मेघनाद के साथ भगवान् श्रीराम का युद्ध हुआ तब युद्ध में मेघनाद ने भगवान् श्रीराम पर नाग पाश छोड़ दिया । नाग पाश से भगवान् बँध गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनको बँधा देखकर गरुड़ जी को मोह हो गया - 'अरे यह कैसे भगवान् ?

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम ।
खर्व निसाचर बाँधेउ नाग-पास सोइ राम ।

(श्रीरामचरितमानस उ. का. दो.58)

इस प्रकार से भगवान् के स्वरूप को जानना बड़ा कठिन है इसीलिए कहा- **मुह्यन्ति यत् सूरयः'**।

'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः' भगवान् ने लीला की । तेज दावानल पान कर लिया । दावानल के लगने पर जब भूमि जलने लगी, वन जलने लगे, तब भगवान् ने सबसे कहा - 'आँखे बन्द कर लो'। भगवान् के **'मुखाद् अग्निरजायत'** मुख से अग्नि उत्पन्न हुई है । इसलिए भगवान् ने उनके मुख में ही उसको प्रवेश करवा दिया । तेज और वारि इन दोनों का विनिमय कर लिया।

कालिन्दी नदी का जल कालिय नाग के विष से दूषित हो गया था । कालिय नाग को मारकर भगवान् ने उसे वहाँ से निकाल दिया और जल को शुद्ध कर दिया ।

'मृदां यथा विनिमयः' ।

एक बार भगवान् ने मृत्तिका खा ली । ग्वाल-बालों ने आकर माता यशोदा से शिकायत की 'मैया ! तेरे बेटे ने मिट्टी खायी है' । यशोदा भगवान् से पूछने लगीं - 'लाला तैने माटी खायी? भगवान् ने कहा - 'नहीं ।' यशोदा ने छड़ी उठाई, कृष्ण के दोनों हाथ पकड़े और कहा - 'क्यों रे चटोरे ! तूने मिट्टी क्यों खायी'? भगवान् देखकर डर गये । मैया छड़ी मारेगी । बोले - मैया तुझसे किसने कहा है?' माँ ने कहा - 'सभी ग्वाल बाल कह रहे हैं ।' भगवान् बोले - 'मैया हमारे दुश्मन भी तो बहुत हैं ।' माँ ने कहा - 'नहीं, जो तेरे साथ खेलते हैं, वे कह रहे हैं कि तूने मिट्टी खायी है ।' भगवान् बोले - 'मैया आजकल उनसे हमारा झगड़ा हो गया है ।' माँ बोली - 'ये ही नहीं, तेरा बड़ा भाई दाऊ भी तो बोल रहा है । ' भगवान् ने कहा - 'माँ ! वे सब झूठ बोल रहे हैं । मैंने मिट्टी नहीं खायी है ।'

इस घटना में वेदान्ती लोग यह अर्थ निकालेंगे कि **'नाहं भक्षितवानम्ब** (श्रीमद्भागवत 10/8/35) अर्थात् **नाहं बाह्यं किंचित् भक्षितवान्** । माने, माँ ! मैने बाहर का कुछ भी नहीं खाया, सब कुछ मेरे भीतर ही तो है । सारे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसार का अधिष्ठान मैं हूँ । मैं क्या खाऊँगा? खाने की क्रिया में बाहर की खाद्य वस्तु को मुख द्वारा शरीर के अन्दर किया जाता है । यहाँ तो सब अन्दर ही है । बाहर की कोई चीज अन्दर की ही नहीं गई है । भगवान् ठीक ही तो कह रहे हैं - **'सर्वे मिथ्याऽभिशंसिनः** (श्रीमद्भागवत 10/8/35)। किन्तु ग्वाल-बाल विचारे जैसा देख रहे हैं, वैसा बोल रहे हैं । भगवान् ने कहा- 'वस्तुतः मुझमें खाना-पीना है ही नहीं ।'

किन्तु ममतामयी यशोदा कहाँ समझ पातीं ? वह तो भगवान् को छड़ी दिखा रही थी । उसी रूप में भगवान् भी माँ यशोदा की छड़ी देखकर डर गए और फिर बोले - 'हमने मिट्टी खायी ही नहीं ' । सब झूठ बोल रहे हैं । यशोदा जी ने कहा - 'मुझे तेरी बात में विश्वास नहीं है । तू झूठ बोला करता है ।' भगवान् ने कहा - 'हाँ मैया ! दाऊ दादा ही तेरा बेटा है, मैं थोड़े ही हूँ । उसकी हर बात मानती है । वह जो तेरा बेटा ठहरा । मैं तेरा बेटा नहीं हूँ न ! इसलिए तू मेरी बात में विश्वास नहीं रखती ।' आज यह लटका भी नहीं चला ।

भगवान् पुनः बोले - **'यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम्** (श्रीमद्भागवत 10/8/35)। अर्थात् यदि उनकी बात सत्य है तो मेरा मुख सामने है । देख क्यों नहीं लेती । भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सोचा था कि जब हम यह कहेंगे कि मेरा मुख देख ले तब माँ कह देगी अच्छा-अच्छा ठीक है । लेकिन यशोदा जी कहने लगी - 'खोल मुँह ।' भगवान् ने अपना मुँह दबाया पर यशोदा जी नहीं मानीं।

कवि लोग कहते हैं कि माता यशोदा का क्रोध सूर्य की किरणें हैं और श्रीकृष्ण का मुख कमल । कमल तभी तक बन्द रहता है जब तक उस पर सूर्य की किरणें नहीं पड़ जाती । माता यशोदा की क्रोध की किरणों के पड़ने पर भगवान् श्रीकृष्ण का मुख कमल खुल गया । भगवान् की लीला शक्ति ने समस्त विश्वप्रपंच को उनके मुख में दिखला दिया । **'यत्र त्रिसर्गोऽमृषा'** भगवान् के मुख में माँ यशोदा को **'त्रिसर्ग अमृषा'** दिखने लगे ।

चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र आदि सभी कुछ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख में यशोदा जी ने देख लिया । माता यशोदा ने उनके मुख में गोकुल को और गोकुल में भगवान् श्रीकृष्ण जिस स्थान पर खड़े हैं उन सबके साथ-साथ अपने आपको भी देखा कि मैं छड़ी लेकर कृष्ण को डाँट लगा रही हूँ । यह सब कुछ देखकर यशोदाजी मूर्च्छित हो गईं । कहने का मतलब यह है कि 'उस परमात्मा में यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारा प्रपंच झूठा नहीं सच्चा है' ऐसा भगवान् ने मैया को दिखा दिया । बड़े-बड़े कपटी स्वभाव वाले जो वीर थे । अघासुर, वकासुर, प्रलंबासुर जैसे सभी दैत्य भगवान् को मारने के लिए आए किन्तु भगवान् के तेज से वे सबके सब नष्ट हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण ही वह परमतत्त्व परमात्मा हैं, जिनका हम सदैव ध्यान करते हैं।

आज के दिन इतना ही कहकर अपना प्रवचन पूर्ण करते हैं । अब थोड़ा सा भगवान् का नाम ले लें ।

श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय ।

RajGuru Math, Sarvala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaigaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

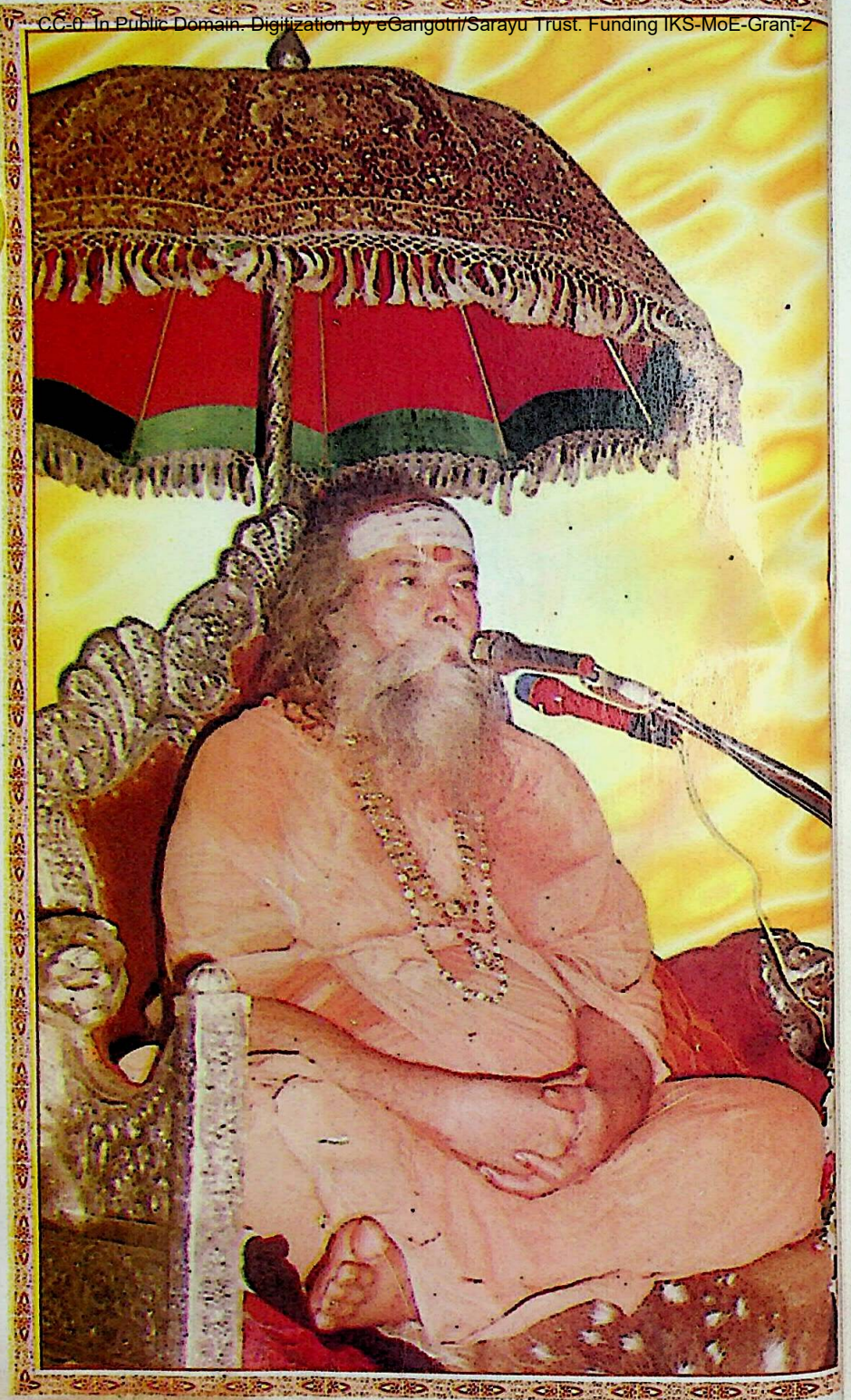

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय-दिवस

समुपस्थित विद्वद्वृन्द, देवियो-सज्जनो !

कल आपने महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास के द्वारा किए गए मङ्गलाचरण की व्याख्या सुनी । मङ्गलाचरण के अनन्तर श्रीमद्भागवत का क्या महत्त्व है, इसमें किस विषय का वर्णन है और उस वर्णन का फल क्या है, उन्होंने इन सब पर प्रकाश डाला है ।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(श्रीमद्भागवत 1/1/2)

'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो' 'अस्मिन् श्रीमद्भागवते मया कृष्णद्वैपायन व्यासेन धर्मो निरूप्यते' अर्थात् इस श्रीमद्भागवत में मैं कृष्णद्वैपायन व्यास धर्म का निरूपण कर रहा हूँ । प्रश्न उठता है कि व्यासजी ने महाभारत में भी धर्म का निरूपण किया है । साथ ही सत्रह पुराणों में भी धर्म का ही निरूपण किया है, तो फिर श्रीमद्भागवत में भी धर्म का निरूपण किया तो क्या विशेष किया ? लेकिन यहाँ धर्मनिरूपण का उनका संकल्प निश्चित वैशिष्ट्य है । श्रीमद्भागवत में धर्म का निरूपण अपने आप में एक विलक्षणता है । यह धर्म का एक विशेषण है ।

'अस्मिन् श्रीमद्भागवते प्रोज्झितकैतवः धर्मो निरूप्यते ।' प्रोज्झित का अर्थ है - 'प्रकर्षेण उज्झितः त्यक्तः' और केतव का अर्थ है - कपट। तो जिसमें कपट नहीं है, ऐसे धर्म का हम निरूपण करते हैं । प्रश्न उठता है कि 'क्या धर्म में भी कपट होता है, जो आप विशेषण लगाकर उसे दूर कर रहे हैं ।' बोले - 'हाँ धर्म में भी कपट रहता है 'फलाभिसंधि' अर्थात् धर्म करने के पहले मनुष्य अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन में फल की जो आकांक्षा बना लेता हैं कि इस कर्म से हमें इस फल की प्राप्ति हो, यही कपट है । कर्म कर रहे हैं और फल पहले ही मन में रख लिया ।

आप समझ लीजिये कि किसी की भैंस खो गयी और वह हनुमानजी के मन्दिर में जाकर बोला - 'हनुमान्‌जी ! यदि हमारी भैंस मिल जाय तो हम आपको सवा पाव लड्डू चढ़ायेंगे ।' सवा पाव लड्डू में मजदूर भी नहीं मिलेगा । हनुमान्‌जी भैंस दिला देंगे । यह कपट हो गया। भगवान् शङ्कर के शिवलिङ्ग पर थोड़ा सा जल चढ़ाया और पता नहीं क्या-क्या माँग लिया ।

एक महात्मा मधुकरी (भिक्षा) लेने के लिये किसी गृहस्थ के घर में गये। घर की गृहिणी ने एक रोटी उठाई । उसका बच्चा झूले में सो रहा था । उस गृहिणी ने उस बच्चे के ऊपर से उस रोटी से तीन बार उबारा और महात्माजी की झोली में रोटी डालने लगी । महात्माजी ने देख लिया । बोले - 'माँ ! ये जो तूने अपने घर में गाय-भैंस बाँध रखे हैं, इन पर से भी उतारा कर ले, जिससे तेरी सारी अलाय-बलाय मेरी झोली में आ जाय ।

कहने का मतलब यह है कि वह महात्मा को भिक्षा देने का धर्म तो कर रही है, लेकिन साथ-साथ फल की आकांक्षा भी कर रही है । सो फल की आकांक्षा ही कपट है ।

श्रीमद्‌भागवत में जिस भगवद्‌भक्तिलक्षण धर्म का निरूपण किया जा रहा है, उसमें फलाभिसंधि नहीं है । जो भगवान् के प्रेमी हैं, सच्चे भक्त हैं, वह भगवान् से कुछ नहीं माँगते ।

आप देखिए - भगवान् श्रीकृष्ण का जब अवतार होता है तब गोपियाँ मङ्गल थाल सजाकर नन्द-भवन में यशोदाजी के पास जाती हैं और बालक श्रीकृष्ण को देखकर कहती हैं - 'यशोदा ! तेरा लाल युग-युग जिए ।' वे बालक को आशीर्वाद देती हैं कि 'आपका बालक चिरायु हो, अधिक दिनों तक जिए ।' वे कोई फल तो माँग नहीं रही हैं । कुछ भी नहीं माँग रही हैं, यही है धर्म ।

राजा रन्तिदेव चालीस दिनों तक भूखे रहे । वे राजकोष से अपने लिये कुछ भी नहीं निकालते थे । उनकी अपनी कृषि थी । उसमें उनको जो मिल जाता था, उसी से अपना जीवन-निर्वाह करते थे । प्रजा से जो कर लेते थे, उसे प्रजा के ही हित में लगा देते थे । एक बार जब फसल में कुछ नहीं आया, ओले पड़ने लगे तो उन्हें दूसरी फसल के आने तक की प्रतीक्षा करने के लिये चालीस दिन तक भूखा रहना पड़ा । अब जब चालीस दिन के बाद भोजन करने बैठे, भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को भोग लगाकर ज्यों ही भोजन करने को उद्यत हुए त्यों ही एक अतिथि आ गया, जो बहुत ही भूखा था । उसने कहा - 'राजन् ! मुझे बहुत ही जोरों की भूख लगी है, मुझे भी कुछ खाने को दो ।' राजा ने भोजन की थाली उस अतिथि को दे दी । अब जो बचा था उसे खाने के लिये ज्यों ही राजा तैयार हुआ तभी कोई दूसरा व्यक्ति आ गया जो शूद्र था । उसने भी राजा से कहा - 'महाराज ! मुझे भी भूख लगी है कुछ खाने को मुझे भी दीजिये न !' राजा ने बचा भोजन उसे दे दिया। राजा ने बर्तन धोकर उसका पानी ज्यों ही पीना चाहा, उस शूद्रक ने कहा - 'महाराज ! मेरा कुत्ता भी भूखा है । उसे वह पानी दे दीजिये न !' राजा रन्तिदेव ने बर्तन धोया और वह पानी कुत्ते को दे दिया ।

यह राजा रन्तिदेव के धर्म की परीक्षा थी । देवता ही भिन्न-भिन्न अतिथियों के रूप में आये थे । उन्होंने प्रसन्न होकर राजा रन्तिदेव से कहा - 'राजन् ! हम सब आप पर प्रसन्न हैं, वरदान माँगिए ।' राजा ने कहा -

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥ (महाभारत)

महाराज ! न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष चाहता हूँ । मैं तो बस यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों की आर्ति माने कष्ट नष्ट हो जाएँ। कोई संसार में दुःखी न रहे ।'

श्रीमद्भागवत में इस प्रकार के उदात्त धर्म का निरूपण किया गया है । धर्म का एक अर्थ यह भी होता है कि जो सबको धारण करे वह धर्म है । सबको धारण करने वाला है वासुदेव । 'वासुदेव' शब्द में दो भाग हैं - वासु और देव। जिसमें सब कुछ वास करे उसका नाम वासु। जो ज्योत्स्नालय है, प्रकाश स्वरूप है, वह देव है - जो वासु है और देव है, वह सर्वाधिष्ठान है, स्वप्रकाश है । सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश ही वासुदेव है । वह वासुदेव सब कुछ है । 'वासुदेवः सर्वम् ।' श्रीमद्भगवद्गीता में भी बतलाया गया है - '

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।'
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥(श्रीमद्भगवद्गीता 7/19)

अर्थात् बहुत जन्मों के अन्त में प्राणी ज्ञानवान् होता है । जो ज्ञानवान् होता है, वह **'मां प्रपद्यते'** मुझको प्राप्त कर लेता है ।

ज्ञान का स्वरूप क्या है? **'वासुदेवः सर्वम्'** सब कुछ वासुदेव है। यह विद्यमान प्रपंच और मैं सब वासुदेव है । **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** (छान्दोग्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

3.14.1) इस प्रकार की धारणा वाला जो महात्मा है, उसका मिलना दुर्लभ है।

कैतवः माने कपट अथवा माया। माया से रहित सर्वाधिष्ठान स्वरूप सब प्रकार से ब्रह्म है । उस ब्रह्म का श्रीमद्भागवत में निरूपण किया गया है । और व्यावहारिक दृष्टि से वह धर्म निरूपित है, जिसमें फलाकांक्षा नहीं होती । जिस धर्म का अनुष्ठान करने के पहले ही धर्मानुष्ठानकर्त्ता यह धारणा बना लेता है कि 'मैं भगवान् की प्रीति के लिये ही कर रहा हूँ । जो भी फल मिलेगा वह हम भगवान् को अर्पण कर देंगे ।' **'अनेन कर्मणा भगवान् श्रीकृष्णः प्रीयताम् न मम'** अर्थात् इस कर्म के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाएँ तो वह उनकी कृपा है। भगवान् कहते हैं - 'जो तुम करते हो वह मुझे अर्पित कर दो'

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 9/27)

'जो तू दान करता है, हवन करता है, खाता है, तपस्या करता है, वह सब तू मुझे अर्पित कर दे ।' किसी ने कहा - 'यदि सब आपको ही अर्पित कर देंगे तो हमें क्या मिलेगा ?' यह तो बड़ी विचित्र बात है । एक राजनीतिक व्यक्ति मुझसे मिले और बोले - 'गीताकार श्रीकृष्ण पूँजीवादी हैं । वे कहते हैं कि 'तुम कर्म करो और उसका सब फल हमको दे दो । जैसे पूँजीपति मजदूरों से मजदूरी करवाता है और मुनाफा स्वयं खाता है । साथ ही तुम कुछ माँगो तो कहेगा **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** (श्रीमद्भगवद्गीता 2/47) अर्थात् तेरा केवल कर्म में ही अधिकार है, फल में नहीं है। इस प्रकार गीता में भी अपनी दृष्टि लगा रहे थे । यहाँ तो सबके काम की चीज मिल जाती है।' हमने उस व्यक्ति से कहा कि 'भगवान् यह जो कह रहे हैं कि **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** (श्रीमद्भगवद्गीता 2/47) इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उसे फल से वंचित करना चाहते हैं। बल्कि भगवान् चाहते हैं कि 'उसका चित्त तुच्छ फल में ही न भटक जाय।'

'कृपणाः फल हेतवः' अर्थात् फल की इच्छा वाला कृपण है । आप बच्चे को खजाने में खड़ा कर दो और उससे कहो कि तुम्हारी जो इच्छा हो उठा लो तो वह कुछ चिल्लर (फुटकर पैसा) उठा लेता है । वह तो जानता ही नहीं है कि किसकी क्या कीमत है ।

एक बार किसी लोहार की दोस्ती बादशाह से हो गयी । बादशाह ने उससे एक दिन प्रसन्न होकर कहा - 'जो तुम्हारी इच्छा हो मुझसे माँग लो।' उसने कहा -

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'सरकार ! कोयले की बड़ी तंगी है, कुछ कोयले का इंतजाम कर दीजिये ।' वह लोहार मात्र कोयला माँग कर रह गया । वह चाहता तो बहुत कुछ माँग सकता था । इस प्रकार लोग प्रायः तुच्छ फल ही माँगते हैं । यहाँ तक कि भगवान् के सामने जाकर लोग कुछ ऐसी ही वस्तु माँग लेते हैं, जो नश्वर है, क्षणिक है और अन्त में दुःखदायी सिद्ध होती है ।

एक दृष्टान्त है । एक किसान था । वह अपने खेत में हल चला रहा था। हल चलाते-चलाते उसे खेत में चमकीला पत्थर दिखायी पड़ा । उसने हल खड़ा करके उस पत्थर को उठाया । उसे लगा वह चमकीला पत्थर हीरा है । वह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने सोचा, इतना मूल्यवान् हीरा हमको मिल गया, हमारी दरिद्रता दूर हो गयी । उस हीरे को मुट्ठी में लेकर उसे सुरक्षित स्थान पर रखने के लिये घर की ओर चल दिया । इधर खेत में बैल छोड़ दिया, हल छोड़ दिया । लम्बी-लम्बी डग भरता हुआ घर की ओर जा रहा था । उसे सामने से एक परिचित महात्मा आते दिखलाई पड़े । उसे भय लगने लगा कि यदि महात्माजी पूछेंगे कि 'तेरी मुट्ठी में क्या है?' और मैं उनको बताऊँगा कि 'मेरी मुट्ठी में हीरा है' तो हीरा जानकर महात्माजी मुझसे माँग न लें । इतनी कीमती जो वस्तु मुझे मिली है, वह मुझसे दूर न चली जाय । यह सोचकर उसने रास्ता बदल दिया । महात्माजी भी उसी रास्ते से आने लगे और आकर उसके सामने ही खड़े हो गये । अब उसने सोचा मैं क्या करूँ? उसने महात्माजी को प्रणाम किया और कहा - 'महाराज ! जल्दी जाना है ।' महात्माजी ने कहा - 'कहीं नहीं जाना, चलो मेरे पीछे आओ ।' अब उसे महात्माजी की आज्ञा पालन करनी पड़ी ।

महात्माजी अपने साथ उसे बहुत दूर ले गये, जहाँ सोने की धरती थी। मरकत मणि की गुफा थी । अमृत की नदी बह रही थी । विशाल महल थे, उनमें मणियों की सीढ़ी लगी थी और मणियों के ही दीप सजे हुए थे । महात्माजी ने उसे ले जाकर वहाँ खड़ा कर दिया और बोले - 'यह मेरा राज्य है। मैं चाहता हूँ कि यह किसी को दे दूँ । लेकिन मैंने यह सङ्कल्प ले रखा है कि मैं यह उसी व्यक्ति को दूँगा, जिसकी मुट्ठी खाली होगी ।' उसने सोचा - 'अरे! इस छोटे से पत्थर के पीछे इतना बड़ा और कीमती राज्य जा रहा है ।' उसने अपनी मुट्ठी के उस छोटे से पत्थर को फेंक दिया और उसे वह राज्य मिल गया ।

कहने का मतलब यह है कि फल की आकांक्षा मुट्ठी बाँधने के समान है। मुट्ठी में बँधे उस साधारण से पत्थर के समान है। यदि हम उस छोटी-सी कामना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का त्याग कर देते हैं तो अनन्त ब्रह्मानन्द सुख की प्राप्ति हो जाती है -

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/46)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने बतलाया है कि **'सर्वतः सम्प्लुतोदके'** सब ओर से भरे पूरे जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जो प्रयोजन कुँआ, बावली और तालाब में रह जाता है उसी प्रकार तत्त्वदर्शी महापुरुष के लिये वही प्रयोजन संसार के भोगों में रह जाता है। **'तावान् सर्वेषु वेदेषु'** यहाँ **'वेदेषु'** लिखा है, जिसका अर्थ वेदोक्तकर्मसु होगा। वेदोक्त कर्मों का भी अर्थ इस प्रकार होगा - 'वेदोक्त कर्मफलेषु'।

जो संसार के भोगों का, उनकी तृष्णा का और कामनाओं का त्याग करता है, उसको भगवत्प्राप्ति होती है। यदि आप कामना से कर्म करेंगे तो जिसकी कामना से कर्म किया जा रहा है वह फल आपको मिलेगा। यदि फलाकांक्षा का त्याग करके कर्म किया जा रहा है तो उससे आपके चित्त की शुद्धि होगी। चित्त के शुद्ध हो जाने पर परमात्मा का साक्षात्कार होगा। उससे आपको जो सुख मिलेगा, उस सुख की बराबरी संसार का कोई पदार्थ नहीं कर सकेगा। इसीलिए श्रीमद्भागवत में उस धर्म का निरूपण किया गया है, जिसमें फल की आकांक्षा नहीं है। **'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो'** यहाँ 'परम' शब्द लगा है। **'श्रीमद्भागवते मया परमो धर्मः निरूप्यते'** और वह भी प्रोज्झितकैतव परम धर्म। परम धर्म परमात्मा का स्वरूप ही है।

'वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्' 'अत्र श्रीमद्भागवते वास्तवं वस्तु शिवदं वस्तु वेद्यं' अर्थात् ऐसी वस्तु जो वास्तव है अर्थात् परमार्थ है। जिसका कभी बाध नहीं होता उसे परमार्थ कहते हैं। जो बाधरहित है, उसका नाम परमार्थ है। इसीलिए वेदान्तों की प्रक्रिया में तीन सत्ताएँ मानी गयी हैं - प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता।

जो प्रतिभास काल में रहे, उसे प्रातिभासिक सत्ता कहते हैं। जितनी देर तक हमें उसका प्रतिभास हो रहा है, प्रतीति हो रही है उतनी ही देर तक उसका अस्तित्व है, उसके पश्चात् नहीं। जैसे स्वप्न की सत्ता प्रातिभासिक सत्ता है। यह प्रातिभासिक सत्ता अपने अधिष्ठान के ज्ञान से बाधित हो जाती है। जैसे रज्जु में दिखलायी पड़ने वाला सर्प रज्जु के ज्ञान से बाधित हो जाता है और जैसे ही रज्जु का ज्ञान हो जाता है वैसे ही सर्प समाप्त हो जाता है। लेकिन जब तक ब्रह्म का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान नहीं होगा तब तक रस्सी का भान नहीं हो सकता । ब्रह्म ज्ञान के इतर ज्ञान से जिसका भान हो जाये उसकी प्रातिभासिक सत्ता और जिसका केवल ब्रह्म ज्ञान से ही बाध हो उसकी कौन सी सत्ता होगी ?

जिस जगत् को हमलोग देख रहे हैं ,उसकी व्यावहारिक सत्ता है । ब्रह्म ज्ञान के इतर ज्ञान के द्वारा इसका बाध नहीं हो सकता । अतः उसको परमार्थ कहते हैं जिसमें किसी का विरोध नहीं है, न कोई उत्पत्ति है, न बद्ध है और मुक्त है ऐसा जो परमतत्त्व है, उसका नाम परमार्थ है । गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं -

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।अविगत अलख अनादि अनूपा ।
सकल विकार रहित गत भेदा । कहि नित नेति निरूपहिं वेदा ॥

(श्रीरामचरितमानस अ. का. दो.92 के बाद चौ. 7-8)

अर्थात् राम ब्रह्म हैं, परमार्थरूप हैं, अविगत, मन-वाणी से परे हैं, अनादि हैं, अनुपमेय हैं । किसी प्रकार का उनमें विकार नहीं है । **'जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते, नश्यति'** ये षड्विकार उनमें नहीं है । **'गतभेदा'** जिसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है ' जीव जीव का भेद, जीव जड़ का भेद, जीव ब्रह्म का भेद, ब्रह्म जड़ का भेद और जड़ जड़ का भेद इनमें से कोई भी भेद उनमें नहीं है । वे गतभेद हैं । वेद जिसका **'नेति नेति'** कहकर निरूपण करते हैं वह राम परमात्मा हैं । कृष्ण भी परमात्मा हैं। जो राम हैं वही तो कृष्ण हैं। **'वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं** । शिव का अर्थ है कल्याण । वे कल्याणकारी हैं माने कल्याण को देनेवाले हैं ।

'तापत्रयोन्मूलनम्' तीन प्रकार के ताप हमारे आपके पीछे लगे हैं । दैहिक ताप, दैविक ताप और भौतिक ताप । ये ही **'तापत्रय'** हैं । इन तापों के रहते आप सुखी नहीं रह सकते ।

मान लीजिए कि आपके घर में कोई त्योहार है । खूब अच्छे व्यञ्जन बने हैं और आपको मलेरिया आ जाय तो त्योहार का मजा नहीं आएगा । अच्छा ही नहीं लगेगा । कहने का अभिप्राय यह है कि एक ताप आ गया और उसी ने आपके भोजन का सुख मिटा दिया । यह रहा दैहिक ताप । दैविक ताप को आध्यात्मिक ताप भी कहते हैं । शरीर के रोग और मन के रोग इसी में आते हैं। मन में भी ताप होते हैं । आधि और व्याधि । व्याधि तो शरीर में होती है और आधि मन में होती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'आधिस्तु मानसी व्यथा' मन की जो व्यथा है उसका नाम आधि है । मन की व्यथा किसे नहीं है? यह तो सबको है । किसी को चिन्ता है कि परीक्षा के दिन आ रहे हैं, पास होते हैं या नहीं । लड़के पढ़ते नहीं हैं आजकल, हमेशा खेल में लगे रहते हैं । किसी को चिन्ता है कि लड़की बड़ी होती जा रही हैं । स्त्री कहती है -'तुम वर नहीं खोज रहे हो, घर में ही बैठे रहते हो ।' इस बात की चिन्ता पति को भी रहती है कि पत्नी घर में टोकती रहती है। किसी को अपने व्यापार की चिन्ता, किसी को अपनी नौकरी की चिन्ता । इस तरह नाना चिन्ताएँ लोगों में व्याप्त हैं । तुलसीदासजी कहते हैं-

चिन्ता साँपिनि काहि न खाया ।

(श्रीरामचरितमानस उ. का. दो.70 के बाद चौ. 4)

चिन्तारूपी सर्पिणी ने किसको नहीं खाया अर्थात् सबको खाया है। चिन्ता कितनी भयंकर होती है इस पर किसी कवि ने कहा है - **'चिंता चिता द्वयोर्मध्ये तत्र चिंता गरीयसी'** चिन्ता-चिता के बीच में चिन्ता बड़ी कि चिता ? कहते हैं - 'चिन्ता बड़ी है, चिता बड़ी नहीं है। क्योंकि चिता तो मरने पर जलाती है, लेकिन चिन्ता जीते जी जला देती है । जीते जी पुरुष को खोखला कर देती है । आप भोजन करने बैठे हैं, उसी समय किसी ने खबर दे दी कि 'आपका अमुक व्यक्ति मर गया ।' सुनकर भोजन अच्छा लगेगा ? कोई भी अप्रिय बात आप सुन लें आपका सारा सुख नष्ट हो जाएगा । ऐसे निमित्त संसार में आते ही रहते हैं ।

इसी प्रकार आधि-व्याधि आपके पीछे लगे रहते हैं । कभी भी आप ज्योतिषी को जन्म-पत्री दिखलायें तो वह कहेगा - 'सब ग्रह ठीक हैं परन्तु एक ग्रह खराब है ।' हाथ दिखाएंगे तो कहेगा - 'सब ठीक है, भविष्य में कुछ गड़बड़ है । आगे मृत्यु योग है ।' अब इसकी चिन्ता लग गयी ।

पहले जमाने में हमलोग सोचते थे बिजली नहीं है, अंधेरा है । इसीलिए लोगों को भूत-प्रेतों का भ्रम होता था । अब तो घर-घर में बिजली आ गयी है तब भी भूत-प्रेत समाप्त नहीं हो रहे हैं । पुरुष जब घर आता है तो स्त्री का सिर हिलता दिखायी देता है । 'मैं इसको खा जाऊँगी । इसको लेकर जाना है ।' लगता है भूत सवार हो गया है । आधिदैविक ताप पीछे लगे हुए हैं । देखिए, कितना ही आप सँभलकर चलें आप के कुछ न कुछ विरोधी हो ही जाएँगे । कभी-कभी अच्छाई भी विरोध का कारण बन जाती है ।

बहुत से लोग यही सोचते हैं कि वह रोता क्यों नहीं है? वह क्यों शान्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से बैठा है ? इसीलिए उनके सुख में बाधा डालना उनका कर्त्तव्य हो जाता है। कहते हैं कि जैसे ओला अपने भी गलता है और फसल को भी गला देता है। उसी प्रकार दूसरों को बाँधने के लिये मनुष्य अपनी ही खाल खिंचवाता है । इस तरह के लोगों की संख्या कम नहीं है ।

'मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुनाः निष्कारणवैरिणो भवन्ति ।। (स्फुट)

बेचारा मृग केवल तिनके खाकर रहता है । किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं है परन्तु उसके पीछे बहेलिया लग जाता है । मछली पानी के भीतर रहती है। उसके पीछे ढीमर (मछुवारा) लग जाता है । सज्जन बिचारे संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं तो उनके पीछे चुगलखोर लग जाते हैं। स्त्री-पुरुष प्रेम से रह रहे हैं लेकिन पड़ोसन आ गयी और स्त्री का कान भर गई । दोनों के जीवन में जहर घोल दिया । ऐसे कई लोग होते हैं, जो दूसरों के प्रेम में चुगली करके बाधा डालते हैं । चुगलखोर बिना कारण के ही दूसरों के बैरी हो जाया करते हैं ।

हम आपको बताते हैं कि चुगलखोर कैसे होते हैं ? आप सो रहे हैं इतने में आपके चुगलखोर मित्र आ गये । बोले - 'क्यों भाई! सो गये क्या?' आप कहेंगे - 'नहीं, अभी सोने का प्रयत्न कर रहा हूँ । कहिए, कैसे आये आप?' वो कहेगा - 'आपसे कोई जरूरी बात करनी थी । पर अब आप सोइए, कल बात कर लेंगे।' आपने कहा - 'नहीं, अब बात कर ही लीजिये, जबकि आप आ ही गये हैं ।' वो कहेगा - 'नहीं, नहीं कल कर लेंगे ।' आपकी नींद तो चली गयी । आपने आग्रह किया कि 'नहीं, बतला दो ।' बड़ी मुश्किल से उसने कहना शुरू किया - 'हम अमुक के यहाँ गये थे, उसने आपके बारे में ऐसी बात कही जिससे मेरे हृदय को बड़ी चोट लगी । गुस्सा तो इतना आया कि अभी इसके साथ लड़ पड़ूँ । लेकिन आपके संकोच के कारण मैं कुछ बोला नहीं ।' आपने कहा - 'उसने क्या कहा?' उसने कहा - 'अरे भाई! क्यों पूछते हो ऐसी बात?' आपकी जिज्ञासा बढ़ी। उसने आपके कान में मन्त्र फूँक दिया । आपको वह ऐसा कह रहा था । लेकिन आप उससे कहिएगा मत । अगर कहेंगे तो मैं बदल जाऊँगा। आपको ऐसा कहकर वह तो जाकर चैन से सोएगा और आप करवट बदलते रात बितायेंगे । उसने हमको ऐसा क्यों कहा? हमने उसका क्या बिगाड़ा था? हम उसका यह उत्तर देंगे,आदि-आदि। यही सब सोचते रह जायेंगे ।

रात के समय जो विचार दिमाग में आता जाता है, वह बड़ी मुश्किल से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकलता है। जो बड़े-बड़े आदमी हैं, उनकी यही बीमारी है कि रात को उनकी नींद खुल जाती है । विचार दिमाग से निकलता ही नहीं है। वे इसी में परेशान हैं । इसलिये चुगलखोरों से दूर रहना चाहिए। आपका शत्रु आपके सामने गाली नहीं देगा । उसकी ऐसी हिम्मत नहीं पड़ेगी। लेकिन चुगलखोर दे देगा । आपका मित्र बनकर आपको वह सब कुछ बता देगा, जो आपसे कहना नहीं चाहिए था।

ये जो तीन ताप लगे हैं, इनका निवारण कैसे हो? शरीर में जो रोग हैं, हम वैद्य या डॉक्टर से उसका इलाज करवा लेंगे । शरीर के रोग चले जाएँगे। मन की जो चिन्ता है, उसके लिये कुछ मनोरंजन कर लेंगे। नाटक देख लेंगे, सिनेमा देख लेंगे, अपनी मित्र मण्डली में बैठकर हम खेल लेंगे। मन की चिन्ता दूर हो जाएगी । लेकिन एक रोग दूर हुआ दूसरा खड़ा हो गया। मनोरंजन किया आपने कुछ देर के लिये चिन्ता भुला दिया । मनोरंजन समाप्त हुआ फिर वही बात। परिस्थिति तो बदली नहीं, वही रहेगी।

इसी प्रकार जब तक जीवन है, ग्रह दशा पीछे लगी रहेगी। कोई न कोई आपका विरोधी रहेगा ही। शत्रु, मित्र, मध्यस्थ और उदासीन ये सबके हो जाते हैं । कहीं नयी जगह भी आप जाएँ तो वहाँ भी कुछ शत्रु हो जाएँगे, कुछ मित्र हो जाएँगे। कुछ बीच बचाव के हो जाएँगे और कुछ लोगों को आपसे मतलब ही नहीं होगा । सबके पीछे ही ऐसा लगा है। इसका निवारण कैसे हो?'

जब तक हम कर्म करते रहेंगे तब तक जन्म होता रहेगा और जब तक जन्म होता रहेगा ये तीन ताप होते रहेंगे । इन तीन तापों से बचने के लिये जन्म से मुक्त होना होगा । जन्म से मुक्ति कब होगी ? जब कर्मों से मुक्ति होगी और कर्मों से मुक्ति तब होगी, जब परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होगा । ज्ञान यज्ञ में ही कर्म जलता है । कर्म किसी अन्य अग्नि से नहीं जलता ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन !
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। (श्रीमद्भगवद्गीता 4/37)

समिद्ध अग्नि ईंधन को जला देती हैं । वैसे ही ज्ञान की अग्नि सभी कर्मों को जला देती है । ज्ञान की अग्नि कैसे मिलेगी? ज्ञान की अग्नि है क्या? इसका उत्तर है - परमार्थ स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार। जिस समय उस ब्रह्म का साक्षात्कार होगा तभी आपके कर्म नष्ट हो जाएँगे । कर्म नष्ट होंगे तो जन्म नष्ट होगा । जन्म नहीं होगा तो तीनों तापों से सदा के लिये आप छूट जाएँगे ।

श्रीमद्भागवत के द्वारा वह परमार्थ वस्तु वेद्य है। जिसके ज्ञान मात्र से तीनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार के तापों का उन्मूलन अर्थात् जड़ से खात्मा हो जाता है । दवा कैसी होती है । दवा तो रोग को दबा देती है, उसका उन्मूलन नहीं करती है । हमारे तीनों तापों को दबाने का काम नहीं, इनका उन्मूलन होना चाहिये । इनका उन्मूलन तभी होगा जब परमात्मा के स्वरूप का बोध हो जाएगा । **'कर्म कि होहिं स्वरूपहिं जाने।'** अपने स्वरूप को जान लेने पर कर्म नहीं रहेगा ।

निर्मत्सराणां सतां । श्रीमद्भागवत का अधिकारी कौन है ? जिसके हृदय में मत्सर नही है, वह श्रीमद्भागवत का अधिकारी है । परोक्ष ईर्ष्या को मत्सर कहते हैं । 'दूसरों के सुख देखकर जलना' इसी का नाम मत्सर है । यह बड़ा कठिन होता है । मनुष्य को दूसरों का उत्कर्ष सहन नहीं होता । यह मनुष्य में बहुत बड़ा विकार होता है ।

किसी व्यक्ति को देवता से वरदान मिल गया कि तुम जैसा चाहोगे वैसा हो जाएगा । लेकिन उससे दूना पड़ोसियों का हो जाएगा । वरदान लेकर वह घर आया । उसकी स्त्री कुएँ से पानी भरकर दूर से आ रही थी। उसने सोचा कि हमारे घर में एक कुँआ हो जाए । उसके आँगन में एक कुँआ हो गया । लेकिन पड़ोसी के घर में दो कुएँ हो गये ।

वर्षा होने लगी । घर में पानी आने लगा। उसने सोचा हमारा चार मंजिल का मकान बन जाए । उसका चार मंजिला मकान बन गया परन्तु उसके पड़ोसी का आठ मंजिला मकान बन गया । वह जो भी सङ्कल्प करता था, उससे दो गुना पड़ोसी का हो जाता था । इस बात का उसे बहुत दुःख हुआ कि ऐसा क्यों हो रहा है ? उसने क्रोध में सङ्कल्प कर लिया कि मेरी एक आँख फूट जाय, जिससे पड़ोसी की दोनों आँखें फूट गईं ।

लोगों में अपना नुकसान करके भी दूसरों का नुकसान करने की भावना होती है । ऐसे मत्सर ग्रस्त लोगों के लिये श्रीमद्भागवत नहीं है । 'सतां' अर्थात् जो सत्पुरुष हैं, अपना कल्याण चाहते हैं और संसार का कल्याण चाहते हैं । ऐसे लोगों के लिये यह श्रीमद्भागवत है । वे ही इसके अधिकरी हैं ।

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते श्रीमद्भागवत के निर्माता महामुनि हैं। महामुनि व्यास भगवान् के अवतार हैं। इन्होंने वेद के चार विभाग किये हैं । उन वेदों की व्याख्या के लिये महाभारत और अट्ठारह पुराणों का निर्माण किया है। अपने शिष्यों और प्रशिष्यों के द्वारा वेद की परम्परा को आगे बढ़ाया है । इसलिये व्यासजी को जगद्गुरु माना गया है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमलोग आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन व्यास जी की पूजा करते हैं । उस व्यास-पूजा का नाम गुरु-पूजा है । गुरु पूर्णिमा भी उसी को कहते हैं ।

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा, त्रेतायां ऋषिसत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम्॥

(मठाम्नाय-महानुशासन-73)

आदि शङ्कराचार्य ने अपने महानुशासन में कहा है - 'सतयुग में ब्रह्मा जगद्गुरु थे, त्रेता में वशिष्ठजी जगद्गुरु हुए, द्वापर में व्यासजी जगद्गुरु हुए और कलियुग में मैं स्वयं (शङ्कराचार्यजी) जगद्गुरु हूँ ।' व्यासजी सबके गुरु हैं - **'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वं'** 7व्यास के द्वारा सब कुछ कहा जा चुका है । महाभारत में भी व्यासजी ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है -

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' (महाभारत)

जो महाभारत में है, वही अन्यत्र है ,जो महाभारत में नहीं हैं, वह कही नहीं है । ऐसे महामुनि व्यासजी महाराज श्रीमद्भागवत के प्रणेता हैं । तो फिर अब क्यों भटक रहे हो ? **'किमर्थं व्यर्थं भोः व्रजत'** इधर-उधर क्यों भाग रहे हो? कुत्सित कथाओं की ओर क्यों जाते हो ?

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः ।
क्षणार्धं क्षेमार्धं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ॥
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे ।
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य 6/100)

एक क्षण के लिये या आधे क्षण के लिये ही अपने कल्याण के लिये अतुलनीय अमृतमय श्रीमद्भागवत का श्रवण करना चाहिये । श्रीमद्भागवत के श्रवण से प्राणी का कल्याण होता है । इसका साक्षी राजा परीक्षित् है । सात दिन तक श्रीमद्भागवत की कथा सुनने मात्र से राजा परीक्षित् का भव-बन्धन छूट गया है । सच पूछा जाए तो श्रीमद्भागवत ही अमृत है ।

श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में आता है कि जब राजा परीक्षित् को श्रीशुकदेवजी महाराज कथा सुनाने के लिये प्रस्तुत हुए तब हाथ में अमृत का कलश लेकर देवता आ गये । उन्होंने बड़ी नम्रता से शुकदेवजी को प्रणाम किया और कहा - 'महाराज ! आप राजा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत रूपी अमृत पिलानें जा रहे हैं। इन्हें तक्षक के काटने से मृत्यु का भय है । हम अमृत का घड़ा लाए हैं । आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह अमृत परीक्षित् को पिला दीजिये । इससे सर्प के काटने से उसकी मृत्यु नहीं होगी । इसके बदले श्रीमद्भागवत रूपी अमृत पान जो आप उसको कराने जा रहे हैं, वह उसे न पिलाकर हमें पिला दीजिये -

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन्॥
शुकं नत्वाऽवदन् सर्वे स्वकार्ये कुशलाः सुराः।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम्॥
एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रदीयताम्।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम्॥

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य13-14-15)

देवता बोले - 'हमसे आप अमृत का विनिमय कर लीजिये । कथा अंमृत हमको दे दें और यह अमृत आप ले लें ।' शुकदेवजी ने सोचा यह तो अच्छी बात है । राजा परीक्षित् अमृत पी लेगा तो मरेगा नहीं और ये तो कथा सुनना चाहते हैं । कोई बुरी बात नहीं है । लेकिन ये श्रीमद्भागवत की कथा का मूल्यांकन गलत कर रहे हैं । स्वर्ग के अमृत से श्रीमद्भागवतरूपी अमृत की तुलना कर रहे है । कहाँ काँच और कहाँ मणि ? कहाँ अमृत कुम्भ और कहाँ श्रीमद्भागवत की कथा ? ये लोग बड़े चतुर हैं । किसी भी वस्तु का अवमूल्यन करना बहुत बड़ा अपराध है । श्रीमद्भागवत की बराबरी स्वर्ग का अमृत भी नहीं कर सकता । यह जानकर शुकदेवजी ने उन देवताओं से कहा - 'अपना अमृत आप ले जाइए। हम इसी कथा-अमृत को इसे पिलायेंगे ।' किसी कवि ने पूछा - 'अमृत कहाँ है?'

अब्धौ विधौ वधुमुखे फणिनां निवासे
स्वर्गे सुधा वसति नो विबुधाः वदन्ति।
क्षारात् क्षयात् पतिमृतत्त्वात् गरलाच्च पातात्
कण्ठे सुधा वसति सा भगवज्जनानाम्। (स्फुट)

एक समाज में बड़े-बड़े विद्वान् बैठे थे । किसी ने पूछा - 'अमृत कहाँ है? एक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने कहा - '**अब्धौ**' अर्थात् समुद्र में अमृत है क्योंकि उसी समुद्र के मंथन से अमृत प्राप्त हुआ है ।' दूसरे खड़े हुए और उन्होंने कहा- 'वह तो निकल गया । वह वहाँ से निकलकर '**विधौ**' अर्थात् चन्द्रमा की किरणों में चला गया । इसीलिये चन्द्रमा को सुधांशु कहते हैं । अंशु माने किरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और 'सुधा' माने अमृत अर्थात् अमृत की किरण वाला।' तीसरा बोला - **'वधुमुखे'**- सुन्दरी के अधर में अमृत है ।' अगला बोला - **'फणिनां निवासे'** नाग अमृत को नागलोक में ले गए हैं ।' तब किसी ने कहा - 'नहीं, वह अमृत तो स्वर्ग में है।' श्रोताओं ने कहा - 'आप सबकी बात गलत है । यदि अमृत समुद्र में है तो समुद्र खारा क्यों? खारा होने के कारण समुद्र में अमृत नहीं है ।' 'यदि चन्द्रमा में अमृत होता तो उसे क्षय रोग नहीं होता । चन्द्रमा घटता-बढ़ता क्यों है?' 'नारी के अधर में होता तो नारी का पति मरता क्यों है ? उसे मरना नहीं चाहिए।' 'नाग लोक में अमृत होता है तो सर्प में विष क्यों है ?' यदि स्वर्ग में अमृत है तो **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (श्रीमद्भगवद्गीता 9/21) अर्थात् पुण्यों का क्षय होने पर जीवों को मृत्युलोक में क्यों आना पड़ता है ? श्रीमद्भगद्गीता में यह जो लिखा है वह झूठे थोड़े ही लिखा है। स्वर्ग में जाने वाला भी मरता है । वहाँ रहने वाले का भी पतन होता है । वह अमृत है लेकिन वह सापेक्ष अमृत है । निरपेक्ष अमृत नहीं है । तब सभी ने हाथ जोड़कर कहा कि 'महाराज ! आप बताइये अमृत कहाँ है ?'

'कण्ठे सुधा वसति सा भगवज्जनानाम्' भगवान् के जो भक्त हैं उनके कण्ठ में अमृत रहता है । वे जो श्रीमद्भागवत की कथा सुनाते हैं वह अमृत है। उसको छोड़कर-**'किमर्थं व्यर्थं भो! व्रजत कुपथे कुत्सितकथे** । कुत्सित कथाओं से युक्त कुपथ में व्यर्थ क्यों भटक रहे हो ?**'क्षणार्द्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम्'** चाहे आधे क्षण के लिये ही सही लेकिन अपने कल्याण के लिये अतुल सुधा श्रीमद्भागवत की कथा का एक बार तो श्रवण कर लो ।

'किं वा परैः' कहाँ तुम भाग रहे हो? श्रीमद्भागवत की कथा का फल सुनने को तो दूर कथा सुनने की इच्छा मात्र से भगवान् हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं । आप सोचिए ! आप कथा सुनने के लिये घर से आए। जब घर से चले मन ने पूछा—'कहाँ जा रहे हो?' आपने कहा - 'कथा सुनने !' तब श्रीमद्भागवत का नाम सुनते ही भगवान् श्रीकृष्ण हृदय में आ गये । जब कथा के सुनने की इच्छा मात्र से भगवान् हृदय में आ जाते हैं तो कथा सुनने से तो जाने क्या होगा ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के विषय, अधिकारी, फल, कर्ता के बतलाने के पश्चात् व्यासजी बोले - 'यह श्रीमद्भागवत कोई ग्रन्थ नहीं है । यह तो फल है-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

(श्रीमद्भागवत 1/1/3)

श्रीमद्भागवत फल है । यह किसका फल है ? आम का, अमरूद का कि जामुन का ? नहीं, इन वृक्षों में क्या है । यह तो कल्पवृक्ष का फल है । परन्तु नहीं, कल्पवृक्ष का फल भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता । कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर यदि आप कोई कल्पना करेंगे तो आपका उसी कल्पना के अनुसार फल मिलेंगे । वह नवीन कर्म आपको नहीं दे सकता । कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर यदि आप यह सोचें कि हमको एक अश्वमेध यज्ञ का फल मिल जाए तो वह कल्पवृक्ष नहीं देगा ।

जैसे आप किसी सेठ के यहाँ रुपया जमा कर दें और उसे यह कहें कि 'हम जब माँगें हमको दे दिया करो । वह देगा । आप जब माँगेंगे वह देगा। लेकिन तभी तक देगा जब तक आपके खाते में रुपया जमा है । जिस समय आपका रुपया खर्च हो जाएगा, वह आपको देना बन्द कर देगा और आपसे कह देगा 'अब आप जाइए ।'

इसी तरह कल्पवृक्ष भी नहीं देगा । दूसरी बात यह है कि कल्पवृक्ष दो ही फल दे सकता है । अर्थ और काम दे सकता है । अर्थ (धन) चाहिये तो कल्पवृक्ष दे देगा और भोग चाहिये तो उसे भी कल्पवृक्ष दे देगा । लेकिन धर्म और मोक्ष कल्पवृक्ष नहीं दे सकता । इसका कल्पवृक्ष कोई और है और वह कल्पवृक्ष है वेद (निगम) **'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्'** । निगम अर्थात् वेद । हमारे सनातनधर्मियों में दो प्रकार के ग्रन्थ हैं । एक निगम और दूसरा आगम। अपौरुषेय वचन को निगम कहते हैं और पौरुषेय वचन को आगम कहते हैं ।

निगम सबका मूल माना गया है । वेद में तीन काण्ड होते हैं कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड । कहा जाता है कि वेदों में एक लाख मन्त्र हैं। उसमें से अस्सी हजार मन्त्र कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं, सोलह हजार उपासना काण्ड का प्रतिपादन करते हैं और शेष चार हजार मन्त्र ब्रह्म तत्त्व का वर्णन करते हैं।

श्रीमद्भागवत उस वेदरूपी कल्पवृक्ष का फल है - **'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्'** वह फल भी कैसा - **'गलितं फलम्'** अपने आप डाल से पककर गिरने वाला फल है । जो स्वयं परिपक्व होकर गिरने वाला फल होता है वह बहुत मीठा होता है । आम का फल आप तोड़ लें उसमें कुछ न कुछ खटाई होती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर यदि वह स्वयं पक कर गिर जाए तो उसमें मिठास होगी ।

कहा जाता है कि पेड़ में जो सर्वोत्तम फल होता है, तोता उसी पर चोंच मारता है क्योंकि मीठे आम की यही पहचान होती है । एक भाव यह भी है कि तोते की चोंच में मिठास होती है । अगर वह किसी खट्टे फल पर भी चोंच लगा दे तो वह फल मधुर हो जाता है ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत कल्पवृक्ष वैसे ही मधुर था फिर शुकदेवजी रूपी शुक ने इस फल में अपने चोंच लगाए । यदि वह फल सर्वोत्तम नहीं होता तो शुकदेवजी, इसका वर्णन ही नहीं करते । उन्होंने अध्ययन किया और इसे परीक्षित् को सुनाया । इसी से सिद्ध होता है कि यह फल बड़ा मधुर है और इसे शुकदेवजी ने सुनाया तो इसमें और मधुरता आ गयी । **'शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्'** शुकरूपी मुख से यह श्रीमद्भागवतरूपी फल अमृतमय हो चुका है । इसीलिये अब कथा सुनो और अमृतफल का पान करो ।

किसी ने कहा कि 'महाराज ! आप कैसी उल्टी बात करते हैं । फल तो खाया जाता है, पिया नहीं जाता । आपको यदि मीठे आम का फल मिल जाए क्या आप उसको पिओगे? गुठली और छिलका तो छोड़ना पड़ेगा । पर यहाँ कहते हैं- **'पिबत भावगतं रसमालयम्'** इस श्रीमद्भागवतरूपी फल में गुठली, छिलका आदि कुछ नहीं है । जिसको नजाकत पसंद है, वह अंगूर भी छीलकर खाता है । लेकिन अंगूर जैसा छिलका भी श्रीमद्भागवत में नहीं है । इसमें तो केवल रस ही रस है। गुटली भी नहीं है, छिलका भी नहीं है । इसलिये **'पिबत'** अर्थात् इस अमृत रस का पान करो।

प्रश्न उठा कि जीभ से इस अमृत रस का पान करें ? इस अमृतरस का पान जीभ से नहीं किया जाता । इसका पान कान रूपी दोने में लेकर किया जाता है । भगवान् ने ये जो कान दिए हैं, वह कथारूपी अमृत रस का पान करने के लिये दिए है । कहते हैं 'पीते जाओ **पिबत भागवतं रसमालयम्** । किसी ने कहा-'हमने तो कई बार कथा सुनी है । बड़े-बड़े कथाकार आते हैं और कथा सुनाकर चले जाते हैं । हमने तो सुन लिया है । कहा गया है कि यदि कोई ऐसी बात करता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे अभी तक कथा का रस मिला ही नहीं ।

राम कथा जे सुनत अघाहीं । रस विशेष जाना तिन नाहीं ॥

(श्रीरामचरित मानस)

जो भगवान् की कथा सुनकर अघा जाते हैं, तृप्त हो जाते हैं तो यह समझिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि उन्होंने अभी रस विशेष को जाना ही नहीं। अगर कथा सुनी होती तो वह कथा छोड़ ही नहीं सकता ।

बात यह है कि बहुत से लोग कथा में ऊबने लगते हैं । यदि कोई कथा सुना रहा हो और उसके सामने बहिर्मुख व्यक्ति बैठ जाए तथा बार-बार घड़ी देखे, कानाफूसी करे तो यह देखकर कथाकार का भी मन नहीं लगेगा । वह सोचेगा हमारी कथा जम नहीं रही है । बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो कथा में जाकर यह सोचते हैं कि हम फँस गये । हमारे मित्र हमें यहाँ ले आए हैं । अब क्या करें। जब तक कथा पूरी नहीं होती तब तक उठ नहीं सकते। साढ़े आठ बजे तक कथा होगी । अभी इतना बजा ही नहीं । वह बार-बार घड़ी की ओर ही देखता रहता है । प्रतीक्षा करता है कि कब साढ़े आठ बजे और निकले यहाँ से । जैसे किसी को पानी में डुबोकर उसकी गर्दन भी पानी डुबो दी जाए। ऐसा बहुत से लोगों को एहसास होता है । कहाँ से कथा सुनने आ गए !

एक सज्जन थे । वह कभी स्नान नहीं करते थे । एक बार कोई पर्व पड़ा। सब लोग स्नान करने के लिये गंगाजी जाने लगे । उस सज्जन के कोई एक मित्र अच्छे थे। संसार में यदि कोई अच्छे मित्र बनाये, अच्छे लोगों के साथ रहने लगे तो उसका कल्याण हो ही जाता है । उसके मित्रों ने कहा - 'चलो न तुम भी स्नान कर लो ।' उसने कहा - 'भाई, तुम तो जानते हो, हमने बारह वर्षों से स्नान नहीं किया है । हम स्नान करते ही नहीं हैं । जल से हमको बहुत परहेज है ।' मित्रों ने कहा - 'ऐसा करो, तुम स्नान मत करना बहुत से लोग मेला देखने जा रहे हैं । चलो तुम भी । हम लोग एक साथ मेला देख लेंगे ।' सभी मित्र लोग उसे साथ लेकर मेला देखने चल दिये । उन्होंने इधर-उधर मेला दिखाया । उसके बाद उससे बोले - 'चलो अब गंगाजी का दर्शन कर लो । गंगा के दर्शन मात्र से पुण्य मिलता है ।' भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है -

कुतोऽवीचीवीची यदि तव गता लोचनप्रथा।
समापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ॥ (गंगाष्टकम् -6)

इसका अर्थ है - हे गंगे माँ! जिसने तुम्हारी तरंगों का दर्शन कर लिया उसके लिये अवीचि (नरक) कहाँ रह गया और जिसने तुम्हारा पान कर लिया वह तो अमर हो जाता है । और भी कि-

भगवद्गीता किंचिदधीता, गङ्गाजललवकणिका पीता।
येनाकारि मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा॥(मोहमुद्गर - 5)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृष्णकथापूरित श्रीमद्भागवत का जिसने पान कर लिया हो, यमराज उसकी चर्चा भी नहीं करते और हे गंगे ! तुम्हारी गोद में जिसका शरीर छूटता है, उसके लिये इन्द्रपद भी तुच्छ हो जाता है ।

कहते हैं - गरुड़ किसी सर्प को अधमरा करके अपनी चोंच में दबाए कहीं जा रहा था । उड़ते-उड़ते गंगा की धारा की ऊपर से निकला । उसी समय सर्प छटपटाया और गरुड़ की चोंच से छूटकर गंगा की धारा में जा गिरा । गंगाजी में ही उसका शरीर छूट गया । परिणाम यह हुआ कि चतुर्भुज विष्णु बनकर उसी गरुड़ की पीठ पर बैठकर वैकुण्ठ चला गया । यह गंगाजी का महत्त्व है । उसके मित्रों ने कहा - 'भाई, चलो गंगाजी का दर्शन तो कर लो।' उसने कहा - 'हाँ चलो दर्शन कर लेते हैं ।' वे सब गंगाजी का दर्शन करने चले गये । वहाँ उसके मित्रों ने कहा - 'स्नान मत करो, थोड़ा सा जल छिड़क लो।' जल छिड़कने के लिये वह तैयार हो गया । गंगाजी के पास पहुँचा और दूर से ही जल छिड़कना चाहा । मित्रों ने कहा - 'भाई, यहाँ मिट्टी लगी है, थोड़ा आगे बढ़ो। ' वह थोड़ा आगे बढ़ा। 'थोड़ा और, थोड़ा और' कहते-कहते उसे सब गंगाजी के पास तक ले आए । उसके मित्रों ने उसे ढकेल दिया। वह गंगाजी में गिरा और गोता लगाने लगा । मित्रों ने कहा - 'अब कोई मन्त्र पढ़ो ।' बोले हर-हर गंगा गोदावरी।

कहने का मतलब यह है कि यदि अच्छे मित्र होते हैं तो वे सत्संग में ले जाते हैं और वहाँ की एक बात भी मन में बैठ गयी तो फिर दूसरे दिन आना ही पड़ता है । तब ऐसा लगता है कि इतनी बड़ी जिन्दगी बीत गयी हमने भगवान् की कथा नहीं सुनी । अब सुनना चाहिये, जीवन बेकार जा रहा है । जैसे अंजलि का पानी धीरे-धीरे गिरता चला जाता है और एक समय अंजलि खाली हो जाती है ठीक उसी तरह से हमारे श्वास भी निकलते जा रहे हैं ।उत्तम संग करने से मनुष्य की बुद्धि शुद्ध हो जाती है । बहुत से लोगों को कथा अच्छी नहीं लगती -

पूर्व जन्म के पाप से, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर से भोजन की रुचि जाय॥ (स्फुट)

पूर्व जन्म के पापों से भगवान् की चर्चा अच्छी नहीं लगती । जैसे ज्वर के जोर से भोजन की रुचि चली जाती है । हम लोगों ने देखा है कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो इधर-उधर की बात करो तो जाग जायेंगे यदि भगवान् की कथा सुनाओ तो ऊँघने लगते हैं । यहाँ भी बहुत से ऐसे लोग हैं ।

एक बार वृन्दावन में कथा हो रही थी, जिसमें कुछ लोग ऊँघने लगे थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक व्यक्ति को खड़ा कर दिया गया और उसे यह कहा गया कि जो कोई भी व्यक्ति ऊँघने लगे उसको जगा दिया करना । उसका काम था जगाने का । एक सज्जन ऊँघ रहे थे । उसने उन्हें जगाया । उसने कहा - 'हम क्या करते हैं तुमको क्या पता है । आँखें बन्द करके एकाग्रचित्त से सुन रहे हैं ।'

प्रश्न आता है कि कथा में नींद क्यों आती है ? इसके कई कारण हैं। देखिए, जो बड़े-बड़े समृद्ध देश हैं, वहाँ के लोगों के लिये नींद बहुत दुर्लभ है। अमेरिका में बड़े-बड़े मकान हैं, बड़ा सुन्दर साज-बाज है। वहाँ आपको सुन्दर विस्तर चाहिए, तकिया चाहिए, मच्छर हो तो मछहरी चाहिए, गर्मी हो तो पंखा चाहिए और इतने पर भी नींद न आए तो नींद की गोली चाहिए।

अपने भारत में गरीबी हैं पर यहाँ तो यहीं बैठे-बैठे भगवान् की कथा सुनते-सुनते नींद आ जाएगी । क्योंकि हमको शान्ति चाहिये । कथा सुनने से शान्ति मिलती है। शान्ति मिलती है तो नींद आ जाती है । हाँ, अगर हम नींद न लें और कथा का आनन्द लें तो वह नींद भी तुच्छ हो जाएगी ।

कहने का अभिप्राय यह है कि अगर कथा में मन नहीं लगता है तो भी कथा सुननी चाहिए । जैसे अगर किसी की जीभ में पित्त दोष हो जाता है तो उसे मिश्री भी कड़वी लगती हैं परन्तु यदि वह बराबर मिश्री का सेवन करे तो पित्त दोष की वही दवा हो जाती है । इसी तरह से यदि भगवान् की कथा में मन नहीं लगता है तो भी कथा में जाकर बैठिये । कथा में मन लगने लगेगा । फिर तो उसके बिना आप बेचैन हो जाएँगे । फिर रोज सुनना ही पड़ेगा ।

इसीलिये **'पिबत भागवतं'** श्रीमद्भागवत के अमृत रस का पान करो। पूछा गया कि कब तक करें? उत्तर है - जब तक **'आलयं'** माने जब तक नींद न आ जाए तब तक करो । **'आलयं'** जब तक मोक्ष न हो जाय तब तक करो। **'आलयं'** जब तक शरीर में प्राण है तब तक कथा का अमृत रस पान करते रहो। **'आलयं'** जब तक मृत्यु न हो जाय तब तक करते रहो । **मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।** हे पृथ्वी के भावुक जनो ! श्रीमद्भागवतरूपी रस का बारम्बर पान करो।

नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनकादि ऋषियों ने स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये ब्रह्मसत्र का अनुष्ठान किया जिसमें अठ्ठासी हजार ऋषि-मुनि उपस्थित थे । उन्होंने सोचा कि यज्ञ के साथ-साथ सत्संग भी होना चाहिये । उन्होंने सूतजी को उत्तम आसन पर बैठाया और उनसे सबने निवेदन किया । अठ्ठासी हजार ऋषि-मुनियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की ओर से शौनकजी प्रमुख बने । उन्होंने उनसे कहा - 'महाराज ! हमको आप कथा सुनाइए । इस घोर कलियुग में लोगों की बुद्धि पाप परायण हो रही है उससे हमारा मन कैसे अलग हो इसका कोई उपाय बताइये ।'

सूतजी ने कहा - 'श्रीमद्भागवत एक ऐसा शास्त्र है जो मनुष्य के मानसिक दोषों का विनाश कर देता है। जैसे सिंह की ध्वनि से भेड़िये भाग जाते हैं वैसे ही श्रीमद्भागवत की ध्वनि से कलियुग के पाप-दोष भाग जाते हैं । श्रीमद्भागवत कृष्णद्वैपायन द्वारा रचित है । शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को सुनाकर उनका उद्धार किया था।'श्रीमद्भागवत की कथा कैसे प्रारम्भ हुई उसकी भूमिका बताते-बताते हुए श्रीसूतजी ने बतलाया कि-

सरस्वती नदी के तट पर सम्याप्रास नाम का एक आश्रम है । वहाँ कृष्णद्वैपायन व्यासजी निवास करते थे । एक दिन वे आचमन करके विचार करने लगे थे कि हमने छंदों का, गुरुओं का, अग्नियों का सबका आराधन किया। वेदों के चार भाग किए। वेदों का व्याख्यान करने के लिये महाभारत की रचना की और सत्रह पुराण बनाये । परंतु फिर भी हमें ऐसा लगता है कि जो करना चाहिए था, वह नहीं किया । मन अतृप्त है । इस प्रकार का विचार उनके मन में आ ही रहा था कि इतने में वीणा बजाते और हरिगुण गान करते हुए नारदजी वहाँ पधारे । व्यासजी ने उनका सत्कार किया और बैठाया । नारदजी ने व्यास की ओर देखकर कहा - 'महाराज ! आपका मुख म्लान क्यों है ? आप अपने मन में कुछ अभाव का अनुभव कर रहे हैं । ऐसी कौन सी बात है, जिसके कारण आपके मन में चिन्ता है । व्यासजी बोले - 'हमें तो कुछ पता ही नहीं लग रहा है । आप ही कुछ बताइए ।' नारदजी ने कहा - 'आपने सब कुछ तो किया। लेकिन भगवान् के गुण-गणों का वर्णन नहीं किया ।

जब तक भगवद्गुणगणों का वर्णन नहीं होता तब तक कविता की सार्थकता नहीं होती। वाणी की सार्थकता भगवान् के नाम और उनके गुण-गणों के वर्णन में है ।' वाणी भले ही विचित्र पदों से समलंकृत क्यों न हो यदि भगवान् के पवित्र-यश के गान से रहित है, उनके नाम से रहित है, तो वह वाणी काक-तीर्थ के समान है । एक होते हैं गन्दे ताल-तलैया और एक होता है मानसरोवर। मानसरोवर में हंस रहते हैं और ताल-तलैया में बगुले, कौए आदि रहते हैं । ऐसी वाणी चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, छन्दोबद्ध क्यों न हो, कविता के अनेक गुणों से समलंकृत ही क्यों न हो किंतु यदि भगवद्गुणगणों का वर्णन उसमें नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है तो वह काक-तीर्थ के समान है ।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद् वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

(श्रीमद्भागवत 1/5/10-11)

अर्थात् जिस वाणी से चाहे वह रसभाव अलङ्कारादि से युक्त ही क्यों न हो, जगत को पवित्र करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के यश का कभी गान नहीं होता, वह तो कौओं के लिए उच्छिष्ट फेंकने के स्थान के समान अपवित्र मानी जाती है । मानसरोवर के कमनीय कमलवन में विहरने वाले हंसों की भाँति ब्रह्मधाम में विहार करने वाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते ।

इसके विपरीत, जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दों से युक्त भी है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान् के सुयशसूचक नामों से युक्त है, वह वाणी लोगों के सारे पापों का नाश कर देती है क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणी का श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं ।

वाणी का व्यवहार जनता के पापों का विनाश कर देने वाला होता है । भले ही श्लोकबद्ध न हो, कुछ छंदोभंग भी हो गया हो परंतु उसमें भगवान् के अनन्त नाम ग्रन्थित है । सज्जन उसका श्रवण करते हैं, वर्णन करते हैं और गान करते हैं । बतलाया गया है कि -

भणिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ । राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
विधु वदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना वर नारी॥

(श्रीरामचरित मानस बा.का. दो. 9 के बाद चौ. 3)

कोई कविता विचित्र हो, सुकवि के द्वारा निर्मित हो, लेकिन भगवान् का उसमें नाम न हो तो वह वैसा ही है जैसे कोई चन्द्रमुखी सुन्दर नारी अलंकारों से अलंकृत तो हो किंतु उसके शरीर पर वस्त्र न हो । जिस प्रकार नारी के शरीर पर यदि वस्त्र न हो तो उसकी शोभा नहीं रहती, उसी तरह से भगवद्गुणगण विहीन छन्दों की, कविता की शोभा नहीं रहती -

भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी । राम कथा जग मंगल करनी॥

(श्रीरामचरित मानस)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कविता भले ही भदेश हो, परंतु उसमें यदि उत्तम वस्तु का वर्णन है तो वह रामकथा जगत् का मंगल करने वाली हो जाती है ।

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथकी ॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहिं सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

(श्रीरामचरित मानस बा.का. दो. 9 के बाद छन्द)

जिस प्रकार आप गंगा के किसी भी घाट पर स्नान करें वह आपका कल्याण करेगी ही । ठीक उसी प्रकार भगवान् की कथा कहीं से भी सुनो, वह कल्याण करने वाली है। कहते हैं - भले ही उत्तम शब्दों का सन्निवेश न हुआ हो, उत्तम पद न हों, परंतु भगवान् की कथा का सम्पर्क, उनके नाम का उच्चारण करने से वह कविता उसी प्रकार आदरणीय हो जाती है, जैसे भगवान् शङ्कर के अंग में चिता की भस्म लगकर पवित्र हो जाती है ।

जिस प्रकार श्मशान की विभूति भगवान् शङ्कर के श्रीअंग में परम पवित्र हो जाती है । उसी तरह गुरु के चरण-कमलों का रज जिसे मिल जाए वह परम पवित्र हो जाता है -

बन्दउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ।

(श्रीरामचरित मानस बा.का. दो. 5 चौ 1-2)

सुकृति रूपी शंभु के शरीर की और गुरु के चरण कमलों की रज विमल विभूति है । भगवान् शङ्कर के अंग की विभूति तो विमल नहीं है लेकिन वे विमल हैं। विमल विभूति का यहाँ पर अर्थ है 'ऐश्वर्य'। गुरु के चरण कमलों की रज क्या है? 'ऐश्वर्य ।' उस रज को लगाने वाला परम ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है ।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं । ते जन सकल बिभव बस करहीं॥

(श्रीरामचरित मानस अ.काण्ड)

नारदजी ने कहा - 'महाराज ! परमात्मा के गुण-गणों का वर्णन कीजिए। सत्संग के द्वारा ही प्राणी का कल्याण होता है । भगवान् के गुण-गणों के श्रवण का अद्भुत महत्त्व है । मैं पहले जन्म में दासी पुत्र था । मेरी माता एक ब्राह्मण की दासी थी । मैं उस दासी का एकमात्र पुत्र था । मैं उन ब्राह्मण के घर में रहता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था । एक बार संन्यासी लोग चातुर्मास करने के लिये वहाँ आये । ब्राह्मण ने मुझे उन महात्माओं की सेवा में लगा दिया । मैं उन महात्माओं के पास रहने लगा था । उनकी परिचर्या करता था । उनकी सब प्रकार की सेवा करता था । वे जब भोजन कर लेते तो मैं मात्र उनका प्रसाद ही ग्रहण करता था । उससे **'तत्पाद किल्विषाः'** अर्थात् उस प्रसाद के प्रभाव से मेरे किल्विष याने पाप दूर हो गये। जब वे महात्मा भजन-पूजन से निवृत्त होकर सत्संग करते थे, तब मैं उनके मुख से निकली हुई कथा का सादर श्रवण करता था । चार मास तक भगवद्कथा के श्रवण से मेरी बुद्धि परिष्कृत हो गयी थी । अब जब महात्मा जाने लगे तो उनके वियोग का मुझे बहुत दुःख हुआ । कहा गया है कि -

बंदउ संत असज्जन चरना । दुःख प्रद उभय बीच कछु बरना।।
मिलत एक दारुन दुख देही । बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।।

(श्रीरामचरित मानस बा.काण्ड)

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ । क्योंकि दोनों ही दुःख देने वाले हैं । संत जब जाने लगते हैं तब दुःख देते हैं और असंत जब मिलते हैं तब दुःख देते हैं । उन महात्माओं ने कहा - 'तुम यही रहकर भजन करो। हम तुम्हें भजन करने की युक्ति बतला देते हैं । हमारे सत्संग के वचनों का स्मरण करो । तुम्हारी मात्र एक माता है । उस बेचारी को छोड़कर कहाँ जाओगे।' महात्मा चले गये और मैं वहीं रह गया। मन में वैराग्य तो हुआ कि 'मैं चला जाऊँ ।' लेकिन मेरी माता अकेली थी । इसलिये माता के प्रिय के लिये मुझे वहाँ रहना पड़ा । संयोग की बात है कि मेरी माता एक दिन गाय दुहने के लिये जा रही थीं । रास्ते में किसी सर्प ने उसे काट लिया और वह मर गयी तो मैंने यह समझा कि भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले भगवान् ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। मेरी आसक्ति का जो एक बन्धन था उसको भगवान् ने छुड़ा दिया । मैं उत्तर दिशा की ओर चल दिया । चलते-चलते एक वन में पहुँचा। वहाँ मुझे प्यास लगी । वहाँ जल में स्नान किया और एक वृक्ष के नीचे बैठकर महात्माओं द्वारा बतायी गयी ध्यान प्रक्रिया के अनुसार ध्यान में बैठ गया। जगत् और शरीर की विस्मृति हो गई।

आप यह समझ लें ध्यान करने वाला जब तक सोचता रहता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ तब् ध्यान में मन नहीं लगता है। वह अपना ही ध्यान कर रहा है। वह जब अपने-आपको भुला देगा तभी भगवान् सामने प्रकट होंगे । तो मुझे जगत्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की और शरीर की विस्मृति हो गयी और भगवान् की दिव्य मूर्ति मेरे हृदय में प्रादुर्भूत हो गयी । मैं आनन्द के सम्प्लव में लीन हो गया । भगवान् की मूर्ति दिखायी दी जो मुझे आनन्द प्रदान कर रही थी । फिर एकाएक भगवान् ने वह मूर्ति मेरे हृदय से खींच ली । तब जैसे मणि के बिना फणि की अवस्था हो जाती है वैसी मेरी स्थिति हो गई । व्याकुल होकर इधर-उधर देखने लगा। इतने में आकाशवाणी हुई -

'हन्तास्मिन् जन्मनि भवान् मा मां द्रष्टुमिहार्हति।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्॥

(श्रीमद्भागवत 1/6/22)

बड़े दुःख की बात है कि आप इस जन्म में मुझे नहीं पा सकेंगे जिनके अन्तःकरण अपरिपक्व हैं, उन कुयोगियों के लिये मेरा दर्शन दुर्लभ है? तुम तपस्या करते हुए उस शरीर का त्याग करो ।' मैंने भगवान् का ध्यान करते हुए शरीर का त्याग कर दिया ।

दूसरे जन्म में ब्रह्मा का पुत्र हुआ । उनका पुत्र होकर वीणा हाथ में लेकर इसी प्रकार भगवान् का नाम लेता रहता हूँ । जब भी भगवान् को बुलाना चाहता हूँ, भगवान् मेरे सामने प्रकट हो जाते हैं । यह सत्संग और भगवत्कथा का प्रभाव है । इसीलिए 'हे महाराज ! आप भगवद्गुणगणों का वर्णन कीजिये आप श्रीमद्भागवत की रचना कीजिए, जिससे लोक-कल्याण हो । नारद जी ने ब्रह्मा जी से जो चतुःश्लोकी भागवत सुनी थी, उन्होंने वह व्यासजी को सुना दिया और कहा 'आप इस चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत कथा का विस्तार से वर्णन कीजिये।' ऐसा कहकर नारदजी चले गये ।

व्यासजी ने उन्हीं चार श्लोकों के आधार पर अठ्ठारह हजार श्लोकों की 'श्रीमद्भागवत' बनायी । वह चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत आप कल सुनेंगे । आज प्रसंग को यहीं विश्राम देते हैं ।

श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम।
गोविन्द जय-जय गोपाल जय-जय
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2.

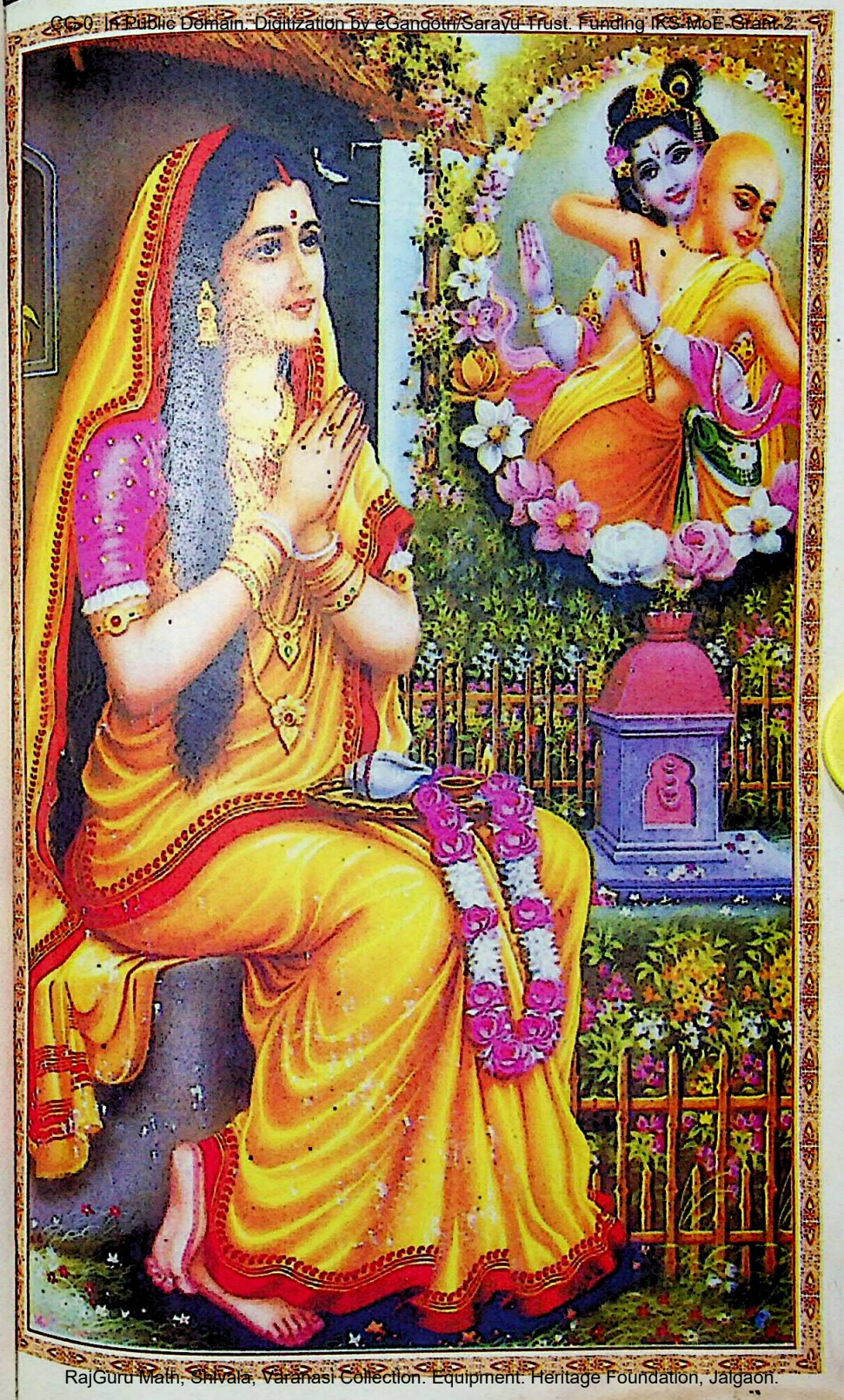

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by KS. MoE&Grant 2

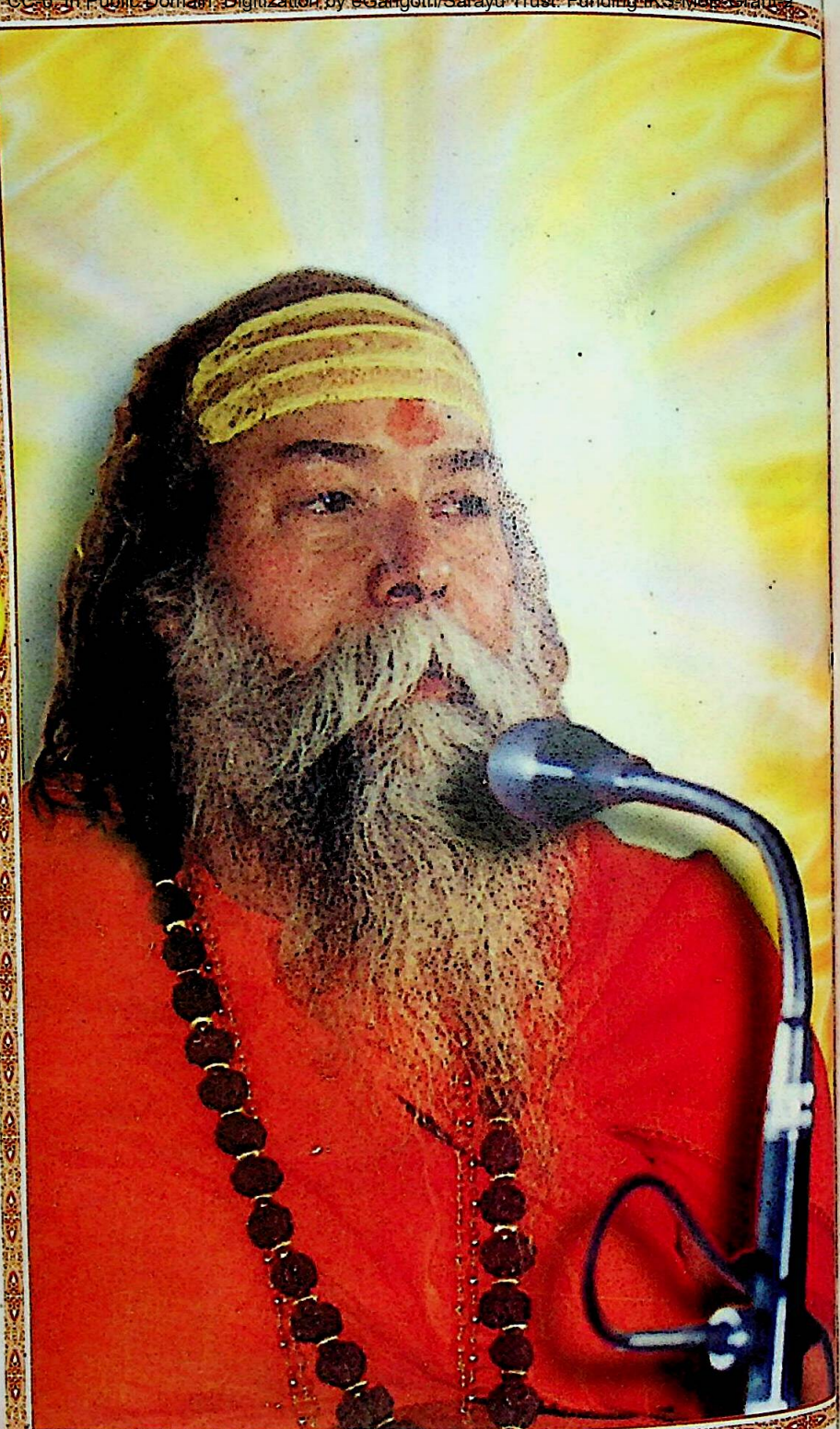

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृतीय-दिवस

समुपस्थित विद्वद्वृंन्द ! सज्जनो एवं देवियो !

श्रीमद्भागवत की कथा का प्रारम्भ नारदजी और व्यासजी के संवाद से होता है । नारदजी व्यासजी को चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत सुनाते हैं । चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत को श्रीमन्नारायण ने ब्रह्मा को सुनाया और ब्रह्माजी ने नारद को सुनाया था । यह उन्हीं चार श्लोकों का विस्तार है । भगवान् कहते हैं -

अहमेवासमेवाऽग्रे नान्यद्यत् सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

(श्रीमद्भागवत 2/9/32)

इसमें कहा गया है कि '**अग्रे सृष्टेः प्राक्**' सृष्टि के पहले '**अहमेवासं**' मैं ही था । श्रुतियों में कहा गया है -

'हे सौम्य ! अग्रे माने सृष्टि के पहले एक अद्वितीय मैं ही था '**एकमेवाद्वितीयम्**' । '**एकम् एव अद्वितीयम्**'- एक ही अद्वितीय । इस प्रकार अर्थ यह हुआ कि सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद शून्य ब्रह्म ।

भेद तीन प्रकार के होते हैं - सजातीय भेद, विजातीय भेद और स्वगत भेद। वृक्ष से वृक्ष का भेद सजातीय भेद कहलाता है । वृक्ष से पाषाण (पत्थर) का भेद विजातीय भेद और वृक्ष का वृक्ष की शाखाओं से जो परस्पर भेद है वह स्वगत भेद है ।

ब्रह्म का कोई सजातीय नहीं है । ब्रह्म के समान और कोई ब्रह्म से पृथक् चेतन होता तो उसमें सजातीय भेद की कल्पना की जा सकती है । जितने भी जीव हैं, वे ब्रह्म से अलग दीखते हैं । वे ब्रह्म से भिन्न हैं । इसलिए उनको लेकर ब्रह्म में सजातीय भेद नहीं बन सकता । ब्रह्म चैतन्य है । जड़ के साथ इसका भेद हो सकता था । लेकिन सत् का सत् से भेद होता है । सद् का सद्विलक्षण से भेद नहीं हो सकता । जो जड़ है वह सद्विलक्षण है । इसलिए वह भेद का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रायोजक नहीं बनेगा । रस्सी में कल्पित जो सर्प है, उसके साथ रस्सी का भेद नहीं बन सकता । क्योंकि रस्सी से पृथक् होकर जब सर्प अपनी सत्ता बना ले तब वह रस्सी से भिन्न हो सकता है । जड़ की अपनी कोई सत्ता नहीं है । इसलिए विजातीय भेद नहीं है।

ब्रह्म में यदि अवयव होते । उसके हाथ, पैर, नाक, आँख आदि होते तो उनका परस्पर भेद होता । निरवयव होने के कारण स्वगत भेद भी नहीं है । **'एक एव'** एक ही अद्वितीय सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित ब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ में था ।

वेदान्त में पंचीकरण प्रक्रिया है । वहाँ कहते हैं - **'सद् शब्दवाच्यम् अविद्या सबलं ब्रह्म'** ब्रह्म शब्द का वाच्य अविद्या है । **सबल** का मतलब अविद्योपाधिक ब्रह्म है । उससे अव्यक्त उत्पन्न होता है । अव्यक्त माने तीनों गुणों की अवस्था रूप प्रकृति । उस प्रकृति से जब गुणों में वैषम्य होता है तो **महत्** तत्त्व की उत्पत्ति होती है । **महत्** तत्त्व से **अहं** तत्त्व की उत्पत्ति होती है । अहं तत्त्व को ही अहंकार कहते हैं । उससे आकाश की उत्पत्ति होती है । आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी की । इसी क्रम से उत्पत्ति होती है ।

हमारे वेदान्त शास्त्रों में उत्पत्ति का क्रम परिणाम के आधार पर नहीं है वरन् प्रतीति के आधार पर है । आप यदि इसको समझना चाहें तो यह समझ सकते हैं कि आप गहरी नींद में सो रहे हैं । आप सोकर जैसे ही उठते हैं, इसका आप अनुभव करते हैं । आप कभी खूब थक गये हों और किसी नए स्थान में ठहरे हों तो थोड़ी देर जागने पर भी पता नहीं लगता कि आप कहाँ हैं । नींद तो चली गयी पर आपको अपना और पराया बोध नहीं है । यह महत् तत्त्व की अवस्था है । उसके बाद अहं का बोध होता है । 'मैं' आ गया । यह अहं तत्त्व है । उसके बाद 'इदं' तत्त्व का बोध होता है । पहले अहं का ज्ञान होगा, उसके बाद 'इदं' का ज्ञान होगा । यह 'इदं' आकाश होगा, रिक्त स्थान 'अवकाश' । बीच में अगर कोई चीज हो तो हमारे दोनों हाथ नहीं मिलेगें । जब कुछ भी नहीं होगा तब दोनों हाथ आपस में मिल जाएँगे । यह दोनों हाथों का मिलन हो गया । देखिए तर्क! दोनों हाथों को थोड़ा रगड़ दीजिए तो जलन होने लगेगी वह अग्नि हो गया । उसके बाद आप हाथ छोड़ दीजिए तो हाथ में पसीना आ जाएगा । यह अग्नि से जल हो गया । पसीना छोड़ दीजिए वह थोड़ी देर बाद मैल बन जाएगा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माने वह जल से पृथ्वी बन गयी ।

संसार की उत्पत्ति का यही क्रम है । सत् परमात्मा से अव्यक्त हुआ । अव्यक्त से महत् तत्त्व हुआ । इससे अहं तत्त्व हुआ । अहं तत्त्व से आकाश हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से संसार की उत्पत्ति हुई । अब इसकी थोड़ी सी प्रक्रिया और है ।

यह पृथ्वी त्रिगुणात्मक है । इसीलिए इसके कार्यों में भी तीन गुण हैं । जो पंचमहाभूत हुए- आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इनमें भी सत्त्वगुण है। अपञ्चीकृतमहाभूतों के समष्टि सात्विक अंश से अन्तःकरण की उत्पत्ति होती है । उसके चार भेद हो जाते हैं - मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार । इन्हीं के व्यष्टि सात्विक अंश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हो जाती हैं । इन्हीं पंचमहाभूतों के समष्टि अंश से पंचप्राण उत्पन्न होते हैं । व्यष्टि के राजसी अंश से पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । इस तरह से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और अन्तःकरण बन गए । जो तमोगुणी अंश रहा उसका पंचमहाभूतों का पंचीकरण होता है । प्रत्येक विभूति अर्थात् आकाश के, वायु के, अग्नि के और पृथ्वी के दो हिस्से कर दीजिए । एक हिस्सा तो उसका अपने पास रहेगा और जो दूसरा हिस्सा है, उसके चार हिस्से करके वह अपने से भिन्न में बाँट देगा । जैसे आकाश के दो भाग बने । उसके दूसरे भाग के चार भाग बने । एक भाग वायु को, दूसरा भाग अग्नि को, तीसरा भाग जल को, चौथा भाग पृथ्वी को दे दिया । उसी तरह अग्नि के दो भाग बने तो अग्नि का आधा भाग अग्नि के पास रहा । फिर दूसरे के चार भाग हुए । एक भाग आकाश को, दूसरा भाग वायु को, तीसरा भाग जल को और चौथा भाग पृथ्वी को दे दिया। फिर जल के दो भाग हुए । उनमें से एक भाग के चार भाग हुए । एक भाग आकाश को, दूसरा भाग वायु को, तीसरा भाग अग्नि को और चौथा भाग पृथ्वी को दे दिया । फिर पृथ्वी के दो भाग हुए । उसके आधे भाग के चार भाग हुए । एक भाग आकाश को, दूसरा भाग अग्नि को, तीसरा भाग जल को और चौथा भाग वायु को दे दिया । ये पंचीकृत हो गए ।

पंचीकृत हो जाने पर वे स्थूल हो जाते हैं और आपको जो पाँच तत्व दिखाई पड़ते हैं, ये शुद्ध नहीं है । जल में पृथ्वी है । जल में आकाश है । जल में भी वायु है । जल में अग्नि है । इसी तरह से अग्नि में भी पाँचों हैं । पृथ्वी में पाँचों है, आकाश में पाँचों हैं और वायु में भी पाँचों हैं ।

इन पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबका मूल अव्यक्त है और अव्यक्त का मूल है 'अहम्' । उस सत् परमात्मा से सारा संसार उत्पन्न हुआ ।

भगवान् श्रीमन्नारायण कहते हैं - 'सत् ही मैं हूँ', **'अहमेवासमेवाऽग्रे'** इस संसार की उत्पत्ति के पहले केवल मैं था । कोई दूसरी वस्तु नहीं थी । अब जब इस संसार का अंत हो जाएगा तो आप समझ लीजिए कि जिस क्रम से इस संसार की उत्पत्ति हुई है, उसी क्रम से उसका विलय भी होगा । प्रकृति परिणत होते-होते जब अन्तिम परिणाम को प्राप्त हो जाएगी तब सृष्टि और प्रलय का क्रम जो अनादि काल से चला आ रहा है, सम्पन्न होगा । संसार होता है उसके बाद नष्ट हो जाता है। संसार का उत्पन्न होना सृष्टि और विलीन हो जाना प्रलय । श्रीमद्भगवद्गीता में आपने सुना होगा -

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 8/17)

चार युगों की एक चौकड़ी होती है । उसे चतुर्युगी भी कहते हैं । एक हजार बार जब चार युग बीत जाते हैं तो ब्रह्मा का एक दिन होता है । उतने की ही ब्रह्मा की एक रात्रि होती है । अपने दिन और रात के परिमाण से ब्रह्मा का मास बनता है और बारह मास का एक वर्ष बनता है । अपने वर्ष से ब्रह्मा सौ वर्ष जीता है।

ब्रह्मा का जब दिन होता है तब सृष्टि उत्पन्न होती है और उनकी रात्रि के होने पर विलीन हो जाती है । जब ब्रह्मा रहते हैं तब सामान्य प्रलय होता है । जब सौ वर्षों के बाद ब्रह्मा का भी शरीरान्त हो जाता है तब महाप्रलय हो जाता है । तब पृथ्वी, जल में विलीन हो जाती है । जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंतत्त्व में, अहंतत्त्व महत्तत्त्व में, महत् तत्त्व अव्यक्त तत्त्व में और अव्यक्त सत् परमात्मा में विलीन हो जाता है । फिर पहले जो सत् था उसके बाद भी सत् ही रहेगा ।

सदसत्, परम सत्, असत् और उसके परा सत् माने कार्य और असत् माने कारण । कार्य और कारण का जो मूल है । **'ज्ञानमव्यक्तम्'** मेरे अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं था । तब जब महाप्रलय हो जाएगा तब भी फिर वही रहेगा जो पहले था । फिर प्रश्न यह आया कि आगे भी वही था और अंत में भी वही रहेगा तो बीच में कौन था ? इसका उत्तर यह होगा कि बीच में भी वही है ।

खाँड़ (चीनी) के खिलौने बनते हैं । शक्कर को पिघलाकर उसकी चासनी बनाकर उसे साँचे में ढालकर खिलौने बना दिए जाते हैं । हाथी बन गया, घोड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन गया, ऊँट बन गया, गाय बन गई, मनुष्य बन गया । उसकी आप जो आकृति बना लें । वह अनेक आकृतियों वाली बन गई । लड़के लड़ते भी हैं । हमारे पास हाथी है, तेरे पास ऊँट है । हमारे पास सिपाही है, तेरे पास बादशाह है । खिलौने तो बन गए । लेकिन वे शक्कर के सिवा कुछ भी नहीं है । उसके नाम रूप का जो भेद है । वह भेद किसका है । उसी परमात्मा का तो है ।

एक सिद्धान्त है-**'तदनन्यत्वमारम्भणं शब्दादिभ्यः'** (ब्रह्मसूत्र 2/1/14) वेदान्त का यह सूत्र है । संसार की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है । इसीलिए वह परमात्मा से अनन्य है । उससे भिन्न नहीं है । कार्य कारण से अनन्य होता है । सोना कारण है और आभूषण कार्य है । वह आभूषण सोना से अलग नहीं है । इसी प्रकार पृथ्वी कार्य है । जल कारण है । पृथ्वी जल से अनन्य है । जल कार्य है अग्नि कारण है। पृथ्वी जल से अनन्य है । जल कार्य है अग्नि कारण है । वह जल अग्नि से भिन्न नहीं है। अग्नि कार्य है वायु कारण है । वायु अग्नि से भिन्न नहीं है । वायु कार्य है आकाश कारण है । इसलिए वायु आकाश से भिन्न नहीं है । फिर इसे सीधे लिखा -

'तस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, आपः पृथ्वी' (त्रिपुरातापिन्युपनिषद् 1/14) उस परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश किससे उत्पन्न हुआ ? परमात्मा से, ब्रह्म से उत्पन्न हुआ । सो वह ब्रह्म से अलंकृत है । हमें जो पृथ्वी दिखलाई पड़ रही है, वह ब्रह्म ही तो है । दूसरा क्या है ? इसीलिए **'पश्चादहं यदेतच्च'** जो दिखलाई पड़ रहा है, यह भी ब्रह्म है । हम जब इसका निषेध करते हैं, वह कार्य का कारण से अतिरिक्त नहीं है ऐसा कह कर हम निषेध करते चले जाते हैं । निषेध करते-करते निषेध करने वाला ही रह जाता है । वही शेष है । **'योऽवशिष्येत सोस्म्यहम्'** वही मैं हूँ। अब आपके मन में अर्थ बैठ गया होगा -

अहमेवासमेवाऽग्रे नान्यद्यत् सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च, योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

(श्रीमद्भागवत 2/9/32)

सब कुछ ब्रह्म है । यह इसका अर्थ निकल गया । उसके पश्चात् -

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥

(श्रीमद्भागवत 2/9/33)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया क्या है? माया किसे कहते हैं? तो इसके उत्तर में कहा है **'ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत'** बिना हुए जो प्रतीति हो रही है वही माया है । वह वस्तु नहीं है परन्तु दिखायी पड़ती है । जल नहीं है परन्तु मृग को जल दिखाई पडता है। गन्धर्व नगर नहीं है पर दिखलाई पड़ता है । स्वप्न नहीं है लेकिन दिखलाई पड़ता है । रस्सी में साँप नहीं है पर दिखलाई पड़ता है । वस्तु के अर्थ के बिना ही उसकी प्रतीति होती है । **'न प्रतीयेत चात्मनि । आत्मनि विदिते सति न प्रतीयेत'** जब आत्मा का बोध हो जाता है तब प्रतीति नहीं होती है । जब तक आत्मा का बोध नहीं होता तब तक बना हुआ भी संसार प्रतीत होता है । आत्मा कौन है? वही तो राम हैं। भगवान् शङ्कर क्या कह रहे हैं ?

'झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥'

(श्रीरामचरित मानस बा. का. दो.111 के बाद चौपाई 1-2)

जिस परमात्मा को जाने बिना यह झूठा जगत् भी प्रतीत होता है । जैसे रस्सी को जाने बिना झूठा सर्प भी सच्चा प्रतीत होता है । जिसको जान लेने पर जगत खो जाता है । उसे खोजो, उसका कहीं कोई पता नहीं मिलेगा ।

जब तक हमें अपना ज्ञान नहीं है, तब तक स्वप्न दिखाई पड़ता है । आप बिस्तर पर पड़े हुए हैं । पड़े-पड़े झपकी आ गई और स्वप्न देखने लगे । कहाँ से कहाँ पहुँच गए । स्वप्न में देख रहे हो बम्बई पहुँच गए । अपने मित्रों और रिश्तेदारों से मिल रहे हैं । अनेक प्रकार की बातें हो रही हैं । आप यह सब कुछ देख रहे हैं । यह सब कब तक दिखाई पड़ेगा ? जब तक हमें अपना ज्ञान नहीं हो जाएगा । जैसे ही ज्ञान हुआ कि हम तो बिस्तर पर पड़े हैं । हम कहाँ है और बम्बई कहाँ है । अब आप सोचिए । स्वप्न में आप अहमदाबाद स्टेशन पर बैठे हैं और फिर रेल में बैठकर चल देते हैं । रेल कहाँ है ? संसार में है । और रेल की पटरी और संसार सब हमारे भीतर है । लेकिन हमारे भीतर होता तो हमारा शरीर फट न जाता ? वह हमारे भीतर भी नहीं है लेकिन प्रतीत हो रहा है ।

मिथ्या का लक्षण क्या है? मिथ्या किसे कहते हैं? **'स्वानुचित - देशकालावस्थायित्वं मिथ्यात्वं'** अपने लिए जो उचित देश काल है उसके बिना ही जिस वस्तु की प्रतीति हो वह वस्तु मिथ्या कहलाती है । हमारे भीतर स्वप्न दिखलाई पड़ता है ।

वेदान्त शास्त्रों में कहा गया है कि पुरीतत् नाम की नाड़ी है । उसके भीतर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाकर जीव स्वप्न देखता है । वह नाड़ी इतनी सूक्ष्म है कि बिना दूरबीन के उसे देखा नहीं जा सकता । उसी नाड़ी में इतना बड़ा संसार दिखता है । रेल की पटरी, इसका स्थान और लम्बा काल आदि । लगता है वर्ष बीत गए तो वह काल और स्थान दीखना चाहिए । स्वानुचित देश काल है । इसीलिए हम जागने पर कहते हैं कि वह सच्चा नहीं, झूठा था । परन्तु प्रतीत तो हो ही रहा था ।

जब तक उसकी प्रतीति होती है तब तक दिखाई देता है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय पत्रिका में एक पद की रचना की है, वे कहते हैं कि -

केशव ! कहि न जाइ का कहिए ।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिए ॥

(विनय पत्रिका)

हे केशव ! कुछ कहा नहीं जा सकता । केवल मन में तरसते रह जाते हैं, कुछ कह नहीं सकते । अतिविचित्र ! एक होता है चित्र दूसरा होता है विचित्र और तीसरा होता है अति विचित्र ।

एक चित्रकार था । एक बार वह किसी राजा के पास गया । राजा से उसने कहा - 'महाराज ! हम चित्रकार हैं । चित्र बनाना जानते हैं । हम अद्‌भुत चित्र बनाते हैं । राजा ने कहा - 'बनाओ ।' उसने कहा -'हमको कोई सभागार दे दीजिए और उसकी दीवाल बतलाइए उस पर हम चित्र बना देंगे । ऐसा चित्र बनाएंगे कि आप आश्चर्य चकित हो जाएंगे । राजा ने पूछा -'कितना रुपया लगेगा?' उस चित्रकार ने रूपया बताया । राजा ने कहा - 'ठीक है । देखो यह सभागार है । इस दीवाल पर चित्र बनाओ । हम तुम्हारे पैसे का प्रबन्ध कर देते हैं ।' वह चित्रकार चित्र बनाने लगा ।

दूसरे दिन एक दूसरा व्यक्ति आया । उसने राजा से कहा - ' महाराज ! हम विचित्रकार हैं ।' राजा ने कहा - 'अच्छा ! तुम्हारी क्या विशेषता है? उसने कहा - 'महाराज ! चित्रकार जैसा चित्र बनाएगा उसे हम बिना देखें ठीक वैसा ही बना देंगे । हमारे और उसके बीच में एक परदा डाल दीजिए । वह अपना चित्र बनाएगा हम विचित्र बनायेंगे ।' राजा ने उसे भी कहा - बनाओ ।

चित्रकार चित्र बनाने लगा और विचित्रकार विचित्रकारी करने लगा । विचित्रकार दीवाल साफ करने लगा । साफ करते-करते उसने उस दीवाल को दर्पण जैसा बना दिया । मसाले से दीवाल को ऐसा साफ कर दिया कि उससे चित्रकार का चित्र साफ झलकने लगा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब चित्र बन गया तब राजा चित्र देखने आया । चित्र को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला - 'वाह ! कितना सुन्दर चित्र है । आज तक हमने ऐसा चित्र नहीं देखा था ।' चित्र देखने के बाद राजा ने विचित्रकार से कहा - 'तुम अपना विचित्र दिखाओ ।' उसने कहा - 'महाराज ! परदा हटाइए ।' राजा ने परदा हटाया तो चित्रकार का जैसा चित्र था वैसा ही चित्र राजा को दिखने लगा। राजा ने कहा - 'बहुत विचित्र है । चित्र और विचित्र इनसे भी अलग एक अतिविचित्र होता है । वह अति विचित्र क्या है? स्वप्न है । आप देखिए, स्वप्न में जो कुछ हमें दिखाई पड़ता है वह किसका प्रतिबिम्ब है । कुछ का कुछ दीखता है । कोई-कोई तो जो लोग मर गए हैं उनको स्वप्न में देखते हैं । हम कैसे कह सकते हैं कि ये दर्पण में दिखाई पड़ रहे हैं । यह अति विचित्र है । यह संसार, न चित्र, न विचित्र है । यह तो अतिविचित्र है ।

'देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये
शून्य भित्ति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिन लिखा न तेरे ॥

शून्य की दीवाल पर बिना रंग के चितेरे ने चित्रकारी कर दी । **'धोए मिटे ना'** धोने से यह मिटता नहीं है और मारे न मरता है । पर **'मिति दुःख पाइए यह तन हरे'** इसकी ओर देखने पर भय लगता है । इसके देखने से दुःख होता है । वह है नहीं लेकिन दुःख तो होता है ।

हम अपने बिस्तर पर पड़े हुए हैं । अब स्वप्न में देख रहे हैं कि वर्षा आ गई । घोर वर्षा हो रही है । नदी में बाढ़ आ गयी । धीरे-धीरे जलप्लावन होने लगा । बाढ़ धीरे-धीरे हमारे मकान में आ गयी । मकान के नीचे की मंजिल डूबने लगी । हम ऊपर चढ़ते गए । अब पानी ऊपर भी आ गया । अब देख रहे हैं कि गायें बह रही हैं, भैंसे बह रही हैं । आदमी बह रहे हैं । अब हमारे भी डूबने की स्थिति आ रही है । हम अपने आप को बचाने के लिए चिल्ला रहे हैं - 'नाव लाओ ! नाव लाओ !' लेकिन दूर तक नजर दौड़ाते हैं तो कहीं कोई नाव का पता नहीं है । हाय, अब तो मरे ! इतने में किसी की आवाज आती है । हम जग जाते हैं । कहाँ की बाढ़ और कहाँ की नाव ! वह सब समाप्त हो गया । लेकिन जब तक हम जग नहीं जाएंगे तब तक तो बाढ़ दुःख देगी ही ।

इसी तरह हम सब जब तक संसार रूपी स्वप्न से जग नहीं जाते हैं तब तक दुःखी रहते हैं । संसार को देखिए । आप मान बैठे हैं कि ये माता है, ये पिता हैं, ये पुत्र हैं, ये बहन हैं, ये पड़ोसी हैं, हम स्त्री हैं, हम पुरुष हैं, बाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, युवा हैं, वृद्ध हैं । परन्तु ये है कहाँ ? ये सब के सब आत्मा में हैं । जब आप अपने वास्तविक स्वरूप को देख लेंगे, तब आप स्वयं समझ जाएंगे कि यह कुछ भी नहीं है । लेकिन अपने आपको मान कर ही हम दुःखी हैं । आप अपने में परेशान हैं । जैसा कि हमने कल बतलाया था । प्रत्येक व्यक्ति परेशान है । यह तो विचित्र बात है । इसी का नाम माया है ।

देवी भागवत में एक दृष्टान्त आता है - नारदजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि - 'भगवन् ! आप अपनी माया को दिखाइए । भगवान् ने कहा - 'माया का स्वरूप जानना बड़ा कठिन है । चलिए कभी, एकांत में आपको दिखलाएँगे। श्रीकृष्ण ने नारदजी को रथ में बैठाया और उन्हें गहन वन में ले गए । उस वन में रथ को खड़ा करके भगवान् ने नारदजी से कहा - 'नारदजी ! हमें प्यास लगी है ।' नारदजी ने अपना तुम्बा उठाया और पानी के लिए वन में चल दिए । वहाँ निर्मल जल वाला एक बड़ा सा सरोवर था । नारदजी झुककर उसमें से तुम्बे में पानी भरने लगे । उनका शरीर सँभल नहीं पाया और वे सरोवर में गिर पड़े । वह सरोवर ऐसा था कि उसमें डुबकी लगाने से नर नारी हो जाता था । नारदजी नारी हो गये । वे भूल गए कि हम कौन हैं । वे सरोवर से बाहर निकल कर किनारे बैठ गए । इतने में एक राजा शिकार खेलने के लिए वहाँ आया । राजा ने देखा-बड़ी सुन्दरी स्त्री बैठी है । वह रथ में बैठा कर ले गया और उसे अपनी पटरानी बना लिया । राजमहल की जितनी भी चाभियाँ थी, राजा ने उन सभी चाभियों को नारदजी को दे दिया । कमर में चाभी का गुच्छा लटकाये, मुँह में पान दबाये और दास दासियों से घिरे रहकर कभी यहाँ जाएँ, कभी वहाँ जाएँ । धीरे-धीरे बाल-बच्चे भी होने लगे । वे बच्चे बड़े होने लगे । लड़के लड़कियों की शादी हो गयी । उनके बच्चे भी होने लगे । परिवार बढ़ने लगा । वे उन्हीं में मस्त रहने लगे । 'यह मेरा बेटा है, यह मेरी बेटी है, ये मेरे पोती-पोता हैं । इस तरह वे उनमें बिलकुल मग्न हो गये । उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान ही नहीं रहा कि हम उनके लिए पानी लेने के लिए आए हुए थे ।

इसी बीच एक घटना घटी । किसी एक दूसरे राजा ने उस राज्य पर आक्रमण कर दिया । दोनों राजाओं में भयंकर युद्ध हुआ । युद्ध में इस राजा के परिवार के सभी लोग मारे गए, राजा भी मारा गया । यह समाचार सुनकर नारदजी को बहुत दुःख हुआ । वे दुःखी मन से वन में गये और सोचा कि डूब कर मर जाएँ । संयोग से जिस सरोवर में स्नान करके वे पुरुष से स्त्री हो गये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaigaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे, उसी सरोवर के बगल में एक ऐसा सरोवर था कि जो स्त्री स्नान करेगीं वह पुरुष हो जाएगी । नारदजी ने छलाँग लगा दी और जब सरोवर से बाहर निकले तब नारद जी होकर निकले । उन्हें याद आया कि हम तो भगवान् के लिए जल लेने आए थे । उन्होंने इधर-उधर देखा । तुम्बी एक जगह पड़ी हुई दिखाई दी। उन्होंने उसको उठाया और सरपट पानी भर कर लम्बी डग भरते हुए भगवान् के पास जा पहुँचे । मन में विचार करते जा रहे थे कि बहुत विलम्ब हो गया है।

जब नारदजी वहाँ पहुँचे तब नारदजी की तरफ देखकर भगवान् मुस्कुराये और बोले नारद ! 'तुम तो बड़ी जल्दी आ गये ।' नारदजी ने कहा 'हमारे बाल-बच्चे पैदा हो गये थे और आप कह रहे हैं जल्दी आ गए ।' भगवान् ने कहा- 'नारद ! इसी का नाम माया है । बिना हुए जो प्रतीति करा दे, वही माया है ।

शून्य भित्ति पर चित्र रंग नहिं तन बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटे न मरे भीत दुःख पाइए यहि तन हेरे ।
रविकर तीर बसत अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन हीन सो ग्रसे चराचर पान करन जे जाहीं ।

(विनय पत्रिका)

बताया गया है कि सूर्य की किरणों में बहुत बड़ा दारुण समुद्र है । उसमें मगर हैं किन्तु उन मगरों के मुँह नहीं हैं । फिर भी उस समुद्र में जो भी जल पीने जाता है, उसको वह निगल लेता है ।

कोई कहे सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसीदास परिहरिय तीन भ्रम, तब आपुन पहिचाने ।

(विनय पत्रिका)

कोई उसको झूठ कहता है, कोई सत्य कहता है । कोई कहता है- भाई! झूठ भी है, सत्य भी है । तुलसीदासजी कहते हैं- 'जब ये तीन भ्रम छोड़ दोगे तब तुम अपने आपको पहचान पाओगे ।

यह संसार बड़ा विचित्र है । आप सिनेमा देखने जाते हैं । सिनेमा में क्या है । सिनेमा में तीन चीजें हैं । सामने पर्दा है । उस पर चलती-बोलती फिल्म है और फ़िल्म के पीछे लाइट (प्रकाश) है । बस ये तीन ही तो हैं । फिल्म चलती है, चलती बोलती फिल्म पर लाइट पड़ती है और वह उसको पार करके परदे पर पहुँचती है । जो फिल्म की छोटी-छोटी आकृतियाँ हैं उस पर प्रकाश के पहुँचने पर बड़ी-बड़ी दिखाई पड़ती हैं और वह फिल्म इतनी शीघ्रता से चलती है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्र के अनेक होने पर भी हम उनका भेद नहीं पकड़ पाते हैं । इसलिए हम कहते हैं कि यह एक ही गति से चल रहा है । एक ही व्यक्ति नाच रहा है । है तो अलग-अलग लेकिन शीघ्रता से दिखाने के कारण एक सा लग रहा है ।

इसी तरह मन रूपी रील की लाइट आत्मा है । शून्य का परदा है और यह जगत दीख रहा है । यह बिना हुए दिखाई पड़ रहा है । 'यत्र प्रतीयते' सनेही संसार तो प्रमाणित है । यह कैसे-कैसे रूठा है तो अगर हम इसे प्रमाणित माने तो किस आधार पर प्रमाणित माने । 'प्रमाण' कई प्रकार के होते हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ।

प्रत्यक्ष अर्थात् जिसको हम अपनी इन्द्रियों द्वारा देखते हैं - **इन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं'** जो ज्ञान इन्द्रियों से हो वह प्रत्यक्ष प्रमाण होता है । आँख, कान, नाक, जीभ, से जो हमें दिखलायी पड़ता है वही प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

अनुमान क्या है । जिस वस्तु का हम साहचर्य देखते हैं अर्थात् एक साथ दो वस्तुएँ दिखाई देती हैं । जिस वस्तु के साहचर्य को हमने ग्रहण कर रखा है, उनमें से अगर हमें एक वस्तु दिखती है तो हम उसी से दूसरी का अनुमान कर लेते हैं । जैसे धूम और अग्नि का साहचर्य । जहाँ धूम होगा वहाँ अग्नि होगी । पर्वत के ऊपर हमें अग्नि दिखलाई नहीं पड़ रही है, धूम दिखलाई पड़ रहा है तो हम धूम के आधार पर अग्नि का अनुमान कर लेंगे । **'पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्'** ये पर्वत वह्निमान है । **'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः'** जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है । यथा - **'महानसम्'** अर्थात् रसोई घर । रसोईघर में हम देखते हैं - धूम से युक्त अग्नि होती है । यह अनुमान प्रमाण है ।

'आगम' माने वह शब्द जो आप्तवाक्य है, उसे आगम प्रमाण कहते हैं । परमात्मा का वचन हो या किसी महापुरुष का वचन हो वह शब्दप्रमाण होता है। शब्द को भी प्रमाण मानना पड़ता है । बहुत से लोग कहते हैं - 'हम प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं अनुमान को नहीं । चार्वाक लोग कहते हैं प्रत्यक्ष ही प्रमाण है अनुमान प्रमाण नहीं है । यदि हम पूछें कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है यह बात किससे कह रहे हो ? जो इस बात को जानता है उससे कह रहे हो या जो नहीं जानता है उससे कह रहे हो । जो इस बात को जानता ही है कि प्रत्यक्ष प्रमाण है उसको क्यों बता रहे हो ? कहना होगा कि जिसको हम बतला रहे हैं, उसको इस बात का ज्ञान नहीं है कि यह प्रत्यक्ष प्रमाण है । तुमको उस अज्ञान का ज्ञान कैसे हो गया कहा - 'प्रत्यक्ष से' । प्रत्यक्ष से क्या तुमने उस अज्ञान को देखा । कहा नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमने अनुमान कर लिया । अनुमान को मान लिया आपने ।' बहुत से लोग कहा करते हैं हम प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों ही मानते हैं । शब्द नहीं मानते ।

उनसे पूछो तुम्हारे पिता का क्या नाम है ? तुम्हारा पिता कौन है? तो आप नाम बतायेंगे । आपके पिता का क्या प्रमाण है ? यही तुम्हारा पिता है इसका क्या प्रमाण है ? कहते हैं - 'माता का शब्द प्रमाण है ।' माता जिसे कह देगी वही तुम्हारे पिता हैं । बस हो गया, वहाँ न प्रत्यक्ष चलेगा, न अनुमान । यहाँ शब्द ही चलेगा । यह बात होगी अथवा कॉरपोरेशन (नगर पालिका) के जन्म-मरण का रजिस्टर प्रमाण होगा । आप कहेंगे - 'भाई, नगर पालिका के रजिस्टर में देख लो, उसमें हमारा जन्म और माता-पिता का नाम लिखा है । पैदा हुए हैं तो इस शब्द को भी मान ही लिया । उपमान भी प्रमाण होता है। उपमान प्रमाण यह है कि **'गो सदृशो गवयः'** गवय नाम का एक प्राणी जंगल में होता है । हम उसको जानते नहीं हैं । किसी से हमने सुना है कि गवय गौ के समान होता है । हमने जंगल में उस तरह का प्राणी देखा है । उसके सादृश्य को जानकर यह समझ लिया कि यह गवय है या पहले हमने जंगल में देख लिया है, परन्तु हम यह नहीं जानते थे कि यह कौन सा प्राणी है । जब हमने सुना कि गवय गो के सदृश होता है तो सादृश्य के आधार पर हम गवय को जान लेते हैं। यह उपमान प्रमाण है ।

अर्थापत्ति प्रमाण क्या है ? **पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते** । मोटा हट्टा-कट्टा देवदत्त दिन में नहीं खाता । यदि वह दिन में नहीं खाता तो मोटा कैसे हो गया? मतलब वह रात को खाता है तो उसके मोटे तगड़े होने के कारण हम अर्थापत्ति लगा लेते हैं कि वह दिन में नहीं खाता तो रात को खाता होगा। श्रीमान् जी, रात में खाते हैं दिन में नहीं। बहुत से लोग ऐसे होते हैं कि हम तो भाई अनशन कर रहे हैं। ऐसा कहकर दिखावा करते हैं और रात में खा लिया करते हैं । इसलिए उनका वजन नहीं घट रहा है । इसका नाम है अर्थापत्ति प्रमाण ।

'यदि स्यादुपलभ्येत' जैसे यदि कोई व्यक्ति होता तो उपलब्ध होता । उपलब्ध नहीं हो रहा है इसलिए नहीं है । किसी ने कहा - यदि होता तो दिखलाई पड़ता। उसकी उपलब्धि न होने के कारण उसके अभाव का ज्ञान होता है । यह अनुपलब्धि प्रमाण है । अब आप देखिये कि जगत में कौन सा प्रमाण है । आप कहेंगे - 'प्रत्यक्ष प्रमाण है । लोग कहते है बड़े वेदान्ती बने हो । दीवाल पर सिर पटको और तुम्हारी खोपड़ी न फूटे तो जाने । यह सामने पेड़ दिख रहा है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम कहते हो, नहीं है । तब वेदान्ती यह कहेगा - जैसे जिह्वा झूठी है वैसे यह खोपड़ी भी झूठी है और फूटना भी झूठा है । जैसे यह पेड़ झूठा है । इस पेड़ को देखने वाली आँख भी झूठी है । आँख भी तो जगत के भीतर है । जब हम पूरे जगत का विचार कर रहे हैं तो आँख को छोड़कर कैसे विचार कर सकते हैं? **'इन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्'** (तर्कसंग्रह) इन्द्रियों का ही विचार कर रहे हैं 'यह सच है, यह झूठ है ।'

स्वप्न में भी हमारे नाक कान आँख होते है । स्वप्न के दृश्य को हम आँख से देखते हैं और कान से सुनते हैं । लेकिन उस समय के आँख और कान भी स्वप्न के होते हैं । इसलिए प्रत्यक्ष को जगत के अस्तित्व में प्रमाण नहीं माना जा सकता । जब प्रत्यक्ष ही नहीं मानोगे तब अनुमान कैसे मानोगे ? क्योंकि दो में से एक का प्रत्यक्ष चाहिए । जब दोनों ही सत्य नहीं हैं तब अनुमान नहीं चलेगा। शब्द और उपमान भी नहीं चलेगा । अर्थापत्ति आदि कुछ भी नहीं चलेगा। जगत के अस्तित्व में कोई प्रमाण जैसे सत्य या वेद को आप प्रमाण माने तो बताएँ वेद स्वयं कहाँ है - **'नेह नानास्ति किंचन'** (कठोपनिषद् 4/11) इसलिए जगत के अस्तित्व में, सत्ता में कोई प्रमाण नहीं है । फिर 'असत्य' है ऐसा ही कह दो। सोचिए यदि असत्य होता तो दिखाई क्यों पड़ रहा है । दिखाई तो पड़ रहा है, इसे हम अस्वीकार तो नहीं कर सकते हैं । असत्य की प्रतीति नहीं होती ।

खरगोश का सींग कभी दिखाई नहीं पड़ता । बन्ध्या का पुत्र कभी दिखाई नहीं पड़ता । उसी प्रकार यदि जगत बिल्कुल न होता तो उसकी प्रतीति भी नहीं होती । इसलिए असत्य भी नहीं, सत्य भी नहीं । यदि इसे सत्य और असत्य दोनों ही मान लिया जाय ! ऐसा कैसे हो सकता है ? प्रकाश और अन्धकार दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं । **'सत्वासत्वाभ्याम् अविचारितरमणीया माया'** अविचाररमणीया माया है जिसे न सत्य कह सकते हैं और न असत्य । यह अनिर्वचनीय माया है । माया का जगत है कार्य, माया कारण है ।

प्रतिबिम्ब को आभास कहते हैं । प्रतीति को मिथ्या भी कहते हैं । है नहीं लेकिन प्रतीत हो रहा है । स्फटिकमणि के पास यदि आप लाल जवा फूल रख दें तो वह स्वच्छ स्फटिक लाल दिखाई पड़ने लगता है । उसमें जो रक्तता की आभा है, वह वस्तुतः सच्ची नहीं है । उपाधि के कारण वह लाल दिखाई पड़ रही है । यदि लाल जवा फूल उस स्फटिक के पास नहीं होता तो उस स्फटिक में रक्तिमा (लालिमा) का दर्शन भी नहीं होता ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम चन्द्रमा की ओर देखते हैं । कभी-कभी नेत्र दोष के कारण एक ही चन्दमा या कोई एक वस्तु दो दिखाई पड़ने लगती है । एक चित्र दो दिखाई देंगे या कोई एक व्यक्ति दो दिखाई देगा । अब उनमें सत्य क्या है । जब दो दिखाई पड़ रहा है वह या एक उन दोनों को सच नहीं कह सकते । क्योंकि आभास नहीं है लेकिन प्रतीत हो रहा है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी उदाहरण दिया है -

चितव जो लोचन अंगुलि लाये ।
प्रकट जुगल शशि तेहि के भाये। (श्रीरामचरितमानस)

आँख के सामने अंगुलि रखकर चन्द्रमा को देखेंगे तो चन्द्रमा दो दिखाई पड़ेगा । लेकिन वह दो है नहीं । न होने पर भी, आभास न होते हुए भी अनर्थ का कारण बन जाता है ।

एक वनवासी नौकर था । साहब से छुट्टी लेकर जब वह घर को चला तब वह साहब का दर्पण चुराकर अपने बक्स में बन्द करके घर लेता गया । वह वहाँ कुछ दिन तक रहा । एक दिन उसकी स्त्री ने उसकी अनुपस्थिति में उसके बक्से को खोला उसने बक्से में दर्पण देखा जिसमें उसका मुख दिखाई पड़ा । उसने कभी दर्पण देखा नहीं था । उसने सोचा कि अहो, मेरे पति मुझसे रूठे-रूठे से क्यों रहते हैं । इसका कारण आज समझ में आ गया कि उनका किसी दूसरी स्त्री से प्रेम है । उसी स्त्री का यह चित्र लेकर बक्से में रखा है ।

वह रूठ गयी और पति को छोड़कर पीहर चली गयी । वह वहीं रहने लगी। ससुराल जाने का नाम ही न ले । उसके पिता माता और भाई ने उसे बहुत समझाया - 'तुम अपने घर चली जाओ । देखो तुम्हारे पति के कितने पत्र आ रहे हैं, सन्देश आ रहे हैं । तुम ऐसा अनदेखी न करो । जाओ चली जाओ ।' उसने कहा - 'मैं नहीं जाऊँगी ।'

उसके माता-पिता और भाई ने कारण पूछा । उसने सारी बात सच-सच बता दी । पंचायत हुई । पंचायत में उस स्त्री के बयान लिए गये । अपने बयान में उस स्त्री ने कहा कि इसका किसी दूसरी स्त्री से प्रेम है । इसलिए मैं उसके यहाँ नहीं जाऊँगी । पंचायत के लोगों ने पूछा - 'क्या प्रमाण है ।' उसने दर्पण लाकर दिखा दिया । पंचायत के लोगों ने दर्पण देखकर कहा -'इसे जो भी देखता है, उसे ही अपना मुख दिखाई पड़ता है । इसमें किसी का चित्र तो है नहीं । तब कहीं जाकर उस स्त्री का भ्रम मिटा ।

न होते हुए भी दुःख देने वाली माया प्रतिध्वनित होती है । ऋषिकेश में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थित माया कुण्ड के पास जाकर आप जो कहोगे वही ध्वनि उल्टे आपको सुनायी देगी । आप कहोगे लड्डू लोगे या पेड़ा, उधर से वही ध्वनि सुनायी देगी- लड्डू लोगे या पेड़ा । लोग गाली देते हैं तो उधर से भी गाली सुनाई देती है। लोग कहें कि कौन गाली दे रहा है उसे भी गाली दो । कोई दिखाई ही नहीं देगा। आप किसे गाली दोगे । कोई दिखाई देगा तब न ।

दर्पण में हम लोग अपना मुख देखते हैं । यदि दर्पण गड़बड़, टेढ़ा-मेढ़ा है, तो देखने वाले का मुख भी वैसा ही दिखेगा । ऐसे भी दर्पण होते हैं, जिनमें छोटा मुख बड़ा दिखाई देता है । हम उदास हो जाते हैं तो दर्पण में हमारा चेहरा भी उदास दिखाई देता है । यह सब माया है । आभास और वस्तु के रहने पर भी उसकी प्रतीति न हो, क्या उसका भी कोई उदाहरण है ? कहा कि हाँ है - **'यथा तमः'** तम का अर्थ है राहु । राहु आकाश में रहता है । आजकल के वैज्ञानिक कहते हैं - 'राहु तो धरती की छाया है' । वास्तव में राहु नाम का कोई दैत्य नहीं है। कुछ लोग राहु को राक्षस मानते हैं । लेकिन हमलोग मानते हैं कि छाया में भी छाया पुरुष होता है । छाया का भी कोई अधिष्ठाता होता है । छाया पुरुष एक वस्तु होती है । लोग छाया में ही त्राटक करके उसको सिद्ध कर लेते हैं । छाया का अधिष्ठाता देव 'राहु' है । पहले भी हमने जिस छाया को बताया था, वह भी राहु है । वह जिस छाया को पकड़ लेता था, वह निष्क्रिय हो जाता था । राहु भी एक दैत्य है, जो चन्द्र-ग्रहण के समय दिखलाई पड़ता है । आकाश में रहते हुए भी जब तक पूर्णिमा का चन्द्रग्रहण न आए तब तक राहु का दर्शन नहीं हो सकता । इसी प्रकार परमात्मा के रहते हुए भी जब तक अन्तःकरण निर्मल और निश्चल नहीं हो जाता तब तक ब्रह्म का दर्शन नहीं होता है । **'यथा भासो यथा तमः'** परमात्मा को जानने के लिए मन का निश्चल और निस्तरंग होना आवश्यक है । क्योंकि परमात्मा को जानना कठिन है । परमात्मा हमारे अत्यधिक निकट है । दूर की वस्तु को देखना सरल होता है । आप अहमदाबाद की वेधशाला में चले जाइए । वहाँ आपको दूरबीन लगे हुए दिखाई देंगे । उस दूरबीन में आप देखेंगे तो आपको दिन में चन्द्रमा दिखाई पड़ेगा । इतनी दूर की चीज अपनी आँख से आप देख सकते हैं । किसी ऊँचे मकान पर चढ़कर आप देखें तो आपको पूरा अहमदाबाद दिखाई देगा । आपकी आँखों में इतनी ताकत है । लेकिन उन्हीं आँखों से अपनी आँखों में लगा हुआ काजल दिखाई नहीं देगा। क्योंकि काजल आँख के बहुत निकट है । जब काजल को नहीं देख सकते हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो आँखों को कैसे देख सकोगे ?

आँखों से आँखों को देखना बहुत कठिन है । आँखों से आँखों को जब नहीं देख सकते हो तो मन को कैसे देखोगे जबकि वह तो और भी निकट है। जब मन को नहीं देख सकते हो तो उसके भीतर की बुद्धि को देख पाना और भी कठिन है । जब बुद्धि को नहीं देख सकते हो तो बुद्धि के भीतर के आत्मा को कैसे देख सकते हो ? जो पास में है परन्तु उन्हें देख पाना कठिन होता है। उसको पकड़ना कठिन होता है ।

आत्मा से आत्मा को कैसे देखेंगे ? यदि ऐसा हुआ तो कर्त्ता-कर्म का विरोध हो जाएगा । कर्त्ता अलग होता है । कर्म अलग होता है । हम संस्कृत में बोलते हैं **'देवदत्तः ग्रामं गच्छति'** देवदत्त गाँव को जाता है । 'देवदत्त' कर्त्ता है और 'ग्राम' कर्म है । हिन्दी में कहेंगे - 'देवदत्त गाँव को जाता है ।' यहाँ देवदत्त अलग है और गाँव अलग है । यह कभी नहीं कहेंगे । 'देवदत्त अपने को जाता है ।' अपने में क्या जाएगा ?

नहि पटुरपि नटवटुः स्वस्कन्धमारोढुमीष्टे । अत्यन्त पटु भी नट का वटु अपने कंधे पर नहीं चढ़ सकता । लोग सर्कस देखने जाते हैं । आप वहाँ बोलिए - 'जो अपने कंधे पर चढ़कर दिखाएगा उसे एक लाख रुपया देंगे ।' अपने आप को कैसे देखोगे ? कर्त्ता-कर्म का विरोध हो जाएगा। अब आप समझिए उसकी उक्ति क्या है । आँख से आँख के काजल को देखना हो तो सामने दिख जाएगा । ऐसा ही कोई शीशा मिल जाये तो आप आत्मा को देख लोगे । वह शीशा कौन सा है ? यह काँच का शीशा नहीं चलेगा । शुद्ध अन्तःकरण का शीशा चलेगा । भगवान् शङ्कर ने कहा है -

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना ।
रामरूप देखहिं किमि दीना ॥ (श्रीरामचरितमानस)

जिनका मनरूपी मुकुर मलिन है, विवेक रूपी नेत्र जिनके खुले नहीं हैं, वे दीन राम के रूप को कैसे देख सकते हैं ? मुकुर और दर्पण में यही अन्तर होता है । पहले जमाने में मुकुर होता था । मुकुर लोहे का या स्टील का होता था । उसको साफ करते-करते इतना साफ किया जाता था कि उसमें मुख दिखलाई देने लगता था । अगर उसमें जंग लग गयी तो वह धुँधला हो जाता था । हमारे मन पर यदि विषय की काई लगी हो - **'काई विषय मुकुर मन लागी ।'** तो सब कुछ विषयाकार दिखाई पड़ेगा । यदि वह काई मिटा दी जाए तो मन निर्मल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाएगा। पूर्णिमा की रात्रि में आप सरोवर के किनारे बैठ जाइए । हवा चल रही है तो उसी के साथ-साथ सरोवर में लहरें भी उठ रही है । उन्हीं में हिलता डुलता चन्द्रमा भी दिखाई पड़ेगा । यदि उस सरोवर का जल मलिन है तो उन लहरों में भी मलिनता दिखाई पड़ेगी । लहरों में दिखाई पड़ने वाला चन्द्रमा भी मलिन ही दिखाई पड़ेगा ।

हमारा अन्तःकरण सरोवर है । उस अन्तःकरण रूपी सरोवर में जब किसी प्रकार की तरंग न हो, किसी प्रकार की कोई वृत्ति न हो, उसमें रजोगुण तमोगुण न हो, शुद्ध सत्व हो तो उसमें आत्मा का दर्शन होता है । जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा सरोवर में दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण में आत्मा का दर्शन होता है । अन्तःकरण की निर्विकल्पकता ही पूर्णिमा है ।

'यथा भासो यथा तमः' जैसे आभास और तम । आभास बिना होते हुए भी प्रतीत होता है । इसलिए वह माया है । तम होते हुए भी प्रतीत नहीं होता । वह परमार्थ है । **'यस्तु सम्यक् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि,** ब्रह्म के रहने पर भी वह प्रतीत नहीं हो रहा है ।

यथा महान्ति भूतानि, भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥

(श्रीमद् भागवत 2/9/34)

जैसे पञ्चमहाभूत अपने-अपने कार्यों में प्रविष्ट हैं । मिट्टी घड़े में प्रविष्ट है, सोना आभूषण में प्रविष्ट है परन्तु हम ऐसा नहीं कह सकते । इसलिए कि यदि कार्य कारण में प्रविष्ट हो गया । आभूषण यदि सोने से अलग होता तो हम कह सकते थे कि आभूषण में सोना प्रविष्ट हो गया है । सोने से अतिरिक्त वह है ही नहीं । कौन किसमें प्रविष्ट होगा ?

एक पण्डित जी थे । वे गणेशजी के उपासक थे । उन्होंने सोने का गणेश जी और सोने का ही उनका वाहन मूषक बनवाया । पण्डित जी बराबर उनका पूजन करते रहे । कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया । उनके लड़के नालायक निकल गए । उन्होंने सब कुछ बेच खाया । वे एक दिन सोने के मूषक सहित गणेश जी को बेचने गये । सोनार ने दोनों को तौला । जितना वजन गणेश जी का था उतना ही वजन मूषक का भी था । सोनार ने दोनों का एक दाम बताया। पण्डितजी के लड़के नाराज हो गये और बोले - 'बाह ! जितना गणेशजी का दाम लगा रहे हो उतना ही चूहे का भी लगा रहे हो ? गणेश जी का दाम चूहे के दाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से अधिक होना चाहिए ।' सोनार ने कहा - 'महाराज ! हम चूहा नहीं खरीद रहे हैं । चूहा तो हमारे घर में ही बहुत है । और गणेश जी को हम खरीद नहीं सकते । हम तो सोना खरीद रहे हैं ।' तत्वदर्शी तत्त्व को देखता है रूप को नहीं देखता है । उसकी दृष्टि तत्त्व पर जाती है । अभी आपने सुना कि आत्मा से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । इसलिए हम कह सकते हैं कि आत्मा आकाश में प्रविष्ट है, आकाश वायु में प्रविष्ट है, वायु अग्नि में प्रविष्ट है, अग्नि जल में प्रविष्ट है और जल पृथ्वी में प्रविष्ट है ।

परन्तु सच पूछा जाय तो आत्मा के ही रूप में आकाश में वायु प्रविष्ट है। इसी तरह वायु आत्मा के रूप में जल में प्रविष्ट है, आत्मा के रूप में पृथ्वी में प्रविष्ट है । आत्मा ही पृथ्वी में प्रविष्ट है । आत्मा से यदि ये अलग होते तब तो प्रवेश की बात कर सकते हैं । जब सोने में दिखाई पड़ने वाले आभूषण के समान संसार के पदार्थ नाम और रूप की कोई सत्ता ही नहीं है तो भला कौन किसमें प्रविष्ट है ।

उसी प्रकार 'मैं' जो जगत का कारण, जगत का अधिष्ठान ब्रह्म है, वह सारे विश्व प्रपंच में, अनन्त कोटिब्रह्माण्ड में प्रविष्ट है । परन्तु मुझसे पृथक् ब्रह्माण्ड की कोई सत्ता न होने के कारण मैं प्रविष्ट भी नहीं हूँ । मैं हूँ भी और वास्तव में देखा जाय तो मैं नहीं हूँ । मैं ही तो मैं हूँ । कौन किसमें प्रविष्ट है।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥

(श्रीमद्भागवत 2/9/35)

आत्मा के तत्त्व को जानने वाले को इतना ही जानना चाहिए कि 'यह ब्रह्म है' इस अन्वय एवं यह ब्रह्म नहीं इस निषेध पद्धति से सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप परमात्मा का ज्ञान संभव करे । हमने आपको बतलाया था - अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप । इन पाँच रूपों में हमें जगत प्रतीत होता है । नाम रूप का व्यतिरेक है । एक नाम रूप एक जगह है दूसरी जगह नहीं है । मिट्टी से अनेक पदार्थ हैं - घट, सराव, उदंचन आदि । हिन्दी में आप कहेंगे - घड़ा बनता है, सकोरा बनता है, परैया बनती है । इस प्रकार कई चीजें मिट्टी से बनती है । परन्तु परस्पर उनका व्यतिरेक है । सकोरा घड़ा नहीं है, घड़ा सकोरा नहीं है और सकोरा परैया नहीं है, परैया सकोरा नहीं है । मिट्टी एक ही है उसके द्वारा निर्मित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पात्र के नाम रूप अलग-अलग हैं ।

इस प्रकार आत्मा का सबमें अन्वय है । सबका सबमें व्यतिरेक है । जिसका अन्वय है सत्य है जिसका व्यतिरेक है वह झूठा है । सीधी एक बात यह कि मिट्टी सबमें है । इसीलिए मिट्टी का सबमें अन्वय है । चाहे कितने कपड़े बने हों, चाहे उसे कुर्ता कहें, चाहे पैंट कहें या चाहे कोट कहें । कुछ भी कह लें लेकिन है तो वह सूत ही । सूत से अतिरिक्त वह और क्या है ? उसका सबमें अन्वय है । नाम रूप आदि सबमें इनका व्यतिरेक है ।

अब आप सर्वदा का दृष्टान्त देखें । आप इस समय जाग रहे हैं **'इन्द्रियैः अर्थोपलब्धिर्जागरणम्'** इन्द्रिय के द्वारा जो अर्थ की उपलब्धि है, उसका नाम जागरण है । इस जागरण में आप प्रवचन सुन रहे हैं । यदि आप सो जाएँ यह नहीं रह जाएगा । न जाने सोकर आप क्या देखेंगे । स्वप्न में आप कुछ और देखने लग गए और जब गाढ़ी नींद आ गयी तो आप वह स्वप्न भी नहीं देखेंगे। जब आप सोकर उठेंगे तो आप कहेंगे आज मैं ऐसा सुख से सोया कि मुझे कुछ पता ही नहीं रहा । **'सुखमहमस्वाप्सम् न किंचिदवेदिषम्'** ? मैं आज इतना सुख से सोया कुछ भी पता नहीं लगा । 'मुझे कुछ पता न लगा' इसका पता तो लगा ।

एक दरोगा ने एक सिपाही की किसी गली में ड्यूटी लगाई और कहा - 'रात को पहरा देना । यदि तुमको वहाँ कोई दिखलाई पड़े तो सबेरे आकर हमको बतला देना ।' सिपाही रात भर उस गली में पहरा देता रहा । वह सुबह जब दरोगा के पास आया तो दरोगा ने उससे पूछा 'क्यों भाई, तुमने पहरा दिया' उसने कहा 'हाँ हुजूर । हमने वहाँ रात भर पहरा दिया ।' दरोगा ने फिर पूछा- 'वहाँ कोई तुम्हें दिखायी दिया ?' सिपाही ने कहा - 'कोई नहीं दिखाई दिया ।' दरोगा ने कहा - 'तू वहाँ था कि नहीं ?' सिपाही ने कहा - 'यदि मैं वहाँ नहीं होता तो यह कैसे जानता कि वहाँ कोई नहीं था ।'

व्यक्ति सुषुप्ति में रहता है । वह सुषुप्ति का स्मरण करता है कि मैं आज सुख से सोया । वही सुषुप्ति में रहता है, स्वप्न में रहता है और वही जाग्रत में रहता है । जाग्रत में आकर कहता है - 'हमने स्वप्न में यह देखा' स्वप्न देखने वाले तुम थे । स्वप्न नहीं था । तुम गहरी निद्रा में थे और अब भी तुम हो वह आत्मा जिसको हम मैं कहते हैं उसका तो जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों में अन्वय है । जाग्रत का स्वप्न में व्यतिरेक है । स्वप्न का जाग्रत में व्यतिरेक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुषुप्ति का जाग्रत में व्यतिरेक है ।

राजा जनक जी एक दिन अपने महल में सो रहे थे । सोये में उन्होंने स्वप्न देखा कि किसी दूसरे राजा ने मिथिला पर आक्रमण कर दिया है । भयंकर युद्ध हो रहा है । उस युद्ध में मिथिला की सेना पराजित हो गयी । दूसरे राजा के सैनिक राज्य में प्रविष्ट होने लगे । राजा को उन्होंने सूचना दी कि 'महाराज ! सैनिक आ रहे हैं आपको पकड़ लिया जाएगा । आप भागिए । राजा जनक जी गुप्त द्वार से भागकर कहीं दूर दूसरे देश में चले गये । वहाँ कुछ भी नहीं था । महारानी सहित राजा जनक जी भिक्षाटन करते हुए वहाँ रहने लगे । एक दिन कहीं से खिचड़ी का सामान मिला । मिट्टी का बर्तन हंडिया आदि लेकर वे जंगल में किसी नदी के किनारे पहुँचे । उन्होंने वहाँ पत्थर का चूल्हा बनाया । लकड़ी जलायी और खिचड़ी पकने के लिए उस पर रख दिया । खिचड़ी पक ही रही थी कि इतने में एक मतवाला हाथी आया । वह दौड़ता हुआ इनकी ओर आने लगा । महावत ने कहा - भागो! भागो! राजा जनक ने किसी तरह भाग कर अपने प्राण बचाये । राजा जनक डर गये थे । जब नींद खुली तो उन्होंने देखा - मैं तो आराम से सो रहा हूँ । सिपाही पहरा दे रहे हैं। कहीं कोई आपत्ति की बात है ही नहीं।

उनके मन में तब संशय हुआ कि यह सत्य है या वह सत्य है । प्रतीति दोनों की हो रही थी । वहाँ उनके दरबार में बड़े-बड़े महात्मा थे । बड़े-बड़े ऋषि मुनि थे । उन्होंने उन सबसे पूछा, किन्तु किसी ने उत्तर नहीं दिया । एक कहोल ऋषि थे । उनकी स्त्री के पेट में एक बच्चा आया । वे वेद मन्त्र पढ़ रहे थे कि कुछ अशुद्धि निकल गई । वह बच्चा ज्ञानी था । उसने कहा - **'अशुद्धं न वक्तव्यम्'** उन्होंने इधर-उधर देखा । कोई दिखायी नहीं दिया । वे पुनः वेदमन्त्र पढ़ने लगे । फिर उस बच्चे ने कहा - **पुनः पुनः अशुद्धं किं वदसि?'** ऋषि ने कहा - 'अरे, तू है कौन? उसने कहा - 'मैं गर्भस्थ बालक हूँ । तब ऋषि कहोल और उस बच्चे में शास्त्रार्थ होने लगा । ऋषि कहोल पराजित हो गये । तब उन्होंने गर्भस्थ बालक को श्राप दिया कि 'जा, तू आठ जगह से टेढ़ा होगा।' वे ही अष्टावक्र मुनि हुए। राजा जनक के उसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए उनकी सभा में ऋषि कहोल पहुँचे। वे उत्तर नहीं दे पाए इसलिए राजा जनक ने उनको कैद कर लिया और कहा- आप जब तक मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देंगे तब तक कैद रहेंगे ।

अष्टावक्र मुनि को जब यह पता चला तो वे अपने पिता को छुड़ाने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लाठी टेकते-टेकते राजा जनक के द्वार पर पहुँचे । वहाँ पहरेदारों से कहा - 'जाओ राजा जनक से कह दो महर्षि अष्टावक्र आए हैं ।' राजा जनक ने सोचा कोई आए होंगे । उनका सिपाही आया और उनको राजा जनक के पास ले गया । आठ जगह से टेढ़ा यह बालक लाठी टेकते-टेकते राजा जनक के सामने पहुँचा । राजा जनक ने कहा - 'महाराज सिंहासन पर बैठिए । वे सिंहासन पर बैठने के लिए बढ़े तो उनकी कुबड़ी सरक गई और वे गिर पड़े । उन्हें गिरते देखकर सारी सभा हँसने लगी । जब सभी हँस चुके तब अष्टावक्र जी ने जोर से हँसना शुरू किया। जनक जी ने पूछा - 'आप क्यों हँस रहे हैं? उन्होंने कहा 'इसलिए मैं हँस रहा हूँ, कि तेरी सभा में सभी चर्मकार है इनको चमड़े की परख है, आत्मा की नहीं है । मेरा यह चमड़ा आठ जगह से टेढ़ा है इसको देखकर ये हँस रहे हैं । मुझे इन्होंने नहीं देखा ।

जनक जी इनकी विद्वता को समझ गये । फिर उन्होंने उनका समुचित स्वागत किया और फिर उन्हें सम्मान के साथ आसन दिया । राजा जनक ने उनसे प्रश्न किया - 'महाराज ! यह सत्य है कि वह सत्य है? अष्टावक्र जी बोले - 'न यह सत्य है न वह सत्य है । इसकी अपेक्षा से वह असत्य है और उसकी अपेक्षा से यह असत्य है ।' राजा जनक ने पूछा 'महाराज ! सत्य क्या है ?' अष्टावक्र जी बोले - 'भाई, आपके एक प्रश्न का उत्तर तो हमने दे दिया । अब दूसरे प्रश्न का उत्तर हम तब देंगे जब हमें दक्षिणा दोगे ।' राजा जनक ने कहा - 'महाराज! हम दक्षिणा में आपको अपना राज्य दे देते हैं ।' अष्टावक्र जी ने कहा - 'नहीं सब कुछ देना पड़ेगा ।' राजा जनक ने कहा - 'चलिए सब कुछ दे दिया । अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए ?'

इतने में अष्टावक्र जी ने माया रची - एक ब्राह्मण आया और बोला - 'महाराज ! हमारी कन्या का विवाह है । कुछ हमको दे दीजिए तो हमारी कन्या का विवाह हो जाए ।' अष्टावक्र जी कुछ बोले नहीं । वह जोर-जोर से बोलने लगा । अष्टावक्र जी चुपचाप सुन रहे थे । ब्राह्मण ने कहा - 'हम आपको श्राप दे देंगे ।' तब राजा जनक जी बोले 'महाराज हमें श्राप मत दीजिए । हमने तो सब कुछ दक्षिणा में इनको दे दिया है ।' ब्राह्मण ने कहा - 'अच्छा तो तुमने इनको दे दिया है । तुम्हें इस बात का अभिमान तो है । देने का ढोंग समाप्त करो। सर्वस्व में तो तुम्हारा मन भी आता है ।' राजा जनक ने कहा - 'ठीक है। हम अपना मन भी इनको दे देते हैं । इसके बाद अष्टावक्र जी ने पूछा - 'तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौन हो?' राजा जनक ने कहा - 'महाराज मैं जनक हूँ । कौन कह रहा है ? मैं ही तो कह रहा हूँ । अष्टावक्र जी ने कहा - 'जब तुमने अपना मन हमको दे दिया है तो मैं जनक हूँ यह किससे कह रहे हो ?'

अब तो जनक जी का मन बिल्कुल निर्विकल्प हो गया और वे निर्विकल्प होकर शान्त हो गए । अष्टावक्र जी ने कहा यह सत्य है । इस तरह सत्य का दर्शन अष्टावक्र जी ने राजा जनक जी को कराया । यह आत्मा अन्वय और व्यतिरेक से सर्वदा सर्वत्र प्रतीत होता है ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ (श्रीमद्भागवत 2/9/35)

इस मत से तुम परम समाधि को धारण कर लो तो तुम्हें सङ्कल्प-विकल्प से मोह नहीं होगा ।

सोचिए ! आपका अपना कोई लड़का या लड़की मर जाए तो आप कितने दुःखी होंगे । दिन-रात रोते रहेंगे । यह समस्त संसार ब्रह्माजी का बेटा है । प्रलयकाल में जब ये सब मरेंगे तो क्या ब्रह्माजी को दुःख नहीं होगा । हम बैठे हैं, हमारे बेटे सब मर रहे हैं । एक बेटा पैदा होने पर लोग खुशी मनाते हैं ब्रह्मा जी तो पूरे संसार की रचना करते हैं , उनको कितना आनंद आता होगा ।

जिसकी प्राप्ति में जितनी खुशी होती है उसके वियोग में उतना ही दुःख मिलता है । ब्रह्मा जी के सामने न जाने कितने जन्म लेते है और कितने मरते हैं । मरने वालों के वियोग में रोते-रोते ब्रह्माजी का समस्त जीवन ही बीत जाता है । इसलिए भगवान् नारायण ने उन्हें ज्ञान दिया और कहा - 'परमसमाधि के द्वारा चित्त को एकाग्र करके तुम उनमें निष्ठा रखो । तुम्हें विकल्प में भी कभी मोह नहीं होगा। इसी बात को हम भी धारण कर लें तो हम आप भी मोह रहित हो जाएंगे। यही चतुःश्लोकी भागवत है । आज के दिन की कथा को यहीं विराम देते हैं ।

श्रीराम जय राम जय जय राम,
श्रीराम जय राम जय जय राम,
श्रीराम जय राम जय जय राम,
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

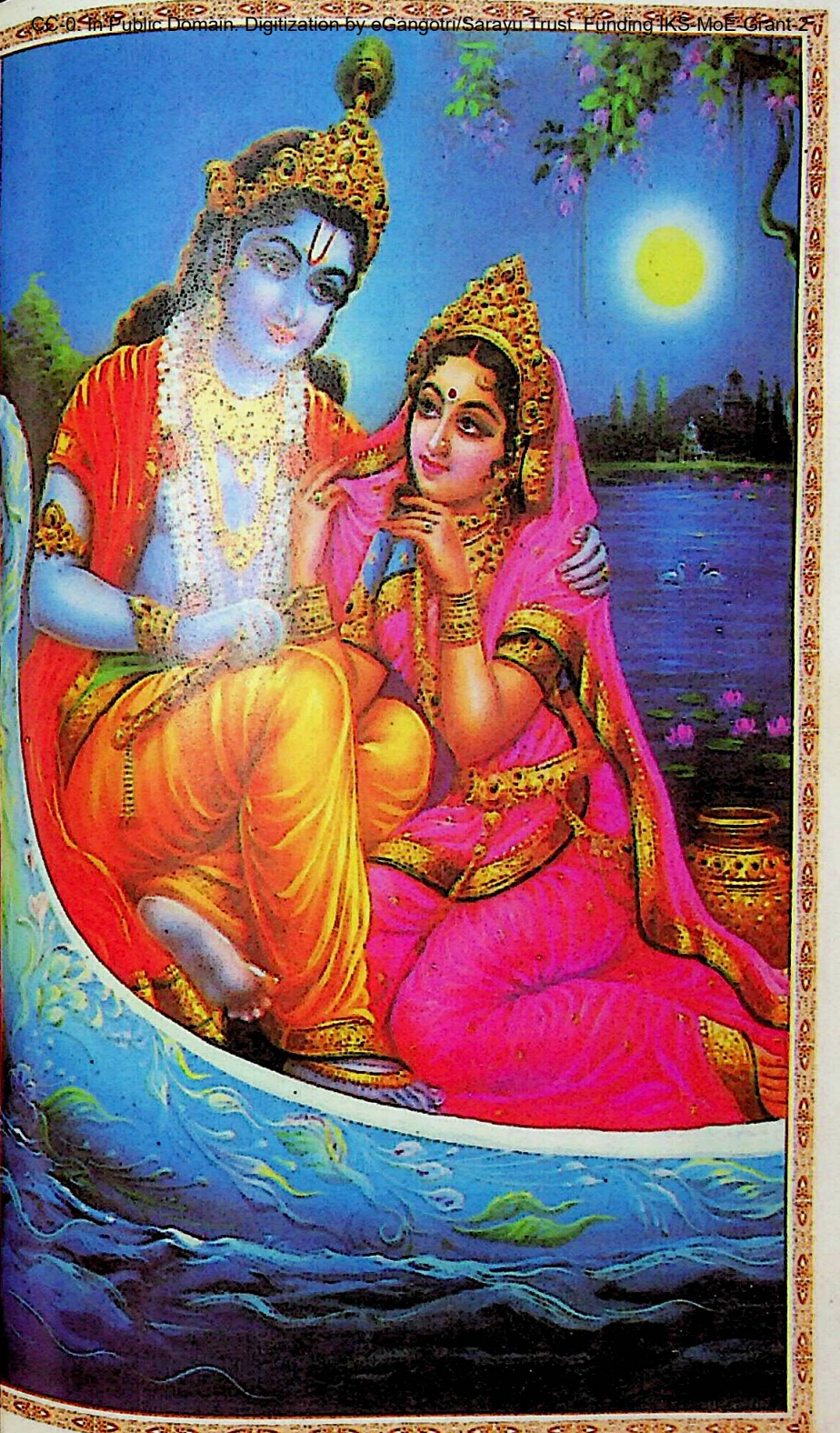

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

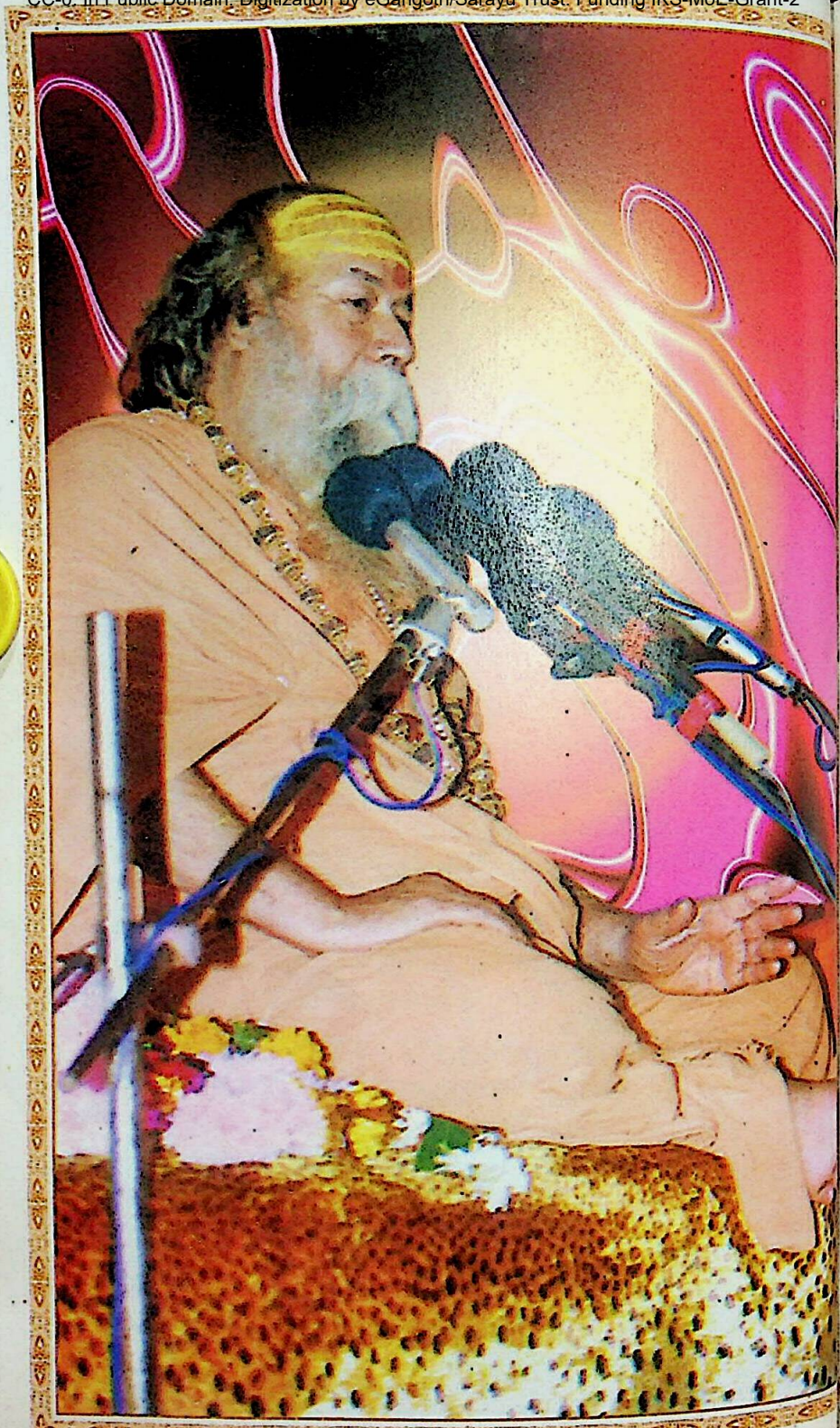

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ-दिवस

समुपस्थित विद्वद्वृन्द, सज्जनो एवं देवियो,

कल आपने चतुःश्लोकी भागवत सुनी । भगवान् श्रीमन्नारायण ने यही भागवत ब्रह्मा जी को सुनाया और यह आशीर्वाद दिया-

'एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

(श्रीमद्भागवत 2/9/36)

परम समाधि से तुम इस मत को धारण करो तो कल्प-विकल्प में तुम्हें किसी प्रकार का मोह नहीं होगा । इस ज्ञान से सम्पन्न होकर ब्रह्माजी ने विविध प्रकार की रचना की । तीन प्रकार की सृष्टि का वर्णन अपने पुराणों में आता है। एक मानसी सृष्टि होती है दूसरी सांसिद्धिकी सृष्टि होती है और तींसरी मैथुनी सृष्टि होती है ।

ब्रह्माजी द्वारा होने वाली सृष्टि मानसी सृष्टि है । उन्होंने मन में जिन जिनका संकल्प किया वे उत्पन्न होते गये । योगीजन तपस्या द्वारा जिस सिद्धि को प्राप्त करके उस सिद्धि के बल पर जिस सृष्टि की रचना करते हैं, वह सांसिद्धिकी सृष्टि है । तीसरी मैथुनी सृष्टि वह है, जिसमें स्त्री-पुरुष मिलकर संतान उत्पन्न करते हैं।

मानसी सृष्टि के लिए मनोबल चाहिए । सांसिद्धिकी सृष्टि के लिए सिद्धि का बल चाहिए । इसीलिए सृष्टि के कार्य में बिलम्ब होने लगा । ब्रह्माजी ने मैथुनी सृष्टि को प्रारम्भ करने के लिए एक मानव जोड़े को जन्म दिया । उनकी दाहिनी भुजा से मनु की उत्पत्ति हुई और वाम भुजा से शतरूपा की उत्पत्ति से मानवीय सृष्टि हुई । इसलिए हम सब मानव कहलाते हैं । तुलसीदासजी ने कहा-

स्वायंभुव मनु अरु शतरूपा । जिन ते भइ नर सृष्टि अनूपा ॥

(श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दो.141 चौ.1)

स्वायंभुव मनु और शतरूपा से मानवीय सृष्टि हुई है । इसलिए हम मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या मानव कहलाते है । मनु शतरूपा से दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं । प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन कन्याएँ हुई । आकूति का विवाह रुचि नाम के ऋषि, देवहूति का विवाह कर्दमजी से हुआ जिनके द्वारा भगवान् ने कपिल अवतार धारण किया था और प्रसूति का विवाह दक्ष से हुआ, जिससे कई कन्याओं का जन्म हुआ । उन कन्याओं में एक सती थी, जब उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा-'भगवान मेरे लिए क्या आज्ञा है ?' ब्रह्माजी ने उन्हें आदेश दिया-'प्रजा उत्पन्न करो ।' तब प्रजा बढ़ाने की समस्या थी ।

कर्दम ने बहुत समय तक तपस्या किया । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए । कर्दमजी ने उनकी बहुत सुन्दर स्तुति की । भगवान् ने कहा-'जो तुम्हारी इच्छा हो वरदान माँग लो । कर्दमजी ने कहा-'सांसारिक इच्छा से आपका भजन करने वालों में से हम हैं । हम गृहस्थ आश्रम में जाने के लिए कामधेनु जैसी उत्तम गृहिणी की प्राप्ति की इच्छा से आपका भजन कर रहे हैं । उनकी इस प्रकार की बातों को सुनकर भगवान् की आँखों से आँसू के बिन्दु गिर पड़े और बोलें- इतनी कठिन तपस्या करके भी इसने क्या माँगा ? आख्यायिका है कि -भगवान् की आँखों से गिरे आँसुओं से बिन्दु सरोवर बन गया है । जो सिद्धपुर में स्थित सिद्धाश्रम में है ।

भगवान् बोले-'कर्दम ! आज से तीसरे दिन तुम्हें धर्मपत्नी की प्राप्ति हो जाएगी । हम तुम्हारे वहाँ अवतार लेगें । तीसरे दिन मनु शतरूपा अपनी कन्या देवहूति को लेकर कर्दमजी के आश्रम में आए । कर्दमजी ने उनका स्वागत किया। मनु-शतरूपा ने भी उनको यथोचित सत्कार देते हुए उनसे प्रार्थना की-'महाराज ! हमारी आपसे एक प्रार्थना है । देवहूति नामकी यह हमारी कन्या है। प्रियव्रत एवं उत्तानपाद की यह बहन है । यह अपने अनुरूप वर की इच्छा रखती है । नारदजी से हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है । इसने मन से आपको ही वरण कर लिया है । इसलिए महाराज ! इसे आप स्वीकार कीजिए -

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ।
अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥
य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ।
क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥

(श्रीमद्भागवतम् 3/22/12-13)

जो उद्यत काम्य वस्तु है, उसका प्रतिवाद निर्मुक्त संघ को भी नहीं करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए । महाराज ! फिर आप तो कामरक्त है । जो उद्यत को छोड़कर क्षुद्रवस्तु की कामना करता है, उसका उज्ज्वल यश नष्ट हो जाता है और अवज्ञा के कारण मान भी चला जाता है ।

कर्दमजी बोले-'महाराज ! हम तो यही चाहते थे । चलिए अच्छा है । आप अपनी कन्या हमें प्रदान कीजिए । **आद्यो वैवाहिकविधिः** । यह प्रथम विवाह है । मनु-शतरूपा कर्दम जी को वैवाहिक विधि से अपनी कन्या देवहूति को समर्पित करके अपने घर की ओर लौट गये ।

कर्दमजी अपनी तपस्या में निरत रहे । क्योंकि जिसकी जो दिनचर्या बन जाती है, वह उसे शीघ्रतापूर्वक छोड़ नहीं पाता है । इधर देवहूति ने अपना यह भाव भुला दिया कि "मैं राजकुमारी हूँ" और बड़े आदर सम्मान के साथ मुनि की सेवा में लग गयी । जैसा कि एक पतिव्रता स्त्री को होना चाहिए । वह मन और इन्द्रियों को वश में करके पवित्रतापूर्वक पति की सेवा में तत्पर थी । वह अपने पति के प्रति एक गौरव का भाव रखती थी । पति कुछ तेज स्वभाव के थे, लेकिन फिर भी देवहूति ने अपनी विनम्रता से उनको अपने वश में कर ही लिया।

एक दिन कर्दमजी ने कहा-"मैं तेरी सेवा से प्रसन्न हूँ, जो तेरी इच्छा हो वरदान माँग लो ।" देवहूति ने बड़े ही संकोच के साथ कहा-"महाराज ! मैं गृहस्थ आश्रम का सुख चाहती हूँ ।"

कर्दमजी एक बड़े तपस्वी ऋषि थे । उन्होंने अपनी सिद्धि से एक दिव्य विमान का निर्माण किया और एक सुन्दर सरोवर बनाया । उन्होंने देवहूति से कहा-"तुम इस सरोवर में स्नान करो ।" देवहूति कृशकाय हो गई थी । उसने जैसे ही सरोवर में डुबकी लगाई, वह दिव्य शरीर वाली हो गई । अनेक दासियाँ उस सरोवर से निकल कर आईं । उन्होंने देवहूति को वस्त्र अलंकार से सुसज्जित किया । कर्दमजी ने भी उस सरोवर में स्नान करके दिव्य युवा देह को धारण किया । वे दोनों उस कामगामी विमान में बैठकर बहुत काल तक संसार का सुख भोगते रहे । पर इस संसार का नियम है कि भोग से तृष्णा की शान्ति नहीं होती।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (मनुस्मृति 2/94)

जैसे अग्नि को कोई घृत से शान्त करना चाहे तो अग्नि और प्रज्ज्वलित होती है । उसी प्रकार विषय भोग से विषय की तृष्णा दूर नहीं हो सकती । कर्दम मुनि की नौ कन्याएँ हुई, जिससे उन्हें वैराग्य हो गया । उन्होंने सोचा, हमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी सारी तपस्या समाप्त कर दी । अब अपना परलोक बनाना चाहिए । वे बोले-"देवहूति ! अब हम तो संन्यास लेना चाहते हैं ।" देवहूति ने कहा- " महाराज ! ऐसा कैसा संन्यास ? नियम तो यह है कि-

प्रथमहि पुत्रहि उऋण करि देइ सुवृत्ति बताय ।
सुता सुतन्हिं के ब्याहिकै आप बसै बन जाय ॥ (स्फुट)

प्रथमतः पुत्र को जन्म देकर उसे जीविका में लगा कर यदि कन्याएँ जन्मी हो तो उसका उत्तम वर के साथ विवाह करके फिर वन में जाय । सो हे महाराज! पहले उन कन्याओं का विवाह तो कर दीजिए, उसके बाद आप वन में जाइए। ऐसे आप यदि वन में चले जाएँगे तो मेरे शोक का हरण करने वाला कौन होगा? कर्दमजी को देवहूति पर दया आ गई । वे घर पर ही रह गये और बोले- देवहूति ! तेरा कल्याण हो । तू व्रत को धारण कर । भगवान् अक्षर तेरे गर्भ से प्रकट होंगे ।

कर्दमजी ने कुछ ही काल में उन कन्याओं का विवाह कर दिया । कुछ समय बाद ही उनके यहाँ भगवान् कपिलदेवजी प्रकट हुए । ये साक्षात् भगवान् के अवतार हैं । लुप्त हुए सांख्य शास्त्र का पुनरुद्धार करने के लिए इनका अवतार हुआ है । कपिलदेवजी के जन्म लेने के बाद कर्दमजी ने उनकी तीन परिक्रमाएँ की और उनसे आज्ञा लेकर विरक्त हो संन्यासी हो गये । कपिलजी उस बिन्दु सरोवर में माता का प्रिय करने के लिए रहने लगे । एक दिन देवहूति के मन में यह बात आई कि मैनें पुत्र के रूप में भगवान् को प्राप्त किया है तो इनसे ज्ञान प्राप्त करूँ । यह सोचकर जहाँ कपिलजी बैठे थे, वह वहाँ पहुँची और उनके सामने खड़ी हो गयी । उनको प्रणाम करते हुए बोली-"मैं भुवन में रहकर इन्द्रियों की तृष्णा से विरक्त हो चुकी हूँ । मैं आपकी शरण में आई हूँ-

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः परस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥
(श्रीमद्भागवत 3/25/11)

आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं । आप अपने सेवक के लिए संसार रूपी वृक्ष को काटने वाले कुठार के समान हैं । मै प्रकृति और पुरुष को जानने की इच्छा से आप शरणागतवत्सल की शरण में आयी हूँ ।

भगवान् कपिल बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी माता देवहूति को उपदेश देते हुए कहा-"माँ ! प्रकृति और पुरुष से इस संसार की उत्पत्ति हुई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विध्यनादि उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 13/2)

प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि है । प्रकृति से विकार और गुण जन्म लेते हैं । ये प्रकृति के तत्त्व हैं । प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्व से अहंतत्त्व, अहंतत्त्व से पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं । पञ्च तन्मात्रा से पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए । उनसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचकर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और एक मन उत्पन्न हुआ । इस तरह षोडश और पञ्च तन्मात्राएँ तथा पञ्च महाभूत मिलकर छब्बीस तत्त्व हो जाते हैं । इसके तीन भेद हैं - प्रकृति, प्रकृति-विकृति और केवल विकृति । विकृति सोलह है, पञ्च महाभूत, महत्तत्व, अहंतत्त्व ये प्रकृति-विकृति हैं और प्रकृति तो केवल प्रकृति है ।

आत्मा न प्रकृति है न विकृति है । पुरुष जब तक अपने आपको प्रकृति के साथ जोड़े रहता है, अपने आप को प्रकृति से पृथक् नहीं समझता, तब तक वह संसार के बन्धन में बँधा रहता है । प्रकृति के गुणों और कर्मो को अपने आप में आरोपित करके वह स्वयं बँध जाता है । जिस समय वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है, उस समय वह प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है। आत्मा और अनात्मा के अविवेक से ही संसार का बन्धन है ।

प्रकृति अनात्मा है, हम आत्मा हैं हमारे बन्धन का कारण यही है कि प्रकृति के किये हुए कार्यों को हम स्वयं में आरोपित कर लेते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 3/27)

प्रकृति के गुण से समस्त कर्म होते हैं । परन्तु अहंकार से जो अपने आप को नहीं जानता वह स्वयं को कर्ता मान लेता है, जब वह प्रकृति के गुण कर्मों को प्रकृति में डाल देता है और स्वयं को प्रकृति से परे समझ लेता है । तब वह मुक्त हो जाता है । जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 14/19)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात् आत्मा द्रष्टा है । द्रष्टा कर्ता से भिन्न होता है । जो साक्षी है, वह कर्त्ता नहीं माना जाता है । कर्त्ता मुल्जिम होता है । साक्षी केवल देखने वाला होता है । अतः आत्मा केवल द्रष्टा है । साक्षी द्रष्टा आत्मा के गुणों से भिन्न होता है, वह स्वयं को कर्त्ता नहीं जानता । वह स्वयं को गुणों से भिन्न जानता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते है-**'मद्भावं सोऽधिगच्छति'** ? अर्थात् वह मेरे भाव को प्राप्त हो जाता है ।

आत्मा और अनात्मा का विवेक कैसे हो? हम आत्मा को अनात्मा से कैसे अलग करें ? श्रीमद्भागवत् का सांख्य निरीश्वर सांख्य नहीं है । सेश्वर सांख्य है। भगवान् कपिल ने कहा है कि "इसे जानने के लिए अपने अन्तःकरण की शुद्धि अपेक्षित है ।"

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥

(श्रीमद्भागवत 3/28/2)

अपनी शक्ति के अनुसार अपने धर्म का पालन करना चाहिए । विधर्म से अलग होकर प्रारब्ध के अनुसार भगवान् द्वारा दिये गये में सन्तुष्ट रहना चाहिए। आत्मा को जानने वाले महापुरुषों के चरणों का पूजन करना चाहिए । उनका सत्संग करना चाहिए । सत्संग से क्या लाभ होता है ? इस विषय में कपिलजी कहते हैं-

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(श्रीमद्भागवत 3/25/25)

सत्पुरुषों का संग करने से मेरे माहात्म्य का ज्ञान होता है । भगवान् क्या हैं? इसका ज्ञान सत्संग से होता है । भगवान् के गुणों का, भगवान् के स्वभाव का और उनके स्वरूप का बोध सत्संग से होता है । जब भगवान् के स्वरूप का बोध हो जाता है, तब गुणों का ज्ञान हो जाता है । भगवान् की कथा हृदय और कान के लिए रसायन बन जाती है । कथा में बड़ा सुख मिलता है । उस कथा का सेवन करने से मोक्ष के मार्ग में पहले श्रद्धा और वैराग्य के बोध से वह अविवेक की ग्रन्थि को उखाड़ देता है । अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है । मनुष्य के बन्धन का कारण केवल असंग है-

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

(श्रीमद्भागवत 3/25/20)

भगवान् कपिलजी बोले-"प्रसङ्ग" अर्थात् राग, आसक्ति पाश जीर्ण नहीं होता। यह आत्मा का दृढ़ पाश है। इसी के कारण मनुष्य संसार में बँधा हुआ है। किसी कवि ने कहा है-"संसार में अनेक बन्धन है-

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् ॥
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे ॥

(स्फुट)

संसार में बहुत से बन्धन हैं। रस्सी का बन्धन है। सांकल का बन्धन है। इन प्रकार के बन्धन से प्राणी बाँधा जाता है। हथकड़ी का बन्धन, पेटी का बन्धन आदि बाँधने के काम में आता है। लेकिन सबसे बड़ा प्रेम का बन्धन है। यह एक विलक्षण ही बन्धन है। संसार के सभी बन्धन तोड़े जा सकते हैं। परन्तु इस प्रेम बन्धन को तोड़ना कठिन हो जाता है।

भ्रमर सूखे काष्ठ में भी अपने डङ्क से छिद्र बना लेता है। उसका डङ्क इतना पैना होता है कि सूखे काष्ठ को भी काट कर उसमें अपना बिल बना देता है। परन्तु वहीं भ्रमर जब कमल की कोमल पङ्खुड़ी में घिर जाता है तो उसमें छिद्र करके बाहर निकल नहीं पाता।

कहते हैं कि कोई भ्रमर कमलवन में दिन में भ्रमण करता-करता एक कमल के ऊपर बैठकर उसके सुगन्ध से प्राण को तृप्त करते हुए मकरन्द का पान कर रहा था। उस मधुर मकरन्द के पान में वह इतना विभोर हो गया कि उसे किसी बात का भान ही नहीं रहा। जब भगवान् मरीचिमाली सूर्य नारायण अस्त हो गये तब कमल अपने स्वभाव वश मुकुलित हो गया और वह भ्रमर उसमें फँस गया। वह चाहता तो कमल की कोमल पङ्खुड़ियों को काटकर बाहर निकल सकता था लेकिन प्रेम के कारण नहीं निकला। उसके अन्दर ही अन्दर मनोरथ करने लगा-

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्।
भास्वान् उदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे।
हा हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार ॥ (स्फुट)

रात बीतेगी, सुप्रभात होगा, भगवान् सूर्य उदय होंगे, उनकी किरणों के संस्पर्श से यह पङ्कज खिलेगा और मैं स्वतन्त्र होकर आकाश में विचरण करूँगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार कोश के भीतर बैठा-बैठा मनोरथ कर ही रहा था कि इतने में एक मत्त गजेन्द्र आया और सूँड़ से कमल के वन को पैरों से रौदते हुए उस कमल को भी रौंद दिया जिसमें भ्रमर बैठा हुआ था । भ्रमर बेचारा मारा गया । उसके मरने का क्या कारण था-आसक्ति । अगर आसक्ति नहीं होती तो वह कब का निकल गया होता ।

महात्मा लोग कहते हैं कि जब तक मनुष्य का विवाह नहीं होता वह तब तक दो पैरों वाला होता है । जब उसका विवाह हो जाता है तो वह चार पैरों वाला हो जाता है । जब उसको एक बच्चा हो जाता है । तब वह छः पैरों का भौरा और दूसरे बच्चे के हो जाने पर आठ पैरों वाली वह मकड़ी हो जाता है । उस पर एक बच्चा यदि और हो गया तो वह बरसात का कीड़ा ग्वालिन जैसा हो जाता है । यही सब बन्धन है । आसक्ति के बन्धन में बंध जाता है । यही प्रसङ्ग का पाश है । इस पाश से संसार के लोग बँधे हुए हैं ।

आप यहाँ बैठे कथा सुन रहें हैं । कथा का अनुभव हो रहा है । लेकिन जैसे ही समय समाप्त होगा । आपको घर की याद आएगी और आप भागेगें घर की ओर । जिसको जो भी साधन मिलेगा वह उसी से भागेगा । क्या बात है ? कौन खींच रहा है ? किसने आपको पकड़ा है ? वही प्रेम का बन्धन है, जो घर की याद दिलाता है । मनुष्य दूर देश में चला जाता है । बहुत से मनुष्य भ्रमण करने के लिए विदेशों में चले जाते हैं । वहाँ रहने के लिए अच्छे-अच्छे होटल मिलते हैं, मकान मिलते हैं, लेकिन वहाँ भी अपनी झोपड़ी की याद आती है । अपने बच्चों की याद आती है । कब चलें और उनका प्यारा मुख देखें ।

यह आसक्ति का बन्धन है । महात्मा लोग कहते है-"मनुष्य के दो पैर होते हैं । घोड़े के चार पैर होते हैं । उसके अगले पैरों को भी बाँधा जाता है और पिछले पैरों को भी बाँधा जाता हैं । अगले पैर की रस्सी तो वह तोड़ लेता है लेकिन पिछले पैर की रस्सी वह नहीं तोड़ पाता क्योंकि वह उसको अपनी ओर खींचती है । यह बन्धन है ।

प्रसङ्गमजरंपाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

(श्रीमद्भागवत 3/25/20)

मनुष्य का मन ही उसके बन्धन और मोक्ष का कारण है । जब वह विषयों में आसक्त होता है, तब वह बन्धन का कारण हो जाता है और जब विषयों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनासक्त होता है तब वही मन मोक्ष का कारण हो जाता है । इन बन्धनों को कैसे छोड़ा जाय । आसक्ति का परित्याग मोक्ष का हेतु है । आसक्ति छूटती नहीं है इसे छोड़ना पड़ता है । इसे कैसे छोड़ा जाय यह विचार करने की बात है । काँटे से काँटा कटता है । यदि वह आसक्ति सन्त-महात्माओं के चरणों में हो जाये तो **"मोक्षद्वारमपावृतं"** मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है । महात्माओं के चरणों में यदि प्रेम हो जाये तो उनका दुर्लभ सत्संग करने का सुअवसर मिलेगा । वे सदैव भगवान् की परम पवित्र कथा का श्रवण करायेंगे । सहजता पूर्वक तत्त्वज्ञान करा देंगे, जिससे प्राणी भव-बन्धन से मुक्त हो जाएगा ।

जो संसार से प्रेम करेगा उसे संसार के लोग दिनोंदिन अपने आपमें बाँधते चले जायेंगे । आसक्ति का बंधन उसे और भी अधिक जकड़ लेगी । संत संगति मनुष्य के लिए मोक्ष का कारण है । अपने इस तत्व ज्ञान को आगे बढ़ाते हुए कपिलदेव जी अपनी मां से कहते हैं कि - 'जो संग दोष से रहित है, उनका तुम्हें संग करना चाहिए । वे तेरे संग दोष का निवारण कर देंगे ।'

देवहूति ने पूछा - 'प्रकृति और पुरुष दोनों का अविवेक संसार का कारण है । कदाचित् पुरुष ने प्रकृति से अपने आपको अलग कर ही लिया तो हम यह कैसे समझें कि यह प्रकृति फिर उसको बंधन में बाँध न लेगी?' भगवान् कपिलदेव जी बोले - 'एक बार जब कोई प्रकृति से अपने को मुक्त कर लेता है तो फिर प्रकृति के हाव-भाव से उसको मोह नहीं होता । जिसने इसके दोषों को देख लिया, भोगों को भोगकर इसका त्याग कर दिया वह अपने स्वरूप में स्थित हो गया । फिर उसका यह शोक नहीं रह सकता । जैसे आप दही को मथकर नवनीत को बाहर निकाल दें तो फिर वह नवनीत दही में मिल नहीं सकता । उसी प्रकार अनात्मा से आत्मा एक बार बाहर हो जाए तो फिर वह बंधन में नहीं आता ।'

इस प्रकार भगवान् कपिलदेव जी ने अपनी माता देवहूति को सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया । माता देवहूति के हृदय की ग्रन्थि खुल गई और वे अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गई । कुछ समय बाद अपनी माता को वहीं छोडकर भगवान कपिलदेवजी चले गये । एक बार तो माता के हृदय में कष्ट हुआ । क्योंकि इन्हीं के उदर से इनका जन्म हुआ था । सज्जनों का जब वियोग होता है तब दुःख होना स्वाभाविक है । परन्तु उन्होंने कपिलदेवजी के वचनों को ध्यान में रखा और उसमें वह प्रतिष्ठित होने लगीं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धीरे-धीरे उनको अपने देह का भान विस्मृत हो गया और जैसे कोई मदिरा मदांध को पता नहीं रहता कि कपड़ा शरीर पर है या नहीं, उसी प्रकार देवहूति को भी शरीर की विस्मृति हो गई । प्रारब्ध कर्म की समाप्ति होने पर देवहूति का शरीर उसी प्रकार शान्त हो गया और वह परमगति को प्राप्त हो गई जैसे कोई कपड़ा अपने आप शरीर से उतर जाता है ।

इस प्रकार कपिलदेवजी ने सांख्य शास्त्र का उद्धार किया । आगे कथा आती है कि प्रियव्रत तो विरक्त हो गये किन्तु उत्तानपाद ने कई वर्षों तक राज्य किया। उनकी दो पत्नियाँ थी । एक का नाम था सुनीति और दूसरी का नाम था सुरुचि । उत्तानपाद जीव हैं और सुनीति तथा सुरुचि दो स्त्रियाँ हैं । कहते हैं उत्तानपाद को सुरुचि बहुत प्यारी थी । सुनीति उतनी प्यारी नहीं थी । लोगों को नीति अच्छी नहीं लगती, रुचि अच्छी लगती है । आप देखते हैं आजकल के लड़के और लड़कियाँ माँ-बाप की हर बात मानेंगे लेकिन पोशाक के बारे में नहीं मानेंगे । उनकी जो रुचि है वही पहनेंगे । वह कपड़ा चाहिए, वह साड़ी चाहिए, वह पोशाक चाहिए जो उनको रुचता हो ।

संसार के लोग रुचि के पीछे चलते हैं, नीति के पीछे नहीं चलते । लेकिन आप यह समझ लीजिए जो सुनीति के पीछे चलेगा उसका परिणाम ध्रुव होगा और जो रुचि के पीछे चलेगा उसको उत्तम वस्तु की प्राप्ति तो होगी लेकिन वह अनित्य होगी ।

राजा उत्तानपाद को सुरुचि प्रिय थी । ध्रुव उसके ज्येष्ठ पुत्र थे । उत्तम कनिष्ठ पुत्र था । पर उन्होंने सुरुचि के कहने से सुनीति का त्याग कर दिया था। यह स्वाभाविक होता है । मनुष्य जब अपने मन की इच्छाओं के अनुरूप चलने लगता है तो फिर नीति का विचार नहीं करता । क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसका विवेक उसे नहीं रहता । वह सुरुचि को लेकर ही सिंहासन पर बैठे थे । ध्रुव जी बेचारे बालकों के साथ खेलते-खेलते जब राजा उत्तानपाद के पास पहुँचे तो उन्होंने सोचा ये हमारे पिताजी हैं । हम भी इनकी गोद में बैठे । राजा ने उन्हें गोंद में लेने के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु सुरुचि ने जब उनकी ओर घूरकर देखा तो राजा ने हाथ खींच लिया । सुरुचि व्यंग के साथ बोली - 'अरे बेटे ! तू नहीं जानता कि तू राजकुमार होता हुआ भी दूसरी स्त्री से उत्पन्न हुआ है । इसलिए तू राजा के आसन पर बैठने का अधिकारी नहीं है । यदि उत्तम की तरह राजा के आसन पर बैठना ही चाहता है तो तू तपस्या करके भगवान् की आराधना कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तू उस आराधना से भगवान् को प्रसन्न करके मेरी कोख से जन्म ले । तभी तुझे यह आसन मिल सकता है । ध्रुवजी म्लान मन से वहाँ से लौटे । माता सुनीति ने देखा कि मेरा बेटा उदास है । वह उनसे पूछ बैठी - 'मेरे लाल ! तू उदास क्यों है?' जैसे ही माता ने सहानुभूति पूर्वक उनसे पूछा, वह सिसक-सिसक कर रोने लगे । वे बालक जो उनके साथ में खेल रहे थे, उन्होंने बतलाया - 'राजा ने इनको गोद में नहीं बैठाया और सुरुचि माता ने इनको वाक्य बाण से आहत कर दिया ।' यह सुनकर सुनीति भी धैर्य छोड़कर रोने लगी । अपने दुःख का पार उन्हें दिखाई नहीं पड़ रहा था । अन्त में उन्होंने ध्रुव को सान्त्वना देते हुए उनके आँसू पोछे और कहा - 'बेटा ! तेरी विमाता ने चाहे जिस भाव से कहा हो । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष युक्त अपना कल्याण चाहने वाले को भगवान् के चरण कमलों की सेवा करनी चाहिए । ब्रह्मा जी ने जिस ब्रह्मपद को प्राप्त किया था वह उन्हें भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त हुआ है । जाओ बेटा तुम भी उस भगवान् का ही भजन करो ।'

ध्रुव ने अपनी माता को प्रणाम किया और वन की ओर चल दिये । मार्ग में उन्हें नारद जी मिले । उन्होंने उस बालक को बहुत कुछ समझाया, बुझाया और कहा । 'चलो लौटो, हम उत्तानपाद से तुम्हारा आदर करवायेंगे ।'पर ध्रुव जी ने कहा 'अब हमें किसी से कुछ लेना ही नहीं है । जो कुछ लेना ही है वह तो केवल भगवान् से ही लेंगे ।' यह सुनकर नारदजी ने उनको उपदेश दिया। ध्रुव जी वहाँ से पवित्र स्थान मधुवन मथुरा में चले गये । वहाँ उन्होंने यमुना में स्नान करके ध्यान किया फिर तपस्या में लग गये । द्वादशाक्षर मंत्र का जप करने लगे। तीन रात्रि तक उपवास करते रहे । उसके बाद छः-छः दिन के अन्तर से जल पीकर व्रत का पालन करने लगे । तीसरे महीने में बारह-बारह दिन के अन्तर से वायु भक्षण करके रहने लगे। क्षीण पत्रों का सेवन करके रहने लगे फिर वायुभक्षण करके रहने लगे । अन्त में वायु का भी त्याग कर दिया और सर्वथा कुम्भक कर लिया । इससे देवताओं का स्थान हिलने लगा । सबकी श्वांस रुकने लगी । तब सबके सब देवता ब्रह्मा के पास गये । ब्रह्मा उन सबको लेकर नारायण जी के पास गये और बोले - 'महाराज! ध्रुव बड़ी कठिन तपस्या कर रहे हैं ।' भगवान् ने कहा - 'ठीक है, हम ध्रुव की तपस्या रोक देते हैं ।' ध्रुव जी भगवान् श्रीमन्नारायणजी का ध्यान कर रहे थे । भगवान् उनके हृदय में जैसे साक्षात् विराजमान हो गये थे । वे आनन्द में विलीन थे । इतने में भगवान् गरुड़ पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बैठकर आए । ध्रुव जी ध्यान में मगन थे । उन्होंने भगवान् को देखा ही नहीं। भगवान् ने ध्रुव जी के हृदय में बसी अपनी आकृति को खींचा तब ध्रुव जी व्याकुल हो गये । वे आँखे खोलकर देखने लगे । देखा कि भगवान् गरुड़ पर बैठे सामने उपस्थित हैं । ध्रुव जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । उन्होंने भगवान् की स्तुति करनी चाही किन्तु वे पढ़े तो थे नहीं । तब भगवान् ने **'पस्पर्श बालं कृपया कपोले'** (श्रीमद्भागवत 4/9/4) अपने ब्रह्ममय शंख को बालक के कपोल से छुआ दिया तभी समस्त ज्ञान का भण्डार ध्रुव जी के हृदय में आ गया और वे भगवान् की स्तुति करने लगे -

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ (श्रीमद्भागवत 4/9/6)

जो भगवान् मेरे हृदय में आकर सोती हुई वाणी को जगा रहे हैं जो मेरे हाथ-पैर नाक-कान आदि सभी इन्द्रियों को सक्रिय कर रहे हैं और प्राणों का संचालन कर रहे हैं, मैं उन प्रभु को नमस्कार कर रहा हूँ । इस प्रकार ध्रुवजी ने भगवान् नारायण की स्तुति करते हुए कहा - 'हे प्रभो ! मेरे मन में कुछ कामना थी लेकिन अब कोई कामना नहीं है । आपकी भक्ति को छोड़कर मुझे अब कुछ नहीं चाहिए ।'

भगवान् बोले - 'मेरी आराधना व्यर्थ नहीं जाती । इसलिए छत्तीस हजार वर्षों तक तुम इस पृथ्वी पर रहकर राज्य का भोग करो । उसके बाद तुम मेरे धाम में जाओगे ।' इस प्रकार भगवान् ध्रुवजी को वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गये।

इधर नारद जी ध्रुवजी को उपदेश देकर उत्तानपाद के पास गये । राजा उत्तानपाद उदास बैठे थे । नारद जी ने उनसे पूछा -'राजन् आप उदास कैसे बैठे हैं' राजा ने कहा - 'महाराज ! मैं कितना निष्ठुर हूँ कि मैंने अपने बालक को उसकी माता सहित छोड़ दिया । सुनते हैं मेरा वह बालक जंगल में चला गया है । अब तक तो न जाने किसी भेड़िये, सिंह या व्याघ्र आदि ने उसको खा लिया होगा । इसी बात से चिन्तित होकर उदास हूँ ।' नारदजी बोले - 'राजन्! तुम्हारा बेटा भगवान् के द्वारा रक्षित है । इसलिए तुम उसकी चिन्ता मत करो । थोड़े ही दिनों में भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करके वह आएगा और तुम्हारे यश को दिग्दिगन्त में विस्तारित करेगा ।'ध्रुव जी लौटे । राजा उत्तानपाद, सुनीति एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुरुचि सहित सारा का सारा राज्य उमड़कर नगर के बाहर आ गया और उनका स्वागत करने के लिए खड़े हो गये ।

जापर कृपा राम कर होई । तापर कृपा करइ सब कोई ॥

(रामचरित मानस)

ध्रुवजी ने पहले सुरुचि को प्रणाम किया । उसके बाद माता सुनीति को प्रणाम किया । उन्होंने ऐसा क्यों किया ? इसलिए कि यदि माँ सुरुचि ने मुझे वाक्यबाण न मारा होता तो मुझे यह सौभाग्य नहीं मिलता । फिर उन्होंने गुरुजनों का अभिवादन किया । राजा उत्तानपाद उन्हें बड़े आदर से महल में ले गये और कुछ ही दिनों मे उन्हें राज्य सिंहासन पर बैठाकर वन को चले गये ।

उन्होंने वर्षों तक राज्य किया । भाई उत्तम गन्धर्वों द्वारा मारा गया । माता सुरुचि उसके वियोग में वन-वन भटकने लगी और अंत में दावानल से झुलस कर मर गई । ध्रुवजी ने उन गन्धर्वों से युद्ध किया । ब्रह्माजी ने उनको रोका। फिर वे अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं बदरीनाथ तपस्या करने चले गये। वहाँ देवता विमान लेकर आए और ध्रुवजी से कहा - 'आप इस पर बैठिए। ध्रुवजी विमान पर बैठने लगे तभी वहाँ मृत्यु आ गया । उसने कहा - 'महाराज! मेरे स्वीकार किये बिना आप स्वर्ग कैसे जाएँगे ?' ध्रुवजी बोले - 'अपना माथा झुकाओ ।' मृत्यु ने अपना माथा झुकाया । ध्रुवजी उसके माथे पर पैर रखकर विमान पर बैठ गये । यह मृत्यु है ।

मरन-मरन सब कोई कहै, मरन न जाने कोय ।
मरना वही सराहिए, फिर नहि मरना होय ॥ (स्फुट)

जो मरने पर अमृत तत्व का सोपान बन जाय ऐसी मृत्यु मरनी चाहिए जिससे कि मनुष्य को फिर नहीं मरना पड़े । यदि मृत्यु के बाद मरना पड़ेगा तो फिर जन्म लेना पड़ेगा । मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो पाएगी ।

मोक्ष को प्राप्त करके ध्रुवजी विमान सहित जब ऊपर जाने लगे तब उन्हें माता का स्मरण हो आया । उन्होंने विमान वालों से कहा - 'भाई विमान रोको हमारी माँ रह गयी है ।' वैमानिक बोले - 'नहीं महाराज ! जिसके कुल में भगवान् का भक्त उत्पन्न हो जाता है, उसकी इक्कीस पीढ़ी ऊपर की और इक्कीस पीढ़ी नीचे की तर जाती है । आपके माता का विमान ऊपर जा रहा है ।'

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुबर भगत जासु सुत होई ॥

(रामचरित मानस अयो.का.दो.74 के बाद चौ.1)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वही युवती पुत्रवती है, जिसका बेटा भगवान् का भक्त हो जाय । जिसका बेटा भगवान् का भक्त हो जायेगा, उसके माता-पिता तो वैसे ही तर जाते हैं । इस तरह ध्रुव जी का चरित्र पूर्ण हुआ और उनका वंश चलता रहा । उस वंश में 'अंग' नाम के राजा हुए । उनका पुत्र वेन हुआ । कहते हैं वेन अधर्म के वंश में जन्मा था । उसकी माता सुनीथा थी । वह अधर्म के वंश की थी । गर्भाधान के समय सुनीथा का ध्यान कहीं और था । इसलिए वह बालक दूषित और अधार्मिक हो गया । जब वह थोड़ा बड़ा हुआ तो साथ में खेलने वाले बालकों को नदी में डुबाने और कुएँ में फेंकने लगा ।

प्रजा ने राजा से कहा - 'महाराज जी ! आप अपने बेटे को समझाइए । वह प्रजा के बालकों के साथ अन्याय कर रहा है । राजा ने अपने बेटे को समझाया। लेकिन माँ से अधिक लाड़-प्यार मिलने पर बेटा बिगड़ता ही है । कोई भी पिता अपने बेटे का अनिष्ट नहीं चाहता । वह हमेशा चाहता है कि मेरा बेटा सन्मार्ग पर चले । दुराचारी न बने । अच्छे आचरण करे, कुसंग से बचे । किन्तु राजा अंग ने देखा कि मेरा बेटा एक तरफ हो गया है । यही एक हमारा बेटा है । रोकने पर भी यह अत्याचार से अलग नहीं हो रहा है । दुःखी होकर राजा एक रात राज्य छोड़कर ऐसे गये कि उनका पता ही नहीं चला । उन्होंने सोच लिया -

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥

(श्रीमद्भागवत 4/13/46)

सपूत से कपूत अच्छा है क्योंकि सपूत रहेगा तो उससे प्रेम रहेगा । संसार छूटेगा नहीं । कपूत होगा तो दिन में दस लात मारेगा और गाली देगा तो समझदार व्यक्ति इतने में ही समझ जायेगा और वह भगवान् की शरण में चला जाएगा ।

कुछ लोग तो ऐसे होते हैं कि चाहे कितनी ही लात लगे घर छोड़ना तो दूर और उसमें चिपकते ही जाते हैं ।

एक महात्मा बतला रहे थे - हम किसी नगर में गए । वहाँ बहुत से लोग सत्संग में आने लगे । उनमें एक बहुत अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्ति आते थे । वे अंग्रेजी और संस्कृत दोनों ही जानते थे । परन्तु उनके माथे पर बहुत से घाव थे हमने उनसे एक दिन पूछ लिया आपके माथे पर ये घाव कैसे हैं? वे रोने लगे। गाँव के लोगों ने बतलाया कि महाराज ! 'इनके चार बेटे और चार बहुएँ हैं। उन सभी बेटे-बहुओं का स्वभाव बहुत तेज है । यदि ये उनको कुछ बोलते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो वे बहुएँ इनकी खबर लेती हैं । वे बेलन से तो इनको न जाने कितनी मार मारती हैं । उसी मार के घाव हैं महाराज ।' महात्मा जी ने कहा -'भाई! ऋषिकेश, हरिद्वार, काशी, मथुरा, आदि सभी जगहों में हमारा आश्रम है । चलो हमारे साथ, यहाँ क्या पड़े हो ?' उसने कहा - 'चलेंगे महाराज ! महात्मा जी चलते समय बोले - 'चलो भाई चला जाय । उसने कहा - 'महाराज ! अभी तो विचार नहीं है । फिर कभी चलेंगे ।' महात्माजी ने कहा -'क्यों भाई क्या बात है ?' बहुत देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा -'महाराज ! काशी नरेश के कोई पुत्र नहीं था । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, कठिन तपस्या की लेकिन एक भी पुत्र नहीं हुआ । किसी दूसरे को गोद लेना पड़ा ।' महात्मा जी ने कहा - 'इससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?' उसने कहा - 'हम यह सोचते हैं कि यदि हमारा कोई नहीं होता तो हमें मारता कौन । इसलिए हम नहीं जाऐंगे । मार खाते हुए भी हम यहीं रहेंगे ।'

यह तो संसार की रीति है । किन्तु जो समझदार होते हैं वे चले जाते हैं । इसलिए अंग जो घर से निकले तो निकल ही गये । उनके जाने के बाद राज्य में अराजकता फैल गई । चोर-डाकुओं का उपद्रव बढ़ने लगा । लोगों ने वेन को राजा बना दिया । जब वेन ने राज्य सिंहासन को प्राप्त किया तब उसने अपने उग्रदण्ड से सभी चोर-डाकू आदि दुष्टों को दुरुस्त कर दिया । अब राज्य की व्यवस्था ठीक हो गयी, लेकिन यह कहा -**'न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।'** (श्रीमद्भागवत 4/14/6) अरे ब्राह्मणों आज से न यज्ञ करो, न दान करो, न हवन करो, बस केवल राजा की सेवा करो । जो हुक्म हम दे, उसी को मानो । यज्ञ, दान, तप आदि सब बंद होने लगे । तब एक बार ऋषि मुनियों का एक शिष्ट मण्डल वेन के पास गया और वेन को समझाया - 'राजन् ! हमारी बात सुनिये । हम कल्याण की अमृतमय बात बोल रहे हैं । आप भगवान् यज्ञ-पुरुष की यज्ञ के द्वारा आराधना कीजिए । आपका भी कल्याण होगा और प्रजा का भी कल्याण होगा । धर्म आचरण मनुष्य के कल्याण का हेतु होता है ।' वेन ने कहा - 'तुम सब मूर्ख हो -

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥

(श्रीमद्भागवत 4/14/23)

तुम बालिश हो । अधर्म को धर्म मानते हो, तुम उस स्त्री के समान हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो अपने पालन-पोषण करने वाले पति को छोड़कर दूसरे की उपासना करती हो।' वेन ने कहा - 'वह यज्ञ पुरुष कौन है ? मैं जो तुम्हारी रक्षा कर रहा हूँ। किसी दूसरे को ईश्वर मानने की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं ही ईश्वर हूँ ।'

ऋषि-मुनियों ने देखा यह तो अधर्म के मार्ग पर चल रहा है । उन्होंने हुंकार किया, जिससे वेन वहीं ढेर हो गया । वे ऋषि-मुनि वहाँ से चल दिये । उसकी माता सुनीथा ने उसकी लाश को तेल की नाव में डुबो कर रख दिया, इस आशा से कि जिन्होंने मारा है, वही जिला भी सकते हैं । राजा के बिना राज्य में फिर अराजकता फैलने लगी । बढ़ती हुई अराजकता को देखकर ऋषि-मुनि फिर आये। उन्होंने देखा कि राजवंश में से ही किसी को राजा बनाया जाए । वेन का शरीर पड़ा हुआ था । उन्होंने उसके जांघ का मंथन किया, उससे काला पुरुष उत्पन्न हुआ । उसने हाथ जोड़कर कहा - 'महाराज ! क्या आज्ञा है ?' उन्होंने कहा - 'निषीद ।' उसका नाम निषाद पड़ा । फिर उन्होंने वेन की भुजाओं का मंथन किया उसकी दाहिनी भुजा से महाराज पृथु उत्पन्न हुए एवं बायी भुजा से अत्रि का अवतार हुआ । उसके बाद एक सुन्दरी नारी उत्पन्न हुई । उन दोनों का विवाह हुआ । महाराज पृथु भगवान् के अंश थे । वे राज्य सिंहासन पर बैठे, परन्तु अवर्षण हो गया । प्रजा भूखों मरने लगी । वे धनुष-बाण उठाकर पृथ्वी को मारने दौड़ पड़े ।

आप सोचेंगे कि वे पृथ्वी को मारने क्यों दौड़ पड़े ? वह तो जड़ है । हम लोग यह मानते हैं कि प्रत्येक भौतिक वस्तु का एक अधिष्ठाता देवता होता है। जैसे गंगा एक नदी है । उसकी अधिष्ठात्री कोई एक देवी हैं । नर्मदा नदी है लेकिन उसकी भी कोई अधिष्ठात्री देवी है । जैसे हमारा यह शरीर बिना चेतन के नहीं रह सकता । चैतन्य निकल जाएगा तो यह गिर जाएगा । इसी तरह संसार की कोई भी भौतिक वस्तु बिना अपने अधिष्ठात्री देवता के नहीं रह सकती ।

इसलिए राजा पृथु ने पृथ्वी के उस स्वरूप को पकड़ा जो उसकी देवता थी। वह भागने लगी । लेकिन भागकर जाती कहाँ? उसी राजा पृथु की शरण में आ गयी और बोली -'महाराज ! मैं आपकी बेटी हूँ । आज से मैं आपकी बेटी कहलाऊँगी । आप हमको अपनी शरण में लीजिए । जो कुछ भी वस्तुएँ हैं जो अधर्म के कारण अथवा आपके पिता के कारण नष्ट हो गई थी, उनके लिए आप अब मेरा दोहन कीजिए ।' उपार्जन प्रारम्भ हुआ । महाराज पृथु ने धरती को बराबर किया । पहाड़ों को एक तरफ किया तब कृषि प्रारम्भ हुई, पशुपालन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रारम्भ हुआ, धंधे प्रारम्भ हुए । इस तरह यह संसार फिर से चलने लगा ।

उसके बाद महाराज पृथु ने यज्ञ प्रारम्भ किया । इस यज्ञ में भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया । उन्होंने भगवान् से यही वरदान माँगा 'महाराज ! हमारे दस हजार कान हो जाएं क्योंकि दो कानों से आपकी कथा सुनकर तृप्ति नहीं होती । हम आपकी कथा सुनते ही रहें । हमें आप ज्ञान का उपदेश दीजिए ।' उन्होंने कहा- 'सनत्कुमार तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे ।'

एक दिन महाराज पृथु के पास सनत्कुमार आए । उन्होंने सनत्कुमारों का स्वागत किया । उसके बाद महाराज पृथु ने उनसे पूछा -'महाराज ! हम आपसे क्या प्रश्न करें ?' उन्होंने कहा कुशल प्रश्न । महाराज पृथु ने कहा - 'हम अपने लिए क्या बताएँ संसार की तृष्णाओं के कारण हम स्वयं पतन की ओर जा रहे हैं । आप आत्माराम है । आपसे कुशल प्रश्न करना भी बेकार है, क्योंकि आपके मन की वृत्ति कुशल या अकुशल की है ही नहीं । इसलिए आप हमारे कल्याण की बात बताइए ।' सनत्कुमारों ने उनको बतलाया - 'राजन् ! सबसे पहली बात तो यह है कि मनुष्य कुसंग से दूर रहे । संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं । एक होते हैं अर्थाराम तो दूसरे होते हैं इन्द्रियाराम । अर्थाराम वे होते हैं जो पैसे को ही सब कुछ समझते हैं । उनके पास यदि कोई बैठे तो पैसा कैसे कमाया जाय केवल इसी की चर्चा करेंगे । जिसके पास पैसा नहीं है उसकी वह निंदा करेंगे। ऐसे लोगों के पास बैठने से धन की तृष्णा ही बढ़ेगी । जो इन्द्रियाराम हैं वे इन्द्रियों के विषय-भोगों को ही सब कुछ समझते हैं । ऐसे लोगों के पास बैठोगे तो क्या खाया जाय, क्या पहना जाय आदि शौक की ही बातें होंगी ।

इसलिए अर्थाराम और इन्द्रियराम की गोष्ठी में न रहे और उनके द्वारा जो अभिलषित वस्तु है उनका भी त्याग कर दे। एकांत में बैठे । एकांत में बैठने पर अपने को अपने स्वरूप का ध्यान आता है अन्यथा हम अपने को, अपने आप को दूसरों की नजर से देखते हैं । जब तक हम दूसरों की नजर से देखते रहेंगे, तब तक हमें अपने स्वरूप का अपनी वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलेगा । जब हम एकान्त में बैठेंगे तब हमें पता चलेगा कि हम कौन हैं । इसके विचार का अवसर मिलेगा । इन्द्रियों को अपने वश में रखें । विषयों से विमुख रहे । महापुरुषों के पास बैठकर ब्रह्म का चिन्तन करे। उन्हें भगवान् की सूक्ष्म गति सहज में प्राप्त हो जाती है । इस प्रकार सनत्कुमारों ने महाराज पृथु को उपदेश दिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और चले गये । महाराज पृथु भी अपने पुत्र को सब कुछ देकर विरक्त हो गये।

इसी वंश में प्राचीनबर्हि नाम के राजा हुए । उन्होंने पूर्व दिशा तक यज्ञ की झड़ी लगा दी थी । जगह-जगह कुश बिछा दिया था । इसलिए उनका नाम प्राचीनबर्हि हो गया था । वैसे बर्हिष्मान उनका नाम था । वे कर्म में ही लगे रहते थे । यह नियम है कि कर्म एक सीमा तक मनुष्य का कल्याण करता है, उसके पश्चात् कर्म का भी त्याग करना पड़ता है ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगरूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 6/3)

जो व्यक्ति योग में आरूढ़ होना चाहता है उसके लिए कर्म साधन है और जब वह योगारूढ़ हो जाता है तब उसका साधन शम माने कल्याण हो जाता है। हम यह कैसे समझें कि हम योगारूढ़ हो गये हैं । इसके लिए बतलाया है -

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 6/4)

जब इन्द्रियों के विषयों और कर्मों में आसक्ति न हो तब सभी प्रकार के सङ्कल्पों का परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि वह योगारूढ़ हो गया । अब यदि कर्म में ही लगे रहते तो कर्म का फल सीमित होगा । सीमित कर्म का फल सीमित होता है । असीमित नहीं हो सकता । इसलिए श्रुति का सिद्धान्त उपनिषदों में इस प्रकार बतलाया गया है -

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'

(महानारायणोपनिषद् 8/14)

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् ।

(मुण्डकोपनिषद् 1/2/12)

कर्म से होने वाली लोकों की परीक्षा करके ब्राह्मण अर्थात् जिज्ञासु वैराग्य को प्राप्त करें और यह समझे कि मोक्ष कर्म से नहीं मिल सकता । मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से ही हो सकती है कर्म से नहीं। कर्म का तो केवल इतना ही कार्य है कि वह हमारे अन्तःकरण को शुद्ध कर देता है । अन्त में मुमुक्षा और तत्व की जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है, परमात्मा कों जानने की उत्कृष्ट उत्कण्ठा ही जिज्ञासा है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिज्ञासा वह है जिसके बिना रहा ही न जाए । जैसे कोई व्यक्ति वैद्य के पास जाय और कहे - 'वैद्य जी हमें ऐसी दवा दीजिए कि भूख लगने लगे । भूख का संस्कृत होता है - **'बुभुक्षा'** भोक्तुम् इच्छा अर्थात् खाने की इच्छा ही बुभुक्षा है ।

वैद्य तर्क करेगा यदि बुभुक्षा न होती तो दवा लेने क्यों आते । वह कहेगा- हमको ऐसी इच्छा नहीं होती कि बिना खाए न रहा जाय । इस प्रकार की जिज्ञासा अपने मन में होनी चाहिए । लेकिन केवल निर्मल मन में ही ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न होगी और मन की निर्मलता कर्म से होगी । उन बर्हिष्मान को उपदेश देने के लिए नारदजी पधारे । जहाँ बीज अच्छा होता हैं वहाँ बीज वपन करने के लिए किसान आ ही जाता है । जहाँ योग्य अधिकारी होता है उसे तत्व ज्ञान देने वाले सद्गुरु की प्राप्ति अवश्य हो जाती है । उस पर भगवान् कृपा कर देते हैं ।

नारद जी पहुँचे और उन्होंने कहा कि 'राजन् ! तुम यज्ञ कर रहे हो । यज्ञों में पशुओं की हिंसा हो रही है । तुम जरा आकाश की ओर देखो । जब राजा ने आकाश की ओर देखा तो उन्हें बड़े-बड़े सींग वाले पशु ही पशु दिखलाई पड़े। नारद जी ने कहा 'वे सब तुम्हारे मरने की बाट जोह रहे हैं । जब यह राजा मरकर इस रास्ते आए तब उसे अपने सींग से वेध-वेध कर उससे अपना बदला लें । यह सुनकर राजा बर्हिष्मान डर गया और नारदजी से बोला ' महाराज ! अब आप बताएँ हम क्या करें । तब नारद जी ने उन्हें एक आख्यान सुनाया -

आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ।
तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥

(श्रीमद्भागवत 4/25/10)

'हे राजन् ! पुरञ्जन नाम का एक बहुत विख्यात राजा था । उसका अविज्ञात नाम का एक सखा था । यह पुरञ्जन कौन है ? अविज्ञात कौन है ? हम लोग इसे जरा समझ लें । यह कथा किसी वाचक की नहीं है बल्कि आपकी है ।

पुरञ्जनः स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयति इति पुरञ्जनः जीवः । अपने कर्मों से जो शरीररूपी पुर को उत्पन्न कर दे उसका नाम पुरञ्जन है । 'अविज्ञात' **न विज्ञातं चेष्टितं यस्य सः अविज्ञातः ।** जिसकी चेष्टा क्या है ? वह कब क्या करना चाहता है ? जिसको कोई न जान सके, उसका नाम अविज्ञात है ।

भगवान् कब क्या करना चाहते हैं ? यह किसको पंता है ? इसलिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अविज्ञात पुरञ्जन एक दूसरे के सखा हैं । दोनों बराबर साथ रहते थे ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

(मुण्डकोपनिषद् 3/1/1)

दोनों सुपर्ण हैं । दोनों संयुक्त हैं । एक दूसरे से मिले हुए हैं । सखा हैं। एक ही देश में एक ही वृक्ष की टहनी में रहते है । दोनों एक जाति के हैं । बस दोनों में अन्तर इतना है । एक इस संसार के वृक्षों के फलों को खाता है । दूसरा बिना खाए रहता है । बिना खाए रहने वाला अविज्ञात और फल खाने वाला पुरञ्जन है ।

एक बार पुरञ्जन के मन में भावना आई कि हम इस संसार का जरा अवलोकन करें, थोड़ा घूम फिर लें । पुरञ्जन अपने सखा अविज्ञात को छोड़कर संसार में भ्रमण करने लगा । भ्रमण करते-करते हिमालय की दक्षिण दिशा में एक स्थान पर गया, जहाँ बहुत सुन्दर एक बगीचा था । सुन्दर वृक्ष थे । जिन पर सुन्दर-सुन्दर फल-फूल लगे थे । सुन्दर-सुन्दर लताएँ थी । हरी-हरी घास थी । वहाँ हिरन कूदते-फाँदते घूम फिर रहे थे । उस बगीचे में बैठकर पुरञ्जन को बहुत आराम मिला । इतने में उसने देखा कि एक बहुत सुन्दर सी नारी चली आ रही थी । उस नारी के आगे-आगे पाँच फणों का एक सर्प चला आ रहा था। उस नारी के साथ ग्यारह सैनिक भी थे और उस नारी के साथ में उसकी ग्यारह सखियाँ भी चली आ रही थी ।पुरञ्जन उस नारी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया। उसने उस नारी से पूछा - 'तुम कौन हो? किसकी हो? ये कौन है? और तुम क्या करना चाहती हो?' वह बोली यह सर्प मेरा रक्षक है । ये मेरे द्वारपाल हैं और ये सभी मेरी सखियाँ हैं और मेरे सखा हैं । यहाँ पास में ही एक पुरी है वहाँ मैं निवास करती हूँ । मैं यह नहीं जानती कि मैं किसकी हूँ और कहाँ से आयी हूँ । यदि तुम्हारा मन हो तो चलकर मेरे साथ पुरी में रहो और संसार का सुख-भोग भोगो।'

पुरञ्जन उसके रूप को देखकर उस पर मुग्ध हो गया था । उसके साथ पुरी में चला गया । उस पुरी में नौ दरवाजे थे । सात दरवाजे ऊपर थे और दो दरवाजे नीचे थे । उस पुरी में पुरञ्जन, पुरञ्जनी के साथ रहने लगा । वह घूमने के लिए कभी-कभी बाहर भी जाता था । उस पुरञ्जन पुरी के दो दरवाजे पूर्व की ओर थे । उनका नाम था खद्योत और आविर्मुखी । पुरञ्जन इनमें द्युमान् नाम के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सखा के साथ विभ्राजित नगर भ्रमण करने जाता था । नलिनी-नालिनी नाम के जो दो द्वार पूर्व में ही थे, जिनके द्वारा वह अवधूत नाम के सखा के साथ सौरभ नाम के देश में भ्रमण करने जाता था । इसी दिशा में मुख्या नाम का एक द्वार था उसमें होकर वह रसज्ञ और विपण के साथ वहूदन और आपण देशों में जाता था । पुरी के दक्षिण एक पित्रहू नाम का दरवाजा था, उससे वह दक्षिण पांचाल को जाता था । उत्तर की ओर देवभू नाम के दरवाजे से वह श्रुतधर नाम के सखा के साथ उत्तर पांचाल को जाता था । पश्चिम दिशा में आसुरी नामक दरवाजे से दुर्मद के साथ ग्रामक को और निर्ऋति द्वार से लुब्धक के साथ वैशस देश को जाता था । आपण और बहुधन नाम के दो मुख्य दरवाजे थे, जिससे वह दो देशों में जाता था । इसी तरह दो दरवाजे नीचे थे । इनमें से जाते हुए वह अनेक प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव करता था । कुछ समय बाद उसकी संताने होने लगीं । पुरञ्जनी से उसकी सौ सन्तानें हुई । आगे चलकर एक-एक संतान के दस-दस सन्तानें हुईं और उन सबके भी कई सन्तानें हुईं ।

इस तरह पुरञ्जन के संतान से वह पुरी भर गई । एक बार पुरञ्जन आखेट के लिए निकला । वह आखेट को जाने के लिए जिस जिस रथ पर बैठा उस रथ में पाँच घोड़े लगे थे । उसका एक सारथी था । उस रथ में बैठकर वह चला। पांचाल देश में पहुँचकर उसने कई पशुओं का वध किया । वह लौटकर जब पुरी में आया तो उसने देखा कि पुरञ्जनी घर में नहीं है । उसने दासियों से पूछा- 'रानी कहाँ है? दासियों ने उत्तर दिया -'महाराज ! वे तो कोपभवन में हैं ।' यह सुनकर पुरञ्जन कोपभवन में पुरञ्जनी के पास पहुँचा । उसे प्रेमपूर्वक मनाने लगा और कहा -'मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ । वे सेवक धन्य हैं, जिनके स्वामी सेवक पर रुष्ट होते हैं तो उसे दण्ड देते हैं वे जिनको दण्ड न दें वे अभागे हैं इसलिए तुम मुझे दण्ड दो, जो अपराध मुझसे हुआ है, उसका दण्ड देकर मुझे क्षमा करो।' उसने बड़ी दीनतापूर्वक पुरञ्जनी को मनाया । अब तो वह अत्यधिक रूप से उसके वश में हो गया था । पुरञ्जनी के खा लेने पर वह खाता था, उसके पी लेने के बाद वह कुछ पीता था । उसके बैठने के बाद वह बैठता था । उसके उठने के बाद वह उठता था । उसके सोने के बाद वह सोता था, उसके हँसने पर वह हँसता था । उसके रोने पर वह रोता था । पुरञ्जनी जो जो चेष्टा करती थी वही वही चेष्टा पुरञ्जन करता था । वह यह भूल गया था कि हम कहाँ से आए हैं और किसलिए आयें हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इधर काल की एक कन्या थी, जिसका नाम जरा था । वह तीनों लोक में अपना वर खोजती फिर रही थी, वह नारद जी से मिली । नारद जी से उसने कहा 'आप मुझसे विवाह कर लो ।' जरा माने बुढ़ापा और बुढ़ापा को कौन चाहे। लेकिन वह नारदजी से बोली - 'आप हमारा वरण करो ।' नारद जी बोले हम तो ब्रह्मचारी हैं ।' उसने कहा -'नहीं तो जाओ! तुम एक जगह टिक ही नहीं सकोगे नारदजी बोले - 'भागो ।' वह भागी और गंधर्वों के अधिपति के पास गई । उस अधिपति का नाम भय था । उसकी तीन सौ साठ पुरुषों और तीन सौ साठ स्त्रियों की सेना थी । उनमें से आधी काली स्त्रियाँ थी और आधी गोरी स्त्रियाँ थी । वह जरा उस गंधर्व अधिपति भय के पास गयी और उससे बोली - 'आप हमें अपनी स्त्री बना लो ।' उस भय ने कहा- 'नहीं, **मम ज्वारोऽयं भ्राता त्वं च मम भगिनी भव**'। यह प्रज्वार मेरा भाई है, तुम मेरी बहन बन जाओ। तुम तीनों मिलकर लोक में जाओं, वहाँ जो जो तुम्हें अच्छा दिखे, उसी को चरो, उसी को पकड़ो।' वह चली गयी । उस गंधर्व अधिपति की तीन सौ साठ पुरुषों और तीन सौ साठ स्त्रियों की सेना आगे चल पड़ी । चलते-चलते पुरञ्जन पुरी पर आक्रमण कर दिया । पाँच फणों वाला वह सर्प उस सेना के आक्रमण से पुरञ्जन को बचा रहा था । पुरञ्जन को होश ही नहीं रहा कि हमारी नगरी पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है । होश आने पर वह भी अपनी सेना सहित युद्ध करने लगा । वह उस बड़ी सेना से कहाँ तक बचता और उससे अकेला वह कहाँ तक युद्ध करता । वह लड़ता-लड़ता जर्जर हो रहा था । प्रज्वार सहित जरा वहाँ आ गयी । जरा ने उसके नगर को आक्रान्त कर लिया । माने उस पुरञ्जन के शरीर में बुढ़ापा आ गया । बुढ़ापे में कहीं ज्वर न चढ़ जाय ! यदि ऐसा हो गया तो भगवान् ही बचायें ।

इधर वह काल था जिसके वर्ण के अनुसार तीन सौ साठ दिन और तीन सौ साठ रातें उसकी आयु को क्षीण कर रही थी । वह पाँच प्राण फणों वाला सर्प, जो पांचभौतिक शरीर की रक्षा कर रहा था । प्रज्वार ने अन्त में उन सब में आग लगा दिया । जरा ने उन सभी दरवाजों को कमजोर कर दिया । सेना नगर के भीतर घुसने लगी। पुरञ्जन घबराया, अब क्या करें? लेकिन वह आसक्ति के कारण महल से बाहर नहीं निकल सका । पुरञ्जनी की ओर देखते देखते मारा गया । **अन्तकाले या मतिः सा गतिर्भवेत्** । अन्तकाल में जैसी मति होती है वैसी गति होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने बतलाया है -

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 8/6)

जिस-जिस भाव से भावित होकर प्राणी अपने कलेवर का त्याग करता है, उस भाव से भावित होकर वह उसी को प्राप्त हो जाता है । अपने उस अन्तिम भाव से भावित होकर पुरञ्जन ने दूसरे जन्म में विदर्भ देश के राजा के यहाँ कन्या के रूप में जन्म लिया । क्योंकि वह पुरञ्जनी का ही ध्यान करता हुआ मरा इसलिए उसे स्त्री का शरीर मिला । पाण्डु देश के राजा मलयध्वज के साथ उस कन्या का विवाह हुआ । वह कन्या अत्यधिक पतिव्रता थी । उसने अपने पति की खूब सेवा की । राजा ने कई वर्षों तक राज्य किया । उसके पश्चात् वह जंगल में तपस्या करने चला गया । उसके साथ वह भी जंगल में चली गयी । उस राजा ने तपस्या करते-करते अपने शरीर का त्याग कर दिया । राजा के शान्त शरीर को देखकर वह विलाप करने लगी - 'हाय! हे राजन् ! उठो उठो ! आपकी यह पत्नी पीड़ित होकर आपको पुकार रही है । आप उठिये । आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये ।' वह इस तरह करुण विलाप कर रही थी । इतने में उसका पुराना सखा वहाँ आया उसने कहा - 'अरे तू कौन है? किसकी है? यह कौन सो रहा है? जिसके लिए तू इतना शोक कर रही है । तुझे अपने सखा का पता है? जिसके साथ तू रहती थी? अरे सोच -

न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ।
न पतिस्त्वं पुरञ्जन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥

(श्रीमद्भागवत 4/28/60)

न तो तू विदर्भ राजा की कन्या है और न ही यह तेरा पति है । न तो तू पुरञ्जनी का पति था और न ही पुरी का स्वामी । हम तुम दोनों मन रूपी मानसरोवर के हंस हैं । जो विद्वान् होते हैं वे हममें और तुममें कोई भी अन्तर नहीं देखते।

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः ।
न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥

(श्रीमद्भागवत 4/28/62)

तुम मैं हो, मैं तुम हूँ, विद्वान् हममें तुममें भेद नहीं देखते ।' इस प्रकार वह मानस हंस उस हंस के द्वारा प्रतिबोधित हो गया और अपनी परमगति को प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गया । हे मन ! हमने परोक्ष में यह आख्यान तुम्हें बतलाया है क्योंकि **परोक्ष-प्रिया इव हि देवाः** (बृहदारण्यक 4/2/2) अर्थात् देवता परोक्षप्रिय होते हैं । प्रत्यक्ष के द्वेषी होते हैं। इस स्पष्ट अर्थ को नारदजी ने इस प्रकार बतलाया है-

पुरञ्जन जीव है, ईश्वर अविज्ञात है । इस नगरी में पुरञ्जन बुद्धिरूप पुरञ्जनी के साथ रहता है । इस शरीर में पाँच प्राण की पाँच वृत्तियाँ हैं । प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान ये ही पाँच फणों का सर्प हैं जो शरीर की रक्षा कर रहा है। चन्द्रदेव नाम का गन्धर्वपति वर्ष है, काल है । उसी की वह सब सेना है जो दिनोंदिन आयु को क्षीण कर रही है । यह जीव आखेट खेलने जाता है का अर्थ यह है कि यह जीव संसार का भोग भोगने के लिए जाता है । दरवाजे पर लगी खद्योताविर्मुखी इसकी दो आँखें हैं । नलिनी-नालिनी नाक हैं, जिससे यह गंध सूँघता है । यह दक्षिण कान से पृथ्वी लोक और बाएँ कान से देवलोक में जाता है । वहाँ पितरों और देवताओं की कथा सुनता है । अपर्ण बहुजन इसका मुख्य द्वार है । इसके द्वारा वह भोजन करता है । स्वाद लेता है । रसज्ञ विपण इसके सखा हैं । इसकी जिह्वा रसज्ञ और इसकी वाणी विपण है । यह जिह्वा से स्वाद लेता है और वाणी से बोलता है । इसके नीचे दो दरवाजे हैं । जिससे वह मल-मूत्र का त्याग करता है । इस प्रकार यह जीव इस शरीर रूपी नगरी में बस जाता है। यह अपनी बुद्धि के वश में ऐसा हो जाता है कि बुद्धि के कर्मों को, बुद्धि की चेष्टाओं को अपनी चेष्टा मान लेता है, उसके खा लेने पर खाना, पी लेने पर पीना, सोने पर सोना, जागने पर जागना, उठने पर उठना आदि चेष्टायें करता रहता है। जबकि आत्मा न खाता है, न पीता है, न चलता है न फिरता है न उठता है। यह कुछ भी नहीं करता । वह तो एक रस है । अविचल है । लेकिन बुद्धि के धर्मों में यह जीव अपने आपको आरोपित कर देता है और उसी के कारण वह बंधन में पड़ता है ।

जब जन्मजन्मान्तर में अपने धर्म का पालन करते हुए जीव का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, तब उसे अविज्ञात नाम का सखा रूप सद्गुरु प्राप्त हो जाता है । वह जीव को उसके स्वरूप का बोध करा देता है । इससे वह उससे मिलकर एक हो जाता है ।

आगे नारद जी ने कहा - 'बर्हिष्मान् ! हमने ये सभी बातें तुम्हें गुप्त रूप में समझाया है । यह कथा किसी और पुरञ्जन की नहीं है । यह तो तुम्हारी कथा है । यह पूरी कथा तुम्हारे ऊपर घटती है । इसे तुम अच्छी तरह से समझ लो।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने इसके आगे भवाग्नि का वर्णन किया - 'एक जीव रूपी बनिया सामान लेकर व्यापार करने चला । वह घोर जंगल में पहुँचा । वहाँ उसे छः डाकुओं ने घेर लिया और उस पर हमला बोल दिया । जिस-जिस वस्तु को वह बचाना चाहता था, उस-उस वस्तु को वे डाकू छीन ले रहे थे । अन्त में वह उनसे किसी तरह छूट करके भाग निकला । वह जंगल में भटकता रहा । सर्पों, व्याघ्रों आदि हिंसक जन्तुओं की आवाज को सुनकर भयभीत हुआ । वह जंगल में भटकते-भटकते एक अंधेरे कुएँ में गिर पड़ा ।

वहाँ उसके हाथ में एक पेड़ की जड़ आ गयी । वह रात भर उसी से लटका पड़ा रहा । दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ तब उसने देखा कि जिस जड़ को हम पकड़े हैं, उसको दो चूहे काट रहे हैं । उनमें एक काला है और दूसरा सफेद है और यह कुआँ सूखा हुआ है । नीचे एक बहुत भयंकर काला सर्प फन उठाये बैठा है । वह उसके गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है कि यह जैसे ही गिरे, वैसे ही उसे हम काट खाएँ । वह बनिया भूखा था । ऊपर मधु का एक छत्ता था, जिसमें से मधु टपक रहा था । उसने अपनी जीभ आगे किया । मधु की एक बूँद उसके जीभ पर गिरी । उसने उस बूँद को चाट लिया । इसी तरह वह दूसरी, तीसरी बूँद की प्रतीक्षा में रहा । इतने में चूहों ने जड़काट दिया और वह नीचे गिर पड़ा। अन्त में उस सर्प के द्वारा काटे जाने पर उसकी मौत हो गई ।

यह तो दृष्टांत रहा । दार्ष्टान्त यह है कि यह जीव बनिया है । वह सद्गुणों का सामान लेकर संसार में आया था कि यहाँ से मोक्ष रूपी लाभ लेकर हम जायेंगे। परन्तु काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर इन छः शत्रुओं ने इस संसाररूपी जंगल में उसे घेर लिया तथा इसके सभी सद्गुणों को हर लिया । यह जीव संसार में भटकने लगा । दुर्जनों के वचनों को सुनकर यहाँ-वहाँ भटकता-भटकता गृहस्थ-आश्रमरूपी सूखे कुएँ में लटक गया । जब सत्संग रूपी सूर्य का उदय हुआ, तब उसने देखा कि हम जिस आयुरूपी जड़ को पकड़े हुए हैं, उसे रात-दिन रूपी दो चूहे कतर रहे हैं । उनमें दिनरूपी सफेद चूहा और रात्रिरूपी चूहा काला है । नीचे गृहस्थी रूपी कुएँ में मृत्यु रूपी सर्प फन उठाए जीव की प्रतीक्षा कर रहा है । आयु दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है । इसको जानते हुए भी वह जीव विषयरूपी मधु की प्राप्ति में सब भूल जाता है, और अन्ततः मृत्यु के सामने जा गिरता है, जहाँ मृत्युरूपी सर्प के काटे जाने पर मृत्यु को प्राप्त होता है । इस प्रकार नारदजी ने उसे ज्ञान की बातें समझाईं, जिसको जान बर्हिष्मान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को ज्ञान हो गया । वह संसार को छोड़कर परमार्थ की ओर अग्रसर हो गया। बस आज इतना ही कहकर प्रवचन पूर्ण करते हैं ।

श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय ।
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2

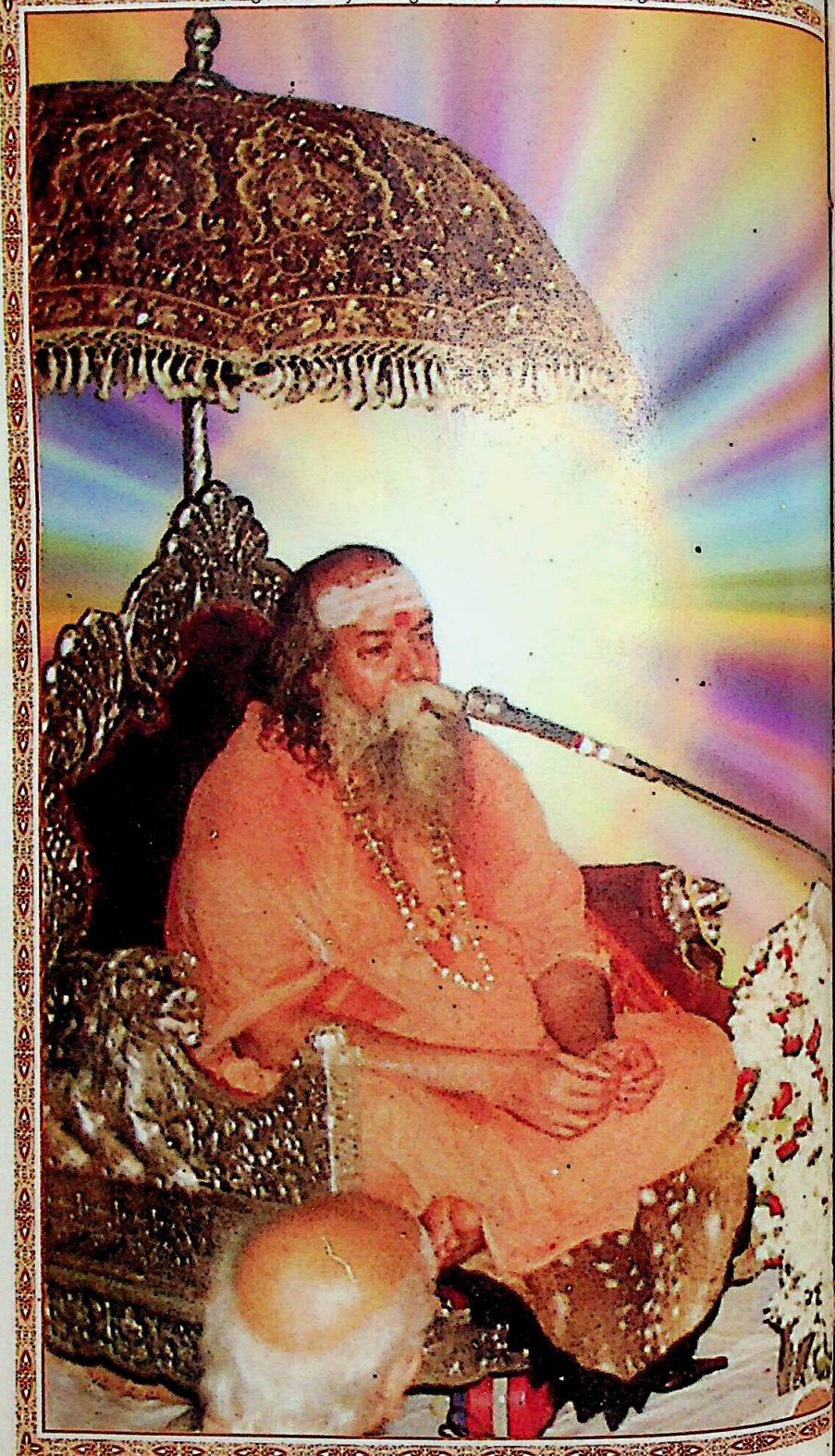

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचम-दिवस

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो एवं सज्जनो !

जिन संस्कारों की बातों से हमारे अनुचित संस्कार उद्बुद्ध (उत्पन्न) हो जायँ तथा हम कुमार्ग में जाने लग जाएँ, ऐसे कुसंग से हमें बचना चाहिए और नित्य सत्संग करते रहना चाहिए। सत्संग से पहला लाभ तो यही होता है कि जितनी देर तक सत्संग करते हैं, उतनी देर तक के लिए हम कुसंग से बचे रहते हैं।

आप यहाँ बैठे है। अपने घर में होते तो न जाने कौन-कौन सी चर्चाएँ होंतीं। किसी न किसी की बात तो होती ही। यहाँ बैठने पर इतना तो लाभ हुआ कि उतनी देर तक कुसंग नहीं हुआ सत्संग ही हुआ। वृषभदेव जी ने महात्माओं का संग और उनके लक्षण बतलाये। सत्संग करने से पहले मनुष्य को समझ लेना चाहिये कि हम किसका संग कर रहे हैं। कभी-कभी धोखा भी हो जाता है। लोग धोखे में नशा करने वालों का भी सत्संग करने लगते हैं।

एक बार हम नर्मदा नदी के किनारे घूम रहे थे। सायंकाल हो चला था। हम घूमते हुए आगे बढ़े। देखा कि दो आदमी गाँजा पी रहे थे। उनमें एक साधू था और एक गृहस्थ था। हमने उनसे पूछा - 'क्या कर रहे हो?' उन्होंने कहा - 'हम सत्संग कर रहे हैं।' नशा करना ही उनका सत्संग है। यदि नशा करना ही है तो भगवान् की भक्ति का नशा करो। भगवच्चर्चा का नशा लगाओ। वही नशा वास्तविक नशा है। लेकिन हम सबकी यह हालत है कि इस पर हम लोग विचार ही नहीं करते। लोक में एक कहावत है - **पानी पीए छान, गुरु करे जान**। इसे हमलोगों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये।

आषाढ़ का महीना था। जामुन पके हुए थे। एक जामुन के पेड़ के नीचे बैठकर एक आदमी पके हुए जामुन, जो जमीन पर गिरे पड़े थे, उन्हें उठा-उठा कर खा रहा था। उसे बड़ा स्वाद मिल रहा था। जल्दी-जल्दी में जामुन के साथ एक भौंरा उसके मुँह में चला गया। जब उसने भौंरे को दाँत से दबाया, वह भौंरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चें-चें करने लगा। बेचारा जीवित था। जामुन खाने वाले उस आदमी ने कहा - 'तुम चें करो चाहे में, हम काला-काला एक नहीं छोड़ेंगे' । अपने भारत के लोगों की यही आदत है। जो भी आया हम उसी के पीछे लग जाते हैं, चाहे किसी की भी बात सुनने लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सन्मार्ग का पता ही नहीं लगता कि कौन सा सन्मार्ग है और सन्मार्ग पर कैसे जाया जाय। वर्षा ऋतु में मार्ग घास से ढक जाते हैं। उसी प्रकार इस घोर कलिकाल में सन्मार्ग ढक गया है। पता ही नहीं चलता कि कौन सा अच्छा मार्ग है। हमें अपने वैदिक मार्ग पर चलना चाहिये।'

भरत जी भगवान् श्रीराम के पास जाना चाहते थे। उन्होंने भारद्वाज जी से पूछा - 'महाराज! भगवान् श्रीराम कहाँ हैं और वे कैसे मिलेंगे?

भारद्वाज जी ने कहा - 'हम अपने शिष्यों को आपके साथ कर देते हैं।' उन्होंने शिष्यों को बुलाया । पचासों शिष्य वहाँ आ गये । उन सबका श्रीराम पर प्रेम था । अतः सबके सब शिष्य कहने लगे -

सबन्हि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं मग दीख हमारा।'

(श्रीरामचरितमानस अयो.का. दो.108 के बाद चौ.4)

अर्थात् चित्रकूट का रास्ता हमारा देखा हुआ है ।' लेकिन भरत जी ने उनमें से चार शिष्यों को लिया और शेष को लौटा दिया । इसका मतलब यह हुआ कि उन्होंने चार वेदों को अपना मार्ग दर्शक बनाया और अन्य दूसरे पंथों को छोड़ दिया।

इस प्रकार जड़भरत जी को मुख्य बनाकर उन्होंने सारे प्रजाजनों को उपदेश दिया । राजर्षि भरत जी ने बहुत ही अच्छा शासन किया । उनके सौ भाइयों में से इक्यासी भाई कर्मकाण्ड में निरत हो गये । नौ भाई योगीश्वर हो गये। उन्होंने अन्य दूसरे भाइयों को दूसरे राष्ट्र दे दिये । स्वयं भारतवर्ष के सम्राट् होकर पुत्रवत् प्रजा का पालन करने लगे ।

अन्त में उन्होंने भी अपने पुत्र को राजसिंहासन देकर वैराग्य ले लिया। गङ्गाजी और गण्डकी के संगम स्थल के एकान्त वन में कुटीर बनाकर भगवान् का भजन करने लग गये । भगवान् के भजन-ध्यान में वे एकाग्रचित्त होने लगे। परन्तु अच्छे मार्ग पर चलने पर अनेक विघ्न आ जाते हैं । माया ही इस प्रकार के विघ्नों को उत्पन्न करती है ।

छोरत ग्रंथि जानि खगराया । विघ्न अनेक करहिं तब माया॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई॥
कल-बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी। तिय तन चितवत अनहित जानी॥

(श्रीरामचरितमानस उ.का. दो.117 घ के बाद चौ.6-9)

जब मनुष्य की जड़-चेतन की ग्रंथि के खुलने का अवसर आ जाता है, तब माया अनेक प्रकार के विघ्न उत्पन्न करती है । ऋद्धि-सिद्धि आती है और फिर वे अनेक प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न करती हैं । माया कई प्रकार से मनुष्य के मन को साधना से विचलित कर देती है ।

माया के अनेक रूप होते हैं । दया भी एक माया है । दया से भी प्राणी बँध जाता है ।

एक योगी थे । वे भ्रमण कर रहे थे । मार्ग में उन्होंने देखा कि एक स्त्री हाथ में सोने की लगाम लेकर घूम रही है । योगी ने उससे पूछा - 'यह लगाम किसलिये ले रखी हो?' वह बोली - 'बहुत बड़े-बड़े ज्ञानी और योगी दिखाई देते हैं । उनके मुँह में लगाने के लिये मैंने यह लगाम ले रखी है ।' वे योगी भी एक योगी ही थे । वे बोले - 'क्या मुझे भी लगाम लगाओगी ?' वह बोली - 'महाराज! आपके लिये विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ेगा ।' वे बोले - 'तुम मुझे लगाम लगाओ तो जाने ।' वह बोली - 'देख लीजियेगा मैं आपको भी लगाम जरूर लगाऊँगी ।'

एक दिन वे योगी अपनी कुटी से निकलकर सामने की नदी में स्नान करके घाट पर ही सन्ध्या करने लगे । थोड़ी ही देर में उन्हें किसी नारी के रोने की ध्वनि सुनायी पड़ी । उन्होंने देखा, एक स्थूल शरीर वाली नारी करुण विलाप कर रही है । उसे रोते देखकर योगी के मन में दया आ गयी । उन्होंने पूछा - 'तुम क्यों रो रही हो ?' उसने कहा - 'महाराज ! क्या बताऊँ, मैं बहुत अभागिनी हूँ । मुझे संसार के लोगों ने घर से बाहर निकाल दिया है । मैं इस नदी के उस पार अपने पीहर जा रही थी, लेकिन अब शाम हो गयी है । नदी कैसे पार करूँ । यही सोच कर रो रही हूँ ।'

योगी महाराज ने सोचा कि बेचारी रो रही है । इसे पार जाने का उपाय बताना चाहिये । उन्होंने कहा - 'देखो, यहाँ पानी गहरा नहीं है । उथला है । चली जाओ ।' वह बोली - 'नहीं महाराज ! हम यहाँ से कभी गये नहीं हैं । आप चलकर बतला दीजिये ।' वे बोले - 'अच्छा ठीक है । तुम हमारे पीछे-पीछे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आओ । हम तुमको उस पार पहुँचाए देते हैं ।'

वह नारी योगी के पीछे-पीछे चली जा रही थी । वह चलते-चलते रुक गयी और बोली - 'महाराज ! मुझे डर लग रहा है । मैं गिर पड़ूंगी ।' योगी बोले- 'अच्छा तू हमारी उँगली पकड़ ले ।' उस स्त्री ने योगी महाराज की उँगली पकड़ ली । कुछ दूर चलने के बाद फिर बोली - 'महाराज ! मेरा हाथ काँप रहा है । उँगली छूट जाएगी। आप मेरा हाथ पकड़ लीजिए ।' महात्मा जी ने उसके हाथ पकड़ लिए। कुछ दूर चलने के बाद वह फिर बोली - 'महाराज ! मेरे पैर सम्भल नहीं रहे हैं । मैं तो अब गिर ही पड़ूंगी ।' योगी बोले - 'अब तो नजदीक ही चले आये हैं ।' वह बोली - 'अब तो मैं एक कदम भी नहीं चल सकती । मुझे बहुत डर लग रहा है ।' योगी बोले - 'मेरे कन्धे पर बैठ जाओ ।' ऐसा कहकर महात्मा जी ने उसे अपने कन्धे पर बिठा लिया । कन्धे पर बैठने के बाद वह बोली - 'मेरे हाथ-पैर हिल रहे हैं । क्या करूँ ? पकड़ने के लिये मुझे कुछ आधार चाहिये ।' योगी के गले में एक उत्तरीय था । उन्होंने उसे मुँह में दबाया और कहा - 'इसके दोनों सिरों को पकड़ लो ।' उस स्त्री ने उन दोनों सिरों को पकड़ा और जोर-जोर से खिलखिलाकर हँसने लगी। योगी ने सोचा अभी तो इसके हाथ-पैर हिल रहे थे । अभी रो रही थी । अब यह हँस रही है । वे बोले- 'तू क्यों हँसती है ?' वह बोली - 'बताइये महाराज! मैंने आपके मुँह पर लगाम दिया कि नहीं ।' ऐसा कहकर उसने अपना वास्तविक रूप दिखा दिया । यह है माया का अपना एक रूप ।

दया भी माया है । **'जनकृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्'**(साधनपंचकम्) भगवान् शङ्कराचार्य जी कहते हैं जनकृपा और नैष्ठुर्य अर्थात् जनों के प्रति कृपा और निष्ठुरता, इन दोनों का परित्याग कर देना चाहिये ।

एक दिन राजर्षि भरत नदी के किनारे बैठकर सन्ध्या काल में जप कर रहे थे । इतने में उन्होंने देखा, सामने से एक गर्भिणी हरिणी आकर नदी में पानी पी रही है । उसी समय उसे सिंह की गर्जना सुनायी पड़ी । वह डरकर नदी में कूद पड़ी । नदी के बीच धार में उसका प्रसव हो गया । वह किसी तरह तैरकर तट पर आयी । वह तट पर जब चढ़ने का प्रयास कर रही थी तभी लड़खड़ाकर गिर पड़ी और उसका प्राण छूट गया । उसका बच्चा हिरण पानी में गिरकर बहने लगा । राजर्षि भरत जी को दया आ गयी । उन्होंने दौड़कर उसको पकड़कर पानी के बाहर निकाल दिया । वह छोटा सा हिरण का बच्चा ठिठुर रहा था ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने अपने बलकल चीर से उसका अंग पोछा तथा उसे अपने आश्रम में ले गये। वे उसके लालन-पालन में लग गये। उनका उस मृग शावक से इतना अधिक स्नेह हो गया कि वह जब अग्निहोत्र करते तो वह अग्निहोत्र करने की सामग्री को सूँघने लग जाता। उसे जब वे डाँटते तब वह उदास होकर बैठ जाता। उस समय उनका मन अग्निहोत्र में नहीं लगता था और वे शीघ्र ही अग्निहोत्र समाप्त करके उसे गले से लगा लेते और कहते - 'हे हरिण राजकुमार! तुम क्यों रुष्ट हो गये?'

इस तरह धीरे-धीरे उनकी परिचर्या भी छूट गयी। हिरण की ही परिचर्या रह गयी। जब वे ध्यान करने बैठते तो वह इनके शरीर को अपने सींग से खुजलाता। तब उनका ध्यान टूट ही जाता। इस प्रकार वे हमेशा ही उस मृग शावक का ध्यान करते रहते। और परिणाम यह हुआ कि उनका भगवान् का भजन भी छूट गया। एक दिन वह मृगशावक मृगों के झुण्ड में चला गया। अब उसके विरह में राजर्षि भरत जी को समस्त संसार ही मृगमय दिखायी पड़ने लगा। वे चन्द्रमा को देखकर कहने लगते - 'हे चन्द्रमा! कहीं तुमने हमारे मृग को तो नहीं छिपा लिया?'

कहते हैं कि उसी मृग का ध्यान करते-करते उनके प्राण निकल गए। मनुष्य को मृत्यु कब घेर लेगी इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। मौत किसी को नोटिस देकर नहीं आती। इसलिये प्राणी को सदैव सावधान रहना चाहिये।

गीतोक्ति पर आधारित प्रसिद्ध वाक्य है-**'अन्तकाले या मतिः सा गतिर्भवेत्।'** अन्तकाल में जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। राजर्षि भरत अन्तकाल में मृग का ध्यान करते-करते मरे। इसलिये दूसरे जन्म में हिरण की योनि में जन्म लिया। किन्तु उन्होंने भगवान् की अर्चना-पूजा की थी। इसलिये उनकी साधना निष्फल नहीं गयी। दूसरे जन्म में भी उनको अपने पूर्वजन्म का स्मरण रहा। उन्होंने सोचा कि एक जन्म व्यर्थ गया। अब दूसरा जन्म व्यर्थ न जाय। उसी गण्डकी नदी के किनारे उन्होंने मृग शरीर से ही तपस्या एवं व्रतादि करते-करते अपने दूसरे जन्म को पूर्ण किया।

तीसरे जन्म में एक ब्राह्मण के घर में उन्होंने जन्म लिया। उस ब्राह्मण की दो पत्नियाँ थीं। एक पत्नी से नौ पुत्र हुए तथा दूसरी पत्नी से एक कन्या और एक पुत्र का जोड़ा उत्पन्न हुआ। उस जोड़े पुत्र में से एक यह थे। राजर्षि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरत इस जन्म में जड़भरत कहलाये । जब वे कुछ बड़े हुए तब पिता ने इनको पढ़ाना प्रारम्भ किया, लेकिन 'हारे पिता पढ़ाइ-पढ़ाई । पिता इनको पढ़ा-पढ़ा कर हार गये, लेकिन ये थे कि पढ़ते ही नहीं थे ।

जिस प्रकार अग्नि की दाहिका शक्ति चन्द्रकान्त मणि से प्रतिबन्धित हो जाती है उसी प्रकार कभी-कभी ज्ञान भी प्रतिबद्ध हो जाता है । यद्यपि ज्ञान हो जाने के कारण मोक्ष हो जाना चाहिये । परन्तु कभी-कभी ज्ञान के प्रतिबन्धित हो जाने से जन्म रुक नहीं पाता ।

इसी तरह का ज्ञान इनको हो गया था । भावी प्रतिबन्ध था । इन्हें तीन जन्म लेना ही था । इसलिये ज्ञान होने के बाद भी इन्हें जन्म लेना पड़ा । परन्तु जन्म से इनको ज्ञान हो गया । अपने वेदान्तशास्त्र में कई प्रकार के प्रतिबन्ध बताये गये हैं - प्रज्ञा, मान, कुतर्क, विपर्यय, दुराग्रह, राग आदि । भूत प्रतिबन्ध, भावी प्रतिबन्ध आदि प्रतिबन्ध होते हैं, जिनके कारण मनुष्य का ज्ञान फल पर्यवसायी नहीं होता ।

एक व्यक्ति किसी महात्मा के पास गया । महात्मा ने उसे वेदान्त का उपदेश दिया पर उसका मन वेदान्त में नहीं लगता था । उसे पूरी बात समझ में आती ही नहीं थी । महात्मा ने सोचा क्या बात है? उन्होंने उससे पूछा - 'तुम्हारा किसी से प्रेम तो नहीं था ? याद करो ।' वह बोला- 'हमारे घर में एक भैंस थी, उससे हमारा प्रेम था ।' महात्मा बोले - 'अच्छी बात है । उस भैंस का ध्यान करो ।' महात्मा ने एक गुफा में खाने-पीने और रहने का सामान रख कर उसको उसमें यह कहकर बन्द कर दिया कि उस भैंस का ध्यान करो । उस गुफा में वह भैंस का ध्यान करने लगा । जिसका जिससे प्रेम होता है, उसे उसका ध्यान होने ही लगता है।

अब देखिये, आप ध्यान करने बैठे हैं । आपको प्राणायाम भी करना पड़ेगा । आसन भी लगाना पड़ेगा । लेकिन सिनेमा में कौन सा प्राणायाम करते हो ? वहाँ कैसे मन लग जाता है ? जिन विषयों से आपका राग है, वही उसमें दिखाया जाता है । इसीलिये उसमें आपका मन लग जाता है।

इस प्रकार भैंस का ध्यान बढ़ा और 'मैं' उसकी साकार वृत्ति हो गयी । उसकी ऐसी भावना बन गयी कि 'मैं महिष हूँ ।' एक दिन उसके गुरु ने उसे पुकारा और कहा - 'बेटा ! गुफा से बाहर आओ ।' उस शिष्य ने कहा - 'गुरुजी ! बड़े-बड़े सींग अटक रहे हैं ?' गुरुजी ने कहा - 'हम समझ गये । तुम्हारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भैंसाकार वृत्ति हो गयी है । **महिषोऽहम्** । अच्छा, अब तुम ध्यान करो कि भैंस मर गयी। उसका पृथ्वी का शरीर पृथ्वी में, जल का जल में, अग्नि का अग्नि में, वायु का वायु में और आकाश का आकाश में मिल गया । अब कुछ नहीं रहा ।' वह बोला - 'हाँ गुरुजी ! अब कुछ नहीं रहा ।' गुरुजी बोले-'कुछ नहीं रहा तो अब बाहर चले आओ ।'

'महिष्यां तत्त्वमुक्त्वा' महिषी में ही तत्त्व का उपदेश प्राप्त कर उसके राग के नष्ट हो जाने के बाद उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई और ज्ञान का फल पर्यवसायी हुआ ।

इसी तरह से वामदेव को भी कोई प्रतिबन्ध था, जिसके कारण उनको माँ के गर्भ में आना पड़ा । लेकिन गर्भ में आते ही अक्षर भी नहीं पढ़े, क्योंकि ये तो पढ़े पढ़ाये थे और पहले का स्मरण था । जो सो रहा हो, उसे जगाया जा सकता है किंतु जो जागते हुए सोने का स्वांग कर रहा हो उसे फिर कौन जगाये ।

कुछ समय बाद ही इनके पिता का देहान्त हो गया । इनकी माता इन्हें अपनी सौत को सौंप कर अपने पति के साथ सती हो गयी ।

इनके भाइयों ने इन्हें पढ़ाने का प्रयत्न किया । फिर भी ये नहीं पढ़े। उन्होंने सोचा कि इनसे घर का ही काम लिया जाय । वे इनसे घर का काम करवाने लगे । खेत का भी काम करवाने लगे । जड़भरत खेत की रखवाली करते। खेत में आये चिड़ियों को तो भगाना दूर रहा,

'राम की चिड़िया राम का खेत। खाओ चिड़िया भर-भर पेट' कहते हुए उन सब चिड़ियों को बुला-बुला कर खिलाने लगे । इनके भाई-भाभी इनसे घर का काम भी करवाते थे । बर्तन मँजवाना, झाड़ू लगवाना आदि सभी काम इनसे करवाते थे । इनकी भाभियाँ इन्हें जला हुआ या बासी खाना इनको देती थी और वे वही खा लेते थे, लेकिन निश्चिन्त एवं चिन्तारहित रहने तथा ब्रह्मचर्य के कारण उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था ।

कहते हैं कोई एक महात्मा थे, जो बहुत ही मोटे-तगड़े थे । उनको देखकर लोगों ने कहा - **'केहि कारण धमधूसर मोटा?**, इस पर जबाब दिया कि- उन्हें **'धन की फिक्र, न ऋण की सोच । एहि कारण धमधूसर मोट'** अच्छे मोटे और तगड़े थे । वे आनन्दपूर्वक रहते थे । घर का काम जो कुछ बनता था करते थे।

एक डाकू था । उस डाकू ने चण्डिका देवी को नरबलि का वचन दिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था कि हमारे कोई पुत्र हो जाय तो हम मनुष्य की बलि चढ़ायेंगे। उसको पुत्र हो गया। जिसको बलिदान देना था, वह उसको पकड़कर ले गया। मौका पाकर वह वहाँ से किसी तरह भागने लगा। उस डाकू के अनुचर उसे खोजते हुए घूम रहे थे। इतने में उन सबको ये जडभरत मिल गये। वे बलिदान के लिये इन्हीं को पकड़कर ले गये। इन्हें खूब स्नान कराया गया, भोजन कराया गया। बलिदान देने के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब उन लोगों ने किया।

अन्त में इन्हें रेशमी वस्त्र पहनाकर बलिदान के लिये चण्डिका देवी के सामने लाया गया। डाकू ने अपना खड्ग उठाया और इन्हें बलिदान करने के लिये ज्योंही खड्ग प्रहार करना चाहा, माँ भगवती से अन्याय सहन नहीं हुआ। तुरन्त ही तड़-तड़ करते हुए मूर्ति फटी और देवी प्रगट हुईं। छिन्धि-भिन्धि कहकर माँ भगवती अनेक योगिनियों के साथ नृत्य करने लगीं। माँ भगवती ने उसी खड्ग से उस डाकू का सिर काट दिया और इन्हें मुक्त कर दिया।

इनको न तो मरने का दुःख था और न छूटने का हर्ष। क्योंकि ये तो पहले जन्म में ही ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। भावी प्रतिबन्ध के कारण इनको जन्म लेना पड़ा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अग्नि भी होती है तथा घास भी होती है। फिर भी अग्नि घास को नहीं जलाती इसी प्रकार जब ज्ञान हो जाता है तब उसे दुःख-सुख का भान नहीं रहता। जैसे अष्टावक्र को ज्ञान हो गया था। उसी ज्ञान के कारण अष्टावक्र होकर भी वे परम प्रसन्न रहा करते थे। इसी प्रकार राजर्षि भरत को भी तीसरे जन्म में ज्ञान हुआ। इसलिए वे इस तीसरे जन्म में भी जड़भरत कहलाये।

एक दिन जड़भरत घूम रहे थे। सिन्धु सौवीर देश का राजा रहूगण पालकी में बैठकर कपिलदेव के आश्रम में ज्ञान प्राप्त करने के लिये जा रहा था। कहारों में एक कहार बीमार पड़ गया। एक कहार की खोज की जा रही थी। उन्हें कहार तो नहीं मिला जड़भरत मिल गये। इन्हीं को पालकी में जोत दिया गया। बेचारे चल पड़े। इनको बुरा नहीं लगा कि हम पालकी कैसे ले चलें। पालकी ढोने लगे। लेकिन इनकी चाल और कहारों की चाल में अन्तर था।

कहते हैं कि साधू जब चलता है तो वह चींटी को बचाते हुए जीवों को बचाते हुए चलता है। कभी उनके पैर लम्बे डग भागते तो कभी छोटी। पालकी हिलने लगी। रहूगण ने उनको डाँटा - 'क्यों रे ! कैसी पालकी चला रहे हो ?' वे बोले - 'महाराज ! **सांसर्गिकोऽयं दोषः**' यह सांसर्गिक दोष है। यह जो नया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहार आया है उल्टा-पुल्टा चल रहा है।' रहूगण ने झाँक कर देखा और कहा- 'आप तो बहुत दुबले-पतले हैं । मालूम होता है कि आपसे चला नहीं जाता ।' वे कुछ बोले नहीं । लेकिन उनकी चाल वही रही । फिर पालकी हिलने लगी तो रहूगण बोले - 'क्यों रे ! तू जीते हुए मुर्दे के समान है । तुझे ठीक कर दूँ ?' तब वे बोले - 'राजन्! किसको ठीक करोगे ? यह तो स्थूल शरीर है । यह कृश है । इसको आप ठीक कर सकते हो । यह शरीर तो मैं नहीं हूँ ।' रहूगण बोला- 'अच्छा, तो तुम कौन हो भाई ?' कहता हुआ वह पालकी से नीचे उतर आया और कहा - 'हम भगवान् शङ्कर के त्रिशूल से नहीं डरते, देवराज इन्द्र के वज्र से नहीं डरते, यम के पाश से नहीं डरते । हम तो केवल ब्रह्मकुल के अपमान से डरते हैं । कहीं ऐसा तो नहीं कि आप तत्त्वदर्शी हों, हम आपका अपमान कर रहे हों । बताइये, आप कौन हैं ?' वे कुछ बोले नहीं । महात्मा लोग अपना क्या परिचय दें ।

एक महात्मा थे । रेल से उतर कर अपने चेले के यहाँ गये। रात का समय था । उन्होंने दरवाजा खटखटाया । उस गृहस्थ ने कहा-'कौन है ?' वे कुछ बोले नहीं । वह सोचा कोई ऐसे ही खटखटा दिया होगा । फिर वह सो गया । उन्होंने फिर दरवाजा खटखटाया । उसने सोचा कोई चोर तो नहीं है । उसने फिर पूछा- 'कौन है ? कोई चोर तो नहीं है ?' महात्मा बोले - 'नहीं कोई चोर नहीं है ।' उसने पूछा - 'कोई डाकू तो नहीं है ?' वे बोले - 'नहीं, कोई डाकू नहीं है ।' उसने फिर पूछा - 'कोई धूर्त तो नहीं है?' महात्मा ने उत्तर दिया - 'नहीं, कोई धूर्त नहीं है ।' वह जो कहता जाता, महात्मा जी उसका खण्डन करते जाते। किन्तु यह नहीं बताते थे कि वे कौन हैं ।

बार-बार खटखटाते रहने से उसे गुस्सा आ गया । उसने किवाड़ खोल कर देखा तो गुरुजी थे । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । गुरुजी के चरणों में गिर पड़ा और कहा - 'आपने बताया क्यों नहीं कि आप हैं।' उन्होंने कहा - 'तू पूछता है कौन है ? हम कुछ होते तो बताते न । जो तू आरोप करता था, उसका हम निराकरण कर देते थे । हमारा जवाब तो उसका स्वरूप है, जो मन-वाणी से अगोचर है । हम क्या तुझको बतलाएँ ।' वह बोला - 'महाराज ! आप कहते हैं कि ये सब शरीर के धर्म हैं । स्थूल का, कृश का । लेकिन शरीर का आत्मा के साथ सम्बन्ध होने के कारण इसका सम्बन्ध तो होगा ही ।' महात्मा जी ने कहा - 'देखो, क्षेत्र अलग है, क्षेत्रज्ञ अलग है । शरीर अलग है, आत्मा अलग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है । व्यवहार की बातों को तत्त्वदर्शन के साथ नहीं मिलाया जा सकता ।' उन्होंने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेक बतलाया -

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 13/1)

अर्थात् यह शरीर क्षेत्र है । इसको जानने वाला क्षेत्रज्ञ है । वह क्षेत्रज्ञ ही सबका आत्मा है । यह सुनकर वह शिष्य बहुत प्रसन्न हुआ । उसने कहा - 'महाराज! तत्त्वदर्शन के लिये मुझे कोई एक साधन बताइये । उन्होंने कहा - 'तत्त्वदर्शन का एकमात्र साधन है महापुरुषों के रज से अभिषेक ।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम्॥

(श्रीमद्भागवत 5/12/12)

हे रहूगण ! यह आत्मा तपस्या से नहीं प्राप्त है । न यज्ञ से, न घर छोड़ देने से, न छन्द, न सूर्याग्नि की उपासना करने से यह आत्मा प्राप्त होती है । यह तो महापुरुषों एवं तत्त्वदर्शियों के चरण-कमलों के रज के अभिषेक से प्राप्त होता है । **'बिना महत्पादरजोभिषेकम्।'** क्या तुमने राजर्षि भरत का नाम सुना है ?' रहूगण बोला - 'वे तो हमारे सम्राट् थे । अखिल भू-मण्डल के सम्राट् होने के कारण प्रतिवर्ष हमको उन्हें भेंट देनी पड़ती है । समस्त विश्व के राजा महाराजा उनके सामने मस्तक टिकाते हैं । वे राजर्षि भरत थे ।' जडभरत बोले-

'अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः।'
आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसंगाद्धतार्थः ॥

(श्रीमद्भागवत 5/12/14)

जो कुछ मैंने सुना और देखा । उस आसक्ति के बल पर मैं विमुक्त हो चुका था और भगवान् की आराधना में लगा था, लेकिन बीच में ही मृग में आसक्ति हो जाने के कारण मुझे मृग-योनि प्राप्त करनी पड़ी । लेकिन भगवान् के अर्चन और अराधना के प्रभाव के कारण उस जन्म में भी मुझे अपना स्मरण रहा ।'

रहूगण यह सुनकर उनके चरणों में गिर पड़ा । तत्त्वज्ञान प्राप्त करके वहाँ से लौट पड़ा । कहते हैं कि रहूगण पूर्वजन्म का वही मृग था, जिसकी आसक्ति के कारण उनको मृगयोनि मिली थी । उसका उद्धार करने के बाद उनका भी उद्धार हो गया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके आगे और भी सुन्दर भक्त प्रह्लाद की कथा आती है । राजा परीक्षित् ने पूछा - 'महाराज ! जब देवताओं और दैत्यों का आपस में युद्ध होता है, तब भगवान् देवताओं का पक्ष लेते हैं, ऐसा क्यों ? भगवान् को देवताओं से कोई लाभ नहीं है, दैत्यों से कोई हानि नहीं है । फिर वे ऐसा क्यों करते हैं ?'

शुकदेव जी ने उनको समझाया - 'ऐसी बात नहीं है । प्रकृति के तीन गुण- सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण का ह्रास और विकास होता है । जब रजोगुण और तमोगुण घटने लगता है एवं सत्त्वगुण बढ़ने लगता है, तब लगता है भगवान् देवताओं का पक्ष ले रहे हैं । भगवान् को इससे कोई हर्ष-सुख नहीं है -

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम्।
प्रधानपरयो राजन्नविवकेन कल्पितम्॥

(श्रीमद्भागवत 7/1/22)

आत्मा और अनात्मा के अविवेक से निन्दा-स्तुति हुआ करती है। जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते तभी निन्दा-स्तुति का प्रभाव पड़ता है ।

एक शिष्य किसी महात्मा के पास गया । उसने महात्मा जी से कहा - 'महाराज ! आप हमें ऐसा मन्त्र बतलाइये, जिससे हमारी कोई निन्दा न करे ।' उन्होंने कहा - 'ऐसा कोई मन्त्र नहीं है । तुम निन्दनीय स्थान पर बैठोगे तो तुम्हारी निन्दा होगी । जहाँ कूड़ा फेंका जाता है, अगर वहाँ तुम बैठोगे तो तुम्हारे सिर पर कूड़ा ही पड़ेगा । यह शरीर निन्दनीय है, इसमें अगर आत्मबुद्धि करोगे तो तुम्हारी निन्दा होगी और जब शरीर से आत्मबुद्धि हटा दोगे तो फिर भला तुम्हारी निन्दा कौन करेगा?'

कुछ लोग एक महात्मा के पास गये और उनसे बोले - 'महाराज! लोग आपकी निन्दा करते हैं, जिसे सुनकर हम सबको बहुत दुःख होता है ।' वे बोले-

शरीरं यदि निन्दन्ति सहायास्ते जना मम ।
आत्मानं यदि निन्दन्ति स्वात्मानं निन्दयन्ति ते ॥ (स्फुट)

अर्थात् यदि वे शरीर की निन्दा करते हैं तो वे हमारे सहायक हैं। यदि आत्मा की निन्दा करते हैं तो जो आत्मा हमारी है वही उनकी भी तो है । अब चाहे वे हमको गाली दे लें या अपने को गाली दे लें, बात तो एक ही है ।'

जब साधारण ज्ञानी की यह दशा है, तो भगवान् तो नित्य ज्ञानवान् हैं । फिर उनमें इस तरह का राग-द्वेष कैसे हो सकता है ? इस सम्बन्ध में उन्होंने हिरण्यकशिपु का एक आख्यान सुनाया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् ने जब वाराह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु के बड़े भाई हिरण्याक्ष को मार डाला, तब हिरण्यकशिपु को बहुत दुःख हुआ। उसने अपने सैनिकों से कहा - 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि वाराह का रूप धारण करके जिस विष्णु ने मेरे भाई को मारा है, उसे मारकर उसके खून से अपने भाई का तर्पण जब तक न कर लूँ तब तक मैं चैन नहीं लूँगा।'

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तेभ्यो यज्ञाः सदक्षिणाः॥

(श्रीमद्भागवत 10/4/39)

देवताओं के मूल विष्णु हैं । विष्णु ही यज्ञ हैं - **'यज्ञो वैः विष्णुः?'** जहाँ सनातन धर्म होता है, वहाँ विष्णु (यज्ञ) होता है । हिरण्यकश्यपु ने अपने सेवकों को कहा - 'सनातन धर्म के मूल ब्राह्मण और गौ हैं । इसलिये जहाँ-जहाँ ब्राह्मण हों तुमलोग उनके घरों में आग लगाओ और साँप-बिच्छू बनकर गौओं को काटो । जब ब्राह्मण और गौ ही नहीं रहेंगे तब यज्ञ नहीं होगा और जब यज्ञ नहीं होगा तब विष्णु नहीं रहेगा । जब विष्णु नहीं रहेगा तब देवता भूखों मर जायँगे ।' ऐसा कहकर वह तपस्या करने चला गया । उसने घोर तपस्या की । उसने इतनी तपस्या की कि हमलोगों के पुराणों पर नियन्त्रण कर लिया । उसके मस्तक में जो तप की अग्नि थी, वह ज्वलन्त अग्नि स्वर्ग के देवताओं को जलाने लगी । सभी देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे कहा - 'प्रभो ! हिरण्यकश्यपु के तप से हमलोग परेशान हो गये हैं । आप किसी प्रकार उसके तप को भंग कीजिये । उसको तप से अलग कीजिये ।'

ब्रह्माजी हंस पर बैठकर उस स्थान पर गये जहाँ मेरु पर्वत की एक गुफा में हिरण्यकश्यपु तपस्या कर रहा था ।

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः।

(श्रीमद्भागवत 7/3/2)

हिरण्यकशिपु अपने हाथ को ऊपर उठाकर आकाश की ओर देखते हुए पैर के एक अँगूठे पर खड़ा होकर तपस्या कर रहा था । उसके शरीर में दीमक लग गये थे, घास उग आये थे और पिपीलिकाओं (चीटियों) ने उसके शरीर के मांस को खा लिया था । एक बार तो वह दिखायी ही नहीं पड़ा । किसी तरह से उसकी आँखों की चमक को देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि यही हिरण्यकशिपु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होगा और उसे पुकारा - 'हिरण्यकशिपु!'

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप।
वरदोऽहमनुप्राप्तो ब्रियतामीप्सितो वरः॥

(श्रीमद्भागवत 7/3/17)

'हे कश्यप के पुत्र ! उठ, तू सिद्ध हो चुका है । मैं तुझे वरदान देने के लिये आ गया हूँ । तेरी जो इच्छा हो, वरदान माँग ले । मैंने तेरे हृदय के बल को देखा है ।' ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु का जल उसके शरीर पर ज्योंही छिड़का तो वह हृष्ट-पुष्ट एवं स्वर्णिम काया से प्रकट हुआ । वह ब्रह्माजी के चरणों में गिरा और उनकी स्तुति करने लगा । फिर बोला - 'महाराज ! यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो पहला वरदान यह दीजिये कि आपके द्वारा बनाये गये किसी प्राणी से मेरी मृत्यु न हो । न मैं नर से मरूँ, न पशु से मरूँ, न प्राणधारी से मरूँ, न अप्राणधारी से मरूँ, न मैं पृथ्वी में मरूँ, न अन्तरिक्ष में मरूँ, न दिन में मरूँ, न रात में मरूँ, न भीतर मरूँ, न बाहर मरूँ। सुरासुर महोरग किसी से मेरी मृत्यु न हो । सारे संसार का ऐक्यपद मुझे प्राप्त हो जाय। मेरी तपस्या का प्रभाव कभी रिक्त न हो ।' इस तरह के उसने वरदान माँग लिये। ब्रह्माजी बोले - 'जो तुम वरदान माँग रहे हो, यद्यपि ये बड़े दुर्लभ हैं, परन्तु हम तुम्हारी तपस्या को देखते हुए ये वरदान तुम्हें दे रहे हैं । 'तथास्तु' कहते हुए ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गये ।

वह वरदान लेकर अपने राज्य में लौट आया । तपस्या करने पर भी उसका मन शुद्ध इसलिये नहीं हुआ क्योंकि उसका जो लक्ष्य था, वह ठीक नहीं था । कोई भी काम हो, यदि उसे गलत लक्ष्य को रखकर किया जाता है तो काम अच्छा होने पर भी वह मनुष्य के मन को शुद्ध नहीं कर पाता ।

उसने अपने मन में विष्णुजी और देवताओं से वैर करने की जो भावना रखी थी, वह वैसी की वैसी बनी रह गयी । उसने देवताओं को सताना प्रारम्भ कर दिया । उसने युद्ध में देवताओं को पराजित करके इन्द्र के महेन्द्र-भवन को अपना आवास बनाया तथा तीनों लोकों पर शासन करने लगा, जिसे अधिनायक तन्त्र कहते हैं ।

जितने भी लोकपाल सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि हैं, इन सबके अलग-अलग व्यवहार होते हैं । उसने इन सबको हटाया । जितने मुख्य अधिकार थे, उन सबको अपने हाथ में ले लिया । उसने इस प्रकार की व्यवस्था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की कि उसके राज्य में वह जब चाहे तब वर्षा होती थी और जब चाहे वर्षा बन्द हो जाती थी । उसके राज्य में किसी को तमाशा देखने के लिये थियेटर में जाना नहीं पड़ता था । **'नानाश्चर्यपदं नभः ।'** (श्रीमद्भागवत 7/4/16) आकाश की तरफ दृष्टि करते ही अनेक प्रकार के आश्चर्य दिखायी पड़ते थे । जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी, वह उसके लिये अन्तरिक्ष से स्वयं ही टपक पड़ती थी । इस प्रकार की व्यवस्था करते हुए हिरण्यकशिपु नाना प्रकार के भोगों को भोगने लगा लेकिन वह **'नातृप्यत'** तृप्त नहीं हुआ। **'नातृप्यदजितेन्द्रियः'** (श्रीमद्भागवत 7/4/19) क्योंकि इन्द्रियाँ इसके वश में नहीं थीं ।

इसकी उद्दण्डता से संत्रस्त होकर सभी देवता ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी उन सबको लेकर भगवान् विष्णु के पास गये और प्रार्थना किया - 'हे प्रभो ! हिरण्यकशिपु बहुत कष्ट दे रहा है ।' भगवान् बोले - 'मैं उसकी दुरात्मा को जान चुका हूँ । जब यह देवताओं, वेदों, गायों, ब्राह्मणों, साधुओं से विद्वेष करेगा तब इसका नाश हो जायगा ।

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥

(श्रीमद्भागवत 7/4/27)

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे । उनमें सर्वश्रेष्ठ प्रह्लाद जी थे । जब प्रह्लाद जी पढ़ने योग्य हुए तो हिरण्यकशिपु ने उनको पढ़ने के लिये पास में एक पाठशाला बनवायी । शुक्राचार्य के दो पुत्र थे । दोनों का एक ही नाम था - शण्डामर्क । जैसे अश्विनी कुमार होते हैं, दो भाई लेकिन नाम एक ही है । हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद को पढ़ाने के लिये उनसे कहा गया । प्रह्लादजी पढ़ने लगे ।

छुट्टी का दिन था । एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद में ले लिया और पूछा - 'बेटा ! तुमको क्या अच्छा लगता है ?' प्रह्लाद जी बोले -

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधिया मसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपापं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

(श्रीमद्भागवत 7/5/5)

'हे असुर श्रेष्ठ ! मैं यह अच्छा समझता हूँ कि जो मनुष्य असद् ग्रह के कारण सदा उद्विग्न रहते हैं, ऐसे मनुष्य गृहस्थाश्रम को छोड़कर वन में जाकर भगवान् श्रीहरि का आश्रय ले लें । बस यही मुझे अच्छा लगता है ।' प्रह्लाद की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार की बातों को सुनकर उसने शण्डामर्क को कहा कि - 'अभी ये बालक हैं, इसमें बुद्धि कम है । शायद हमारे शत्रु छिपकर इससे मिलते हों और बरगलाते हों । इसलिये अच्छी तरह से इसे अपनी देख-रेख में रखकर पढ़ाओ । कोई ऐसी-वैसी बात न होने पाये । गुरु पुत्रों ने इन्हें अच्छी तरह से पढ़ाया-लिखाया ।

आज आप अपने स्कूलों में धर्म की शिक्षा नहीं दे सकते । वेद, गीता और रामायण नहीं पढ़ा सकते । समालोचना पढ़ा सकते हैं । उनका ज्ञान नहीं करा सकते क्योंकि सरकारी पाठ्यक्रम है । पुराने जमाने में शिक्षा राज्य शासन के हाथ में नहीं होती थी । शिक्षा विद्वानों के हाथों में होती थी और न्याय ऋषियों-मुनियों के द्वारा होता था । राजा स्वयं न्याय नहीं कर सकता था । उनके द्वारा बनाये हुए नियमों पर ही राजा चलता था। जब से इनके हाथ में संविधान गया है, शिक्षा गयी है, तब से देश का बण्टाधार हो रहा है । वही बात हिरण्यकशिपु ने अपनायी । वे उनको वही पढ़ाने लगे जो अर्थ और काम देता हो । धर्म भी वही जो अर्थ और काम का साधक हो । कलियुग में क्या होता है ?

माता पिता बालकन्हिं बुलावहिं।
उदर भरइ सोइ धर्म सिखावहि॥

(रामचरितमानस उ.का. दो.९४ख के बाद चौ.४)

माता-पिता बालकों को बुला करके उन्हें वही धर्म सिखाते हैं, जिससे पेट भरा जा सके । इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सिखाते । प्रह्लाद को पढ़ा-लिखाकर शण्डामर्क ने उसकी परीक्षा लेने के लिये हिरण्यकशिपु के पास भेज दिया। माता ने उसकी आँखों में काजल लगाया, नये-नये कपड़े पहनाये और उसे उसके पिता के पास भेज दिया और कहा - 'पिताजी के चरणों में मस्तक नवाकर प्रणाम करना । अविनय नहीं करना । विनम्रतापूर्वक बात करना।' प्रह्लाद जी ने कहा - 'ठीक है माँ ।' प्रह्लाद जी पिता के पास पहुँचे और प्रणाम किया । हिरण्यकशिपु ने उनको गोद में बैठा लिया और सिर चूमकर पूछा - 'बेटा ! गुरुजी से क्या-क्या सीखा ? जरा हमको भी सुनाओ।' प्रह्लाद जी बोले -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोःस्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत 7/5/23)

अर्थात् भगवान् विष्णु के चरित्रों का श्रवण, कीर्तन, उनके चरणों की सेवा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनका अर्चन, वन्दन, दास्य-सख्यभाव और आत्मनिवेदन । भगवान् विष्णु के चरणों में यदि यह भक्ति समर्पित कर दी जाय तो मेरी दृष्टि में वह सर्वोत्तम अध्ययन है ।'

'हरि! फिर हरि!' कहते हुए हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को पटक दिया और बोला - 'मारो, इसको मारो । दुष्टों के साथ रहता था । दुष्टता का उनका काम ही था । जिसके हाथ में जो भी हथियार था, उसे लेकर प्रह्लाद के ऊपर टूट पड़े। लेकिन उनके सारे हथियार सड़ी लकड़ी की तरह टूट गये । प्रह्लाद जी का कुछ नहीं बिगड़ा।

अनन्त परब्रह्म में जिन्होंने अपनी आत्मा स्थापित कर रखी थी, उनके ऊपर किये गये प्रहार उसी प्रकार विफल हो गये जैसे अपवित्र मनुष्य कोई सत्क्रिया क्रिया करता है, तो वह सारी क्रिया व्यर्थ हो जाती है ।

हिरण्यकशिपु ने कहा - 'अरे ! यह तो मरा ही नहीं । वही उपाय करो, जिससे यह मरे ।'

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः।
मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः॥

(श्रीमद्भागवत 7/5/43)

उसने दिग्गजों को बुलाया और उनसे कहा - 'मारो'। दिग्गज चिंघाड़ कर उसकी ओर दौड़े । बड़े-बड़े साँप बुलाये । वे जहरीले साँप स्वयं मर गये लेकिन प्रह्लाद का कुछ नहीं बिगड़ा । बड़े-बड़े पण्डित-तान्त्रिक बुलाये गये । उन्होंने मोहन, वशीकरण, उच्चाटन व अन्य अनेक प्रयोग किये परन्तु प्रह्लाद का कुछ नहीं बिगड़ा । ऊँचे पर्वत के ऊपर से गिराये गये फिर भी उन्हें कुछ नहीं हुआ । माया दिखायी गयी फिर भी डर के मारे इनका हार्टफेल नहीं हुआ । गुफा में बन्द कर दिया गया, पानी में डुबोया गया । तब भी वह नहीं मरा । बहुत समय तक भोजन नहीं दिया गया फिर भी यह नहीं मरा । हिरण्यकशिपु घबरा गया कि यह तो मरता ही नहीं है । तभी वहाँ शण्डामर्क आ गये और बोले - 'हे राजन्! तुम क्यों चिन्तित होते हो । तुमने इतने बड़े-बड़े दिक्पालों को जीत लिया। यह छोटा सा बालक तुम्हारा क्या कर सकता है ? इसको ब्रह्मपाश से बाँध कर रखिये। आपके गुरु हमारे पिताजी आयेंगे तब इसे मारने का कोई उपाय बता देंगे ।' प्रह्लाद फिर पाठशाला पढ़ने पहुँच गये ।

एक दिन गुरुपुत्र किसी काम से बाहर गये हुए थे । प्रह्लाद जी ने सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बालकों को बुलाया और उनको उपदेश देने लगे -

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

(श्रीमद्भागवत 7/6/1)

'अर्थात् बुद्धिमान् को चाहिये कि छोटी अवस्था में भागवद्धर्मों का अनुष्ठान करे, क्योंकि यह मनुष्य देह दुर्लभ है और क्षणभंगुर है । इससे बहुत बड़े प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है ।'

कहा जाता है कि जब मनुष्य कुमारावस्था में होता है तो उसकी चंचलता शरीर में होती है । जब वह बड़ा अर्थात् युवा हो जाता है तो उसकी चंचलता आँखों में आ जाती है और जब वह वृद्ध हो जाता है तब उसकी चंचलता मन में चली जाती है ।

अब जिस मन से भजन करना है, उसी मन में चंचलता पहुँच गयी तो भजन कैसे होगा ? इसलिये वृद्ध का सिर ज्यादा हिलता रहता है और यह कहता है कि अब हमसे कुछ नहीं होगा । इसलिये छोटी अवस्था में ही भजन करना चाहिये । उन बालकों ने कहा - 'महाराज ! संसार का सुख तो भोग लेने दो । कुछ दिन संसार का सुख भोग लें फिर भजन करने लगेंगे ।' प्रह्लाद जी बोले - 'देखो, दैत्य बालको ! जहाँ भी देह मिलेगा, चाहे वह पशु-पक्षी का देह क्यों न हो, इन्द्रियों के सुख तो वहाँ भी मिल जायँगे । मनुष्य शरीर प्राप्त करके उन भोगों में आसक्त नहीं होना चाहिये।' बालकों ने कहा - 'महाराज ! भगवान् का भजन बहुत कठिन है ।' प्रह्लादजी बोले -

'न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः॥

(श्रीमद्भागवत 7/6/19)

हे असुर बालको ! भगवान् अच्युत की भक्ति में बड़े प्रयास की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं । वे सर्वव्यापक हैं । सिद्ध हैं, साध्य नहीं है । जैसे फसल बोकर उगायी जाती है वैसे ही भगवान् को बनाना नहीं पड़ता है । भगवान् तो पहले से हैं। वे सबकी अन्तरात्मा हैं । इसलिये आत्मा सबको प्यारी होती है । आत्मा से भिन्न जो वस्तुएँ हैं उनमें आत्मा के सम्बन्ध से ही प्रेम होता है । आत्मा में स्वतः प्रेम होता है । भगवान् सबकी आत्मा में हैं । फिर उन भगवान् से प्रेम करना उनकी भक्ति करना कौन सा कठिन है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयं ॥
व्याप्य-व्यापक-निर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः।

(श्रीमद्भागवत 7/6/22)

भगवान् सबकी अन्तरात्मा हैं । प्रत्यक्ष अन्नमय कोष और प्राणमय कोष में अन्तर है । प्राणमय कोष और मनोमय कोष में अन्तर है। मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष में अन्तर है। ज्ञानमय और आनन्दमय कोष में अन्तर हैं । आनन्दमय कोष में भी प्रत्यगात्मा से अन्तर है।

प्रतिकूल रूप से जिसका ज्ञान हो, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं । वह प्रत्यगात्मा रूप में सबके हृदय में विराजमान हैं । अहं-अहं के रूप में सब प्राणियों के हृदय में स्वीकृत हो रहा है। वह सबका द्रष्टा है। यह समस्त संसार उसका दृश्य है।

वास्तव में देखा जाय तो उसका दृश्य भी उससे पृथक् नहीं है। इसलिए प्रत्यगात्मा के रूप में वह स्वयं है । **'व्याप्यव्यापकनिर्देशः।'** माने प्रत्यगात्मा होने के कारण व्यापक है, दृश्य उसे व्याप्त है । सारे संसार में वह व्यापक है । संसार उससे व्याप्त है । वास्तव में देखा जाय तो व्याप्य की व्यापक से पृथक् सत्ता ही नहीं है तो क्या निर्देश करें ? कौन व्याप्य है और कौन व्यापक है ? 'केवलानन्द' केवल एक मात्र वही है, जो समस्त प्राणियों की बुद्धि का द्रष्टा है। उस परमात्मा का तुम लोग भजन करो ।' ऐसा प्रह्लाद जी ने उन दैत्य बालकों से कहा ।

दैत्य बालकों ने पूछा - 'आपको यह ज्ञान किससे मिला है ?' प्रह्लाद जी ने कहा - 'हमें अपने गुरु से यह ज्ञान मिला ।' उन्होंने पूछा-'आपके गुरु कौन हैं ?' प्रह्लाद जी ने कहा - 'हमारे गुरु नारद जी हैं।' उन्होंने फिर पूछा - 'आपको नारद जी कहाँ से मिल गये ?' प्रह्लाद जी बोले - 'एक बार हमारी माँ को इन्द्र पकड़ कर ले जा रहा था तो रास्ते में उसे नारदजी मिल गये । नारद जी ने उसे समझाया - 'इसके पेट में भगवान् का भक्त है । इसलिये इस स्त्री को मत सताओ, नहीं तो मारे जाओगे ।' यह सुनकर इन्द्र ने माँ को छोड़ दिया । नारद जी हमारी माँ को आश्रम में ले गये । वहाँ हमारी माँ को वे ज्ञान का उपदेश देते थे। उस ज्ञान को माँ तो भूल गयी किन्तु हमें याद है । वह ज्ञान हमारे हृदय में बैठा हुआ है । वही हम आप सबको बता रहे हैं ।' यह सुनकर प्रह्लाद से सभी दैत्य बालक प्रभावित हो गये और सभी भगवान् का कीर्तन करने लगे ।

आप सब भी मिलकर छोटा सा कीर्तन कर लें--

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ।'
प्यारे जरा तो मन में विचारो, क्या साथ लाए अरु ले चलोगे ?
जाता सदा साथ यही पुकारो। गोविन्द दामोदर माधवेति।
हे कृष्ण! हे यादव!! हे सखेति॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

सभी असुरदैत्य तन्मय होकर कीर्तन कर रहे थे । प्रह्लाद जी कीर्तन करवा रहे थे । तभी उनके गुरुजी वहाँ पहुँच गये । उन्होंने कहा - 'ओहो, अब तो पूरी पाठशाला बिगड़ गयी है ।' वे प्रह्लाद को पकड़कर उसके पिता के पास ले गये और बोले - 'महाराज ! इसने पाठशाला के सभी विद्यार्थियों को बिगाड़ दिया है।' प्रह्लाद को देखकर हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया । उसने कहा - 'क्यों रे अधम ! मन्द आत्मन् ! आज मैं तुझे यमलोक भेज दूँगा ।

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः॥

(श्रीमद्भागवत 7/8/7)

अर्थात् जिसके क्रोधित होने पर, भौहें टेढ़ी करने पर तीनों लोक थर-थर काँपने लगता है । तू किसके बल पर मेरे शासन का विरोध कर रहा है?' प्रह्लाद जी ने हाथ जोड़कर कहा - 'राजन् ! मेरा ही नहीं आपका भी वही बल है । संसार के जितने भी बली हैं, उन सबका वही बल है । पर, अपर, स्थिर, जंगम ये सबके सब भगवान् विष्णु के वश में हैं । उसी को ईश्वर कहते हैं, काल कहते हैं । वही मेरा बल है ।' हिरण्यकशिपु ने कहा - 'अच्छा, तो तेरे पास ईश्वर का बल है । क्या मेरे अतिरिक्त भी कोई दूसरा ईश्वर है ?

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते॥

(श्रीमद्भागवत 7/8/13)

अरे मन्दभाग्य ! तू मुझसे भिन्न किसी को ईश्वर कहता है । वह तेरा ईश्वर कहाँ है ?' प्रह्लाद जी बोले - 'वह सर्वत्र है, सब जगह है । मुझमें, तुझमें, खड्ग, खम्भ में सबमें वह व्यापक है ।' उसने कहा -'क्या उस खम्भ में भी तेरा ईश्वर है ?' प्रह्लादने कहा - 'हाँ ।' उसने कहा - 'ठीक है । मैं तेरा सिर खड्ग से काटता हूँ । यदि तेरा ईश्वर है, तो बचाये ।' हिरण्यकशिपु ने अपना खड्ग निकाला और प्रह्लाद का सिर काटने के लिये खड्ग जैसे ही उठाया, प्रह्लाद के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर ने हिरण्यकशिपु की मति बदल दी । वह बोला - 'बेटे को पीछे मारूँगा, पहले इस खम्भे पर ही खड्ग क्यों न चला दूँ ।' कहकर उसने अपना खड्ग उठाकर उस खम्भ पर जैसे मारा, वह खम्भा तड़-तड़ करके फटा और अपने भक्त के वचन को सत्य करने के लिये अपनी व्यापकता को दिखाने के लिये भगवान् ने ऐसा अत्यन्त अद्भुत रूप प्रगट किया जो न मृग था, न मनुष्य था। उसका सिर सिंह की तरह और धड़ मनुष्य जैसा था । उनके गले के बाल खड़े हो गये थे । आँखों से अंगार बरस रहा था । तलवार के समान उनकी पैनी जीभ लप-लप कर रही थी । इस रूप में भगवान् खम्भे को फाड़कर हिरण्यकशिपु के सामने जैसे ही प्रगट हुए -

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

(श्रीमद्भागवत 7/8/18)

सेवक कहता तो भगवान् हिरण्यकशिपु की छाती फाड़कर निकल सकते थे । दोनों काम एक साथ हो जाता । लेकिन सेवक ने कहा था-'मेरे भगवान् इस खम्भ में भी हैं ।' इसलिये भगवान् ने खम्भे से अपने आप को दिखलाया और यह भी दिखलाया कि सर्वत्र व्यापक हूँ ।

भगवान् के स्वरूप को देखकर हिरण्यकशिपु पहले तो बहुत भयभीत हुआ, परन्तु जैसे पतंगा अग्नि के ऊपर टूट पड़ता है वह वैसे ही भगवान् नरसिंह के ऊपर टूट पड़ा । भगवान् उसके साथ क्रीड़ा करने लगे । उसे कभी पकड़ते थे, कभी छोड़ते थे । कभी इधर दौड़ाते तो कभी उधर दौड़ाते थे । कभी उठाकर फेंक देते थे । बहुत देर तक इस तरह युद्ध होता रहा । शाम का समय हुआ । देवता डर गये । वे भगवान् के सामने आये और बोले - 'प्रभो ! रात्रि में दैत्यों का बल बढ़ जाता है। इसलिये इसे जल्दी ही मारिये ।'

भगवान् नरसिंह ने हिरण्यकशिपु को पकड़ा और उसे लेकर देहली पर बैठ गये । उन्होंने हिरण्यकशिपु से कहा - 'देख, अब तू मारा जा रहा है । तू अपने वरदानों का स्मरण कर । तूने कहा था कि न बाहर मरूँ, न भीतर मरूँ, मैं तुझे देहली पर मार रहा हूँ । तूने कहा था न दिन में मरूँ, न रात में मरूँ । देख, इस समय सूर्य अस्त हो रहा है लेकिन पूरा अस्त नहीं हुआ है । न दिन है न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रात है । तूने कहा था न धरती पर मरूँ, न आसमान में मरूँ । तू मेरी गोद में बैठा है। तूने कहा था न नर से मरूँ, न मृग से मरूँ । मैं न नर हूँ, न मृग हूँ। तूने कहा था ब्रह्मा के बनाये किसी भी प्राणी से न मरूँ । देख, मुझे ब्रह्मा जी ने नहीं बनाया है । तूने कहा था मैं किसी शस्त्र से न मरूँ। देख, मेरे नख कोई शस्त्र नहीं हैं ।'

ऐसा कहकर भगवान् ने हिरण्यकशिपु की छाती में अपने नख धँसाये और उन्होंने उसकी छाती फाड़ दी । भगवान् ने उसकी आँतों की माला पहन ली और सिंहासन पर बैठ गये । वे गौर से संसार की ओर देखने लगे । उन्हें देखकर देवता थर-थर काँपने लगे और दूर से ही उनकी जय-जयकार करने लगे। उनके सामने जाने का किसी को साहस नहीं हो रहा था । ब्रह्मा जी ने सोचा यदि उनका क्रोध रहा तो सबसे पहले मेरे ऊपर ही नाराज होंगे, क्योंकि उसे वरदान मैंने ही दिया था । उन्होंने लक्ष्मी जी को भेजा । लक्ष्मी जी कुछ दूर तक गयीं फिर उन्होंने भगवान् को देखा । कहा - 'ये मेरे पति नहीं हैं, कोई दूसरे हैं' कहकर लक्ष्मी जी एक ओर भागीं । ब्रह्मा जी ने प्रह्लाद से कहा - 'बेटा ! तुम्हीं जाओ ।'

प्रह्लाद जी सीधे भगवान् के पास गये और उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया । भगवान् सिंहासन से उठ खड़े हुए और प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर बैठ गये । जिन आँखों से अंगार की वर्षा हो रही थी, उन्हीं आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे थे । जैसे सिंहनी अपने बच्चे को चाटती है उसी तरह भगवान् अपनी जीभ से प्रह्लाद को चाटने लगे और बोले -

'क्वेदं वपुः क्व च कुमार वयस्यमेतत्।
क्वैता प्रमत्तकृतदारुणयातनाश्च॥
आलोकितं विषममेतदभूतपूर्वं।
क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः॥ (स्फुट)

अर्थात् बेटा ! कहाँ तुम्हारा सुकुमार कान्त कोमल वपु और कहाँ इस दैत्य द्वारा दी गयी यातनाएँ ? बहुत ही विषम स्थिति थी, ऐसा मैंने देखा । यदि मेरे आने में देर हो गयी हो तो बेटा क्षमा करना ।'

इस प्रकार भगवान् ने प्रह्लाद से क्षमा-याचना की । प्रह्लाद ने भगवान् की स्तुति की । भगवान् नरसिंह ने प्रह्लाद को वरदान माँगने के लिये कहा । प्रह्लाद ने कहा - 'प्रभो ! आप मुझे क्यों लोभ में डालते हैं । मैं असुर कुल में जन्मा हूँ । इसलिये मुझे इस प्रकार का लोभ मत दीजिये । मैंने आपका भजन किसी कामना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से नहीं किया है । हमारा आपका सम्बन्ध राजा और सेवक जैसा नहीं है । जो किसी कामना से किसी की सेवा करता है, वह सेवक नहीं है, वह तो बनिया है । मैं आपका निष्काम भक्त हूँ । आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं । यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं, तो हमें आप यह वरदान दें जिससे मेरे हृदय में कामनाओं का कोई अंकुर जन्म न ले ।' भगवान् ने 'तथास्तु' कहा और जब वे अन्तर्ध्यान होने लगे तो प्रह्लाद जी ने कहा - 'प्रभो ! हमें आप एक वरदान दीजिये। हमारे पिता ने आपका बहुत अपमान किया है फिर भी उन्हें नरक न मिले।

उमा सन्त कर इहै बड़ाई । मंद करत जो करत भलाई॥

(रामचरितमानस)

भगवान् नरसिंह बोले - 'तेरे इक्कीस पीढ़ी ऊपर के और इक्कीस पीढ़ी नीचे के तर जायँगे । तू इसकी चिन्ता मत कर । तेरे पिता का भी उद्धार होगा ।' इस प्रकार भगवान् ने प्रह्लाद को बचाया और हिरण्यकश्यपु को मारा । आध्यात्मिक दृष्टि से -

प्रमाण नखनिर्भिन्नमहामोहामरारिहे ।
नमस्कुर्वे नृसिंहाय स्वप्रकाशचिदात्मने॥ (चित्सुखी का मंगल)

यह अमरारि हिरण्यकशिपु महामोह है, जो अज्ञानी है। अज्ञान ही हिरण्यकशिपु है । वेदों के चार महावाक्य रूपी प्रमाण ही नख हैं। उन नखरूपी प्रमाण से जिन भगवान् ने हिरण्यकशिपु को विदीर्ण किया है, वह भगवान् नरसिंह हैं । सिंह ईश्वर का और नर जीव का प्रतीक है और वह दोनों एक है । उन्हीं प्रमाणरूपी नखों से भगवान् ने उस अज्ञान रूपी हिरण्यकश्यप का हृदय विदीर्ण कर दिया । ऐसे सब प्रकार से चिदात्मा नरसिंह को हम प्रणाम करते हैं।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम।
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS MoE Grant-2

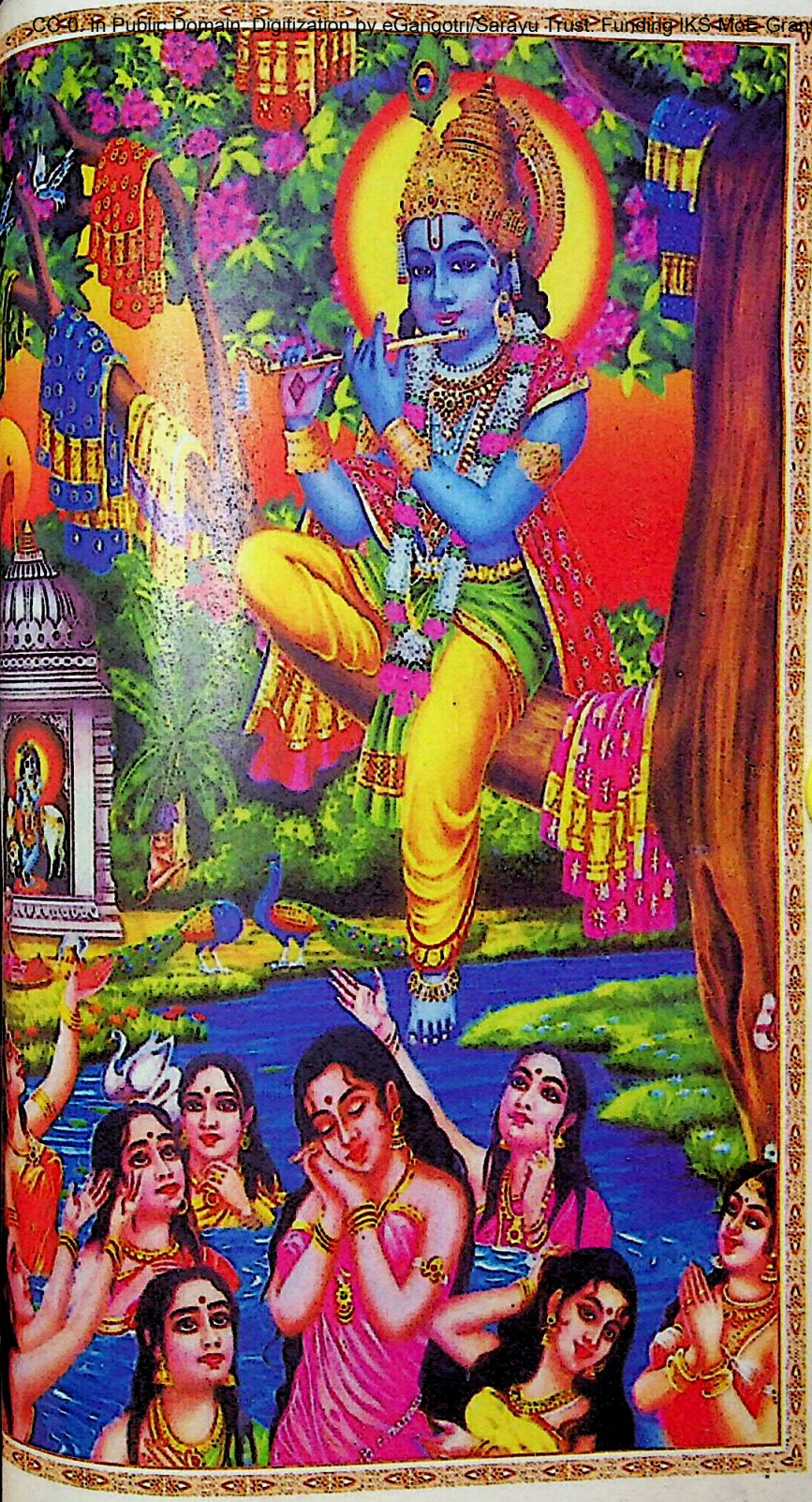

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2

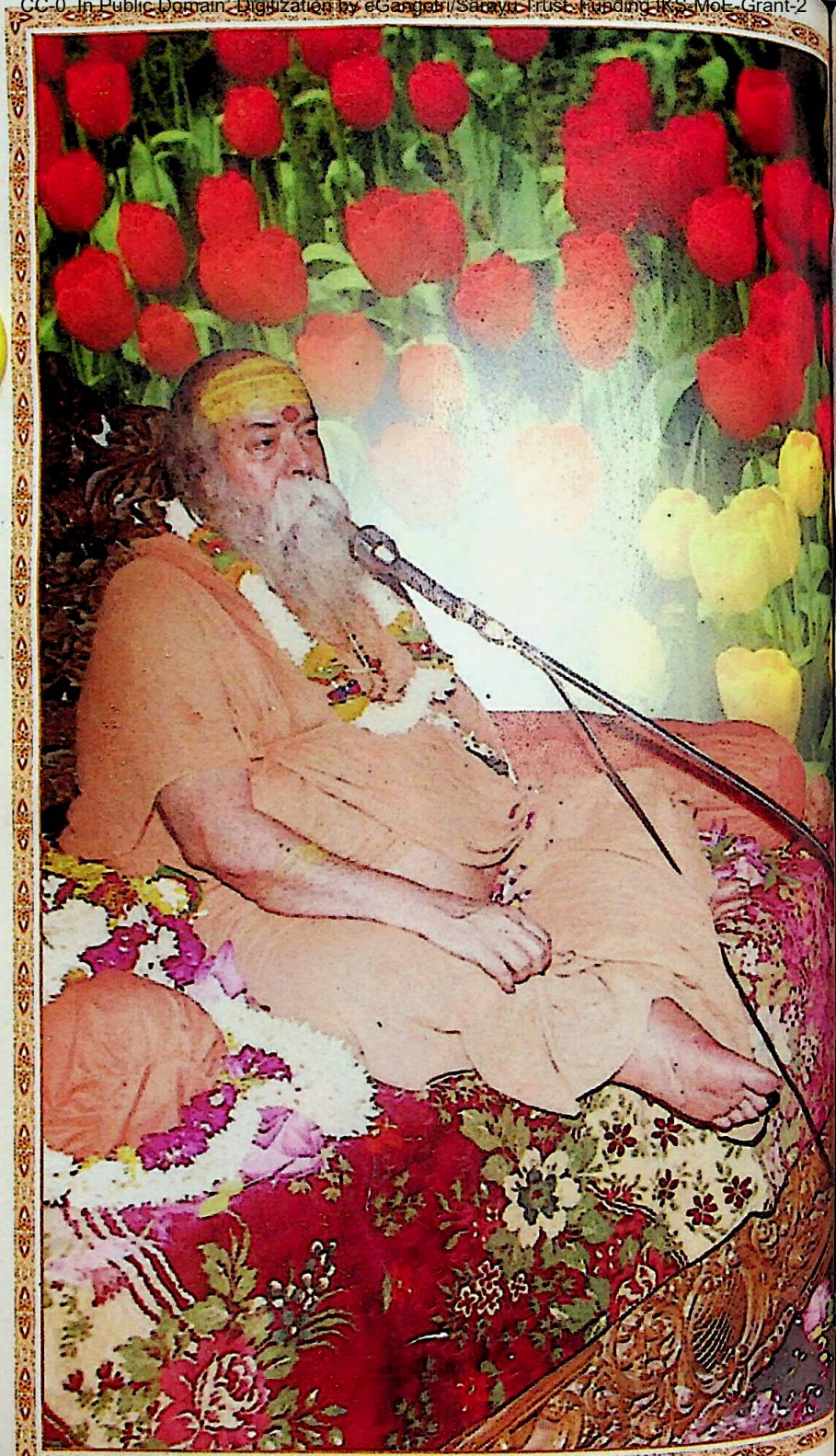

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

षष्ठ दिवस

उपस्थित विद्वद्वृन्द, देवियो एवं सज्जनो !

श्रीमद्भागवत के आठवें स्कन्ध में गजेन्द्र-मोक्ष की कथा आती हैं।

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः॥

(श्रीमद्भागवत 8/2/1)

शुकदेव जी ने कहा - 'राजन् ! त्रिकूट नाम का एक सर्वश्रेष्ठ पर्वत था । वह क्षीरसागर से आवेष्टित था । वह समुद्र से दस हजार योजन ऊँचा था । उस पर अनेक प्रकार के वृक्ष थे, जो फूल और फलों से लदे थे । वहाँ देवताओं की पत्नियाँ, अप्सराएँ और किन्नर क्रीड़ा किया करते थे । उसी वन में एक बहुत बड़ा गजेन्द्र था । एक दिन गजेन्द्र को प्यास लगी । प्यासा गजेन्द्र पानी की खोज में इधर-उधर भटक रहा था। उसे कहीं से कमल के फूल की सुगन्ध मिली । वह उसी ओर चल दिया। आगे उसने एक बहुत विशाल सरोवर देखा । वह अपने झुण्ड के साथ उसमें स्नान करने लगा । उसने स्वयं भी जल पिया और अपने सूँड़ से बच्चों को भी पिलाया । जल में हथिनियों के साथ क्रीड़ा करने लगा । वह जल-क्रीड़ा में इतना निमग्न था कि उसको पता ही नहीं रहा कि उस सरोवर में कोई ग्राह भी है । जिस प्रकार यह जीव संसार के भोगों में इस प्रकार मतवाला हो जाता है कि उसको मृत्युरूप ग्राह का पता ही नहीं रहता और एकाएक मृत्यु उसको झपट लेती है ।

बलवान् ग्राह उस गजेन्द्र का पैर पकड़ कर पानी में खींचने लगा। पहले तो उस गजेन्द्र को अपने बल का अभिमान था कि हम अपने बल से ग्राह से अपने आपको छुड़ा लेंगे परन्तु जब वह अपने आपको छुड़ा पाने में समर्थ नहीं हो सका तो अपने परिवार के लोगों की ओर देखा। परिवार के लोगों ने भी जोर लगाया । पर उसे नहीं छुड़ा सके । उन दोनों का युद्ध चलने लगा । कभी ग्राह गजेन्द्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को भीतर खींच कर ले जाता तो कभी गजेन्द्र ग्राह को बाहर खींच लाता । परिवार के लोग कुछ लताएँ, वृक्ष और कुछ पत्ते डाल देते थे, जिसे गजेन्द्र खा लेता था।

जब उन्होंने देखा कि ग्राह से इसका बचना कठिन है, तो उन्होंने भी उसका साथ छोड़ दिया । संसार के लोग तभी तक साथ देते हैं, जब तक उनका काम निकलता रहता है । जब देखते हैं कि अब हमारा इनसे काम नहीं रहा तो सब किनारा कर लेते हैं ।

अन्त में अकेला गजेन्द्र बचा । उसको भी जब अपने बल का भरोसा न रहा तो उसने भगवान् को पुकारा। भगवान् को निर्विशेष रूप से उसने स्मरण किया । **'प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितं ।'** (श्रीमद्भागवत 8/3/1) पहले जन्म में उसने जो शिक्षा पायी थी, उसके अनुसार उसने भगवान् को स्मरण किया।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥

(श्रीमद्भागवत 8/3/3)

गजेन्द्र बोले - **यस्मिन्निदं'** अर्थात् जिसमें रहता है । **'यतश्चेदं** अर्थात् जिससे इसकी उत्पत्ति होती है । **'येनेदं'** माने जिसके द्वारा इसका ज्ञान होता है । **'य इदं स्वयं'** जो स्वयं इस रूप में दिखलायी पड़ रहा है। वस्तुतः **'योऽस्मात्परस्माच्च परः'** अर्थात् जो इससे और इसके कारण माया से भी परे है । **'तं प्रपद्ये स्वयंभुवम्'** । आप उदाहरण के रूप में स्वप्न को ले लीजिये । स्वप्न किसमें है ? स्वप्न के द्रष्टा में है । वह स्वप्न किससे हुआ ? स्वप्न को देखने वाले से हुआ और स्वप्न क्या है ? जो देखने वाला है, वही स्वप्न है । स्वप्न और स्वप्न का मूल जो देखने वाला है । वही स्वप्न है । स्वप्न और स्वप्न का मूल निद्रा इन दोनों से जो परे है, वह स्वयंभू है ।

जैसे स्वप्न द्रष्टा का कार्य है, उसी प्रकार यह विश्व प्रपंच भी विश्वप्रपंच के द्रष्टा का कार्य है । यह उसी ब्रह्म में रहता है और उसी से इसकी उत्पत्ति होती है । उसी के द्वारा यह जाना जाता है । ब्रह्म ही इस रूप में प्रतीत हो रहा है । जगत् और जगत् का कारण माया से जो परे है, ऐसा वही स्वयंम्भू है । मैं उसकी शरण में हूँ ।' ऐसा गजेन्द्र ने कहा।

यःस्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत् तिरोहितम्
अविद्धदृक् साक्ष्यभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥

(श्रीमद्भागवत 8/3/4)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो परमात्मा अपने ही भीतर अपनी माया से समस्त विश्व को देखता है। **क्वचिद् विभातं** कभी इसको जाग्रत् और स्वप्न में देखता है । सुषुप्ति में तिरोहित नहीं रहता । पर आत्मा, द्रष्टा, अविद्धदृक् की स्वरूप भूत दृष्टि का कभी लोप नहीं होता । उपनिषद् कहते है -

नहि द्रष्टुर्दृष्टे विपित्तिलोपो वर्तते अविनाशित्वात् ।

(बृहदारण्यकोपनिषद् 4/3/23)

द्रष्टा की स्वरूपभूत दृष्टि का कभी परिलोप नहीं होता क्योंकि वह अविनाशी है । **अविद्धदृक्** जिसका स्वरूपभूत ज्ञान कभी भी लुप्त नहीं होता । जो जगत् के भाव-अभाव दोनों को ही जानता है । **स आत्ममूलः** वह आत्मा का मूल है । आत्मा का यहाँ अर्थ होगा - अहंकार । **मय** अर्थात् यह प्रत्यय और जहाँ से अहं का उदय हुआ वह इसका मूल हुआ । वह परमात्मा मेरी रक्षा करें।' इस प्रकार गजेन्द्र ने निर्विशेष रूप से ब्रह्म का स्मरण किया -

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
त्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥ (श्रीमद्भागवत 8/4/30)

ब्रह्मा आदि देवता सोच रहे थे कि यह हमारा नाम नहीं ले रहा है। हम इसे बचाने क्यों जायँ । जब कोई भी नहीं गया तब अन्त में अखिलान्तर्यामी भगवान् श्रीहरि वहाँ आर्विभूत हुए । उन्हें आने में विलम्ब नहीं हुआ । इसीलिये भक्तों ने कहा है -

'आये आधे नाम ।'
जब लगि गज अपनो बल बरत्यो नेक सर्‌यो नहिं काम॥
निर्बल भये बल राम पुकार्‌यो आये आधे नाम
सुनो रे मेरे निर्बल के बल राम ।'

जब तक गजेन्द्र को अपने बल का भरोसा रहा, उसका कोई काम नहीं बना । जब सबका भरोसा छूट गया तब निर्बल होकर उसने भगवान् को पुकारा। कहते हैं कि भगवान् भक्त का 'हाय' शब्द सुनते ही गरुड़ और सुदर्शन चक्र को छोड़कर आ गये । गजेन्द्र की सूँड़ पकड़कर ग्राह सहित उसे सरोवर से बाहर कर दिया । तब सुदर्शन चक्र ने आकर ग्राह का मुँह फाड़ दिया । इस प्रकार गजेन्द्र की रक्षा करके भगवान् जब लौटने लगे तब रास्ते में गरुड मिले । भगवान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब वैकुण्ठ पहुँचे तब उन्हें गजेन्द्र का 'रि' शब्द सुनायी पड़ा । इसलिये कहा गया है - 'आये आधे नाम' इसका अर्थ है कि भगवान् को आना-जाना कहाँ था। वे तो वहीं उपस्थित थे । प्रकट मात्र होना था, सो हो गये ।

इसी प्रकार द्रौपदी के सम्बन्ध में भी कहा जाता है । द्रौपदी भी गजेन्द्र के समान आर्त भक्तों में मानी जाती है ।

द्रुपद सुता निर्बल भयी ता दिन तजि आए निज धाम।
दुःशासन की भुजा चकित भई वस्त्र रूप भए श्याम॥ (स्फुट)

द्रौपदी को पहले अपने पतियों पर भरोसा था कि वे इस दुष्ट की भुजा तोड़ देंगे, परन्तु जब उसने सभा में आकर देखा कि ये पाँचों मौन, माथा नीचे किये बैठे हैं । फिर उसने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य जैसे बड़े-बड़ें महानुभावों की ओर देखा । परन्तु किसी ने भी उसकी सहायता नहीं की। इधर दुःशासन उसके वस्त्रो को खींच रहा था । अबला द्रौपदी ने सोचा कि अब मैं अपने वस्त्रों की रक्षा नहीं कर पाऊँगी । तब उसने भगवान् द्वारकाधीश को बुलाया - 'हे गोविन्द द्वारका-वासिन्! हे श्रीकृष्ण!! हे गोपीप्रिय!!! ये कौरव मुझे सता रहे हैं । क्या तुझे पता नहीं है ?' भगवान् आये और द्रौपदी के चीर में समा गये । भगवान् अनन्त हैं अतः द्रौपदी का चीर भी अनन्त हो गया । दुःशासन जैसे-जैसे चीर खींचता गया, एक से एक रंग-बिरंगी साड़ियाँ निकलती गयीं । वह आश्चर्यचकित हो गया। सोचने लगा -

नारी बीच सारी है कि सारी बीच नारी है।
नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है॥ (स्फुट)

अन्त में जब पीताम्बर निकलने लगा तब भीष्म ने कहा--'अरे दुःशासन! अब हाथ मत लगा क्योंकि अब श्रीकृष्ण आ गये । अब यदि ऐसा किया तो भस्म हो जायगा ।'

वह हार कर बैठ गया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की लज्जा बचायी । लेकिन द्रौपदी के मन में भगवान् के प्रति कुछ रोष रहा । जब भगवान् आये तब द्रौपदी ने कहा - 'भगवन् ! जब दुःशासन मेरी चीर खींच रहा था, उस समय आपने आकर मेरी रक्षा की। इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ । परन्तु आपने आने में विलम्ब क्यों किया ?' भगवान् ने पूछा - 'द्रौपदी ! तुमने मुझे क्या कहकर बुलाया था ? द्रौपदी बोली-'गोविन्द द्वारकावासी कहकर बुलाया था ।' भगवान् ने कहा - 'तब मैं वहीं था, फिर द्वारकावासी कहा । तब मुझे द्वारका से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर आना पड़ा । यदि तुम घट-घट वासी कहती तो तुरन्त प्रकट हो जाता। तेरी रक्षा के लिये खड़ा हो जाता ।'

यह प्रभु का चरित्र है । प्रभु के भक्तों का चरित्र है । अब हमें भगवान् के अवतार का चरित्र सुनना और वर्णन करना है । राजा परीक्षित् प्रश्न करते हैं -

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्॥
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/1-2)

भगवन् ! क्रमानुसार आपने सूर्य व सोम वंश का विस्तार से वर्णन किया । पहले सूर्य वंश का फिर सोम वंश का वर्णन किया है । लेकिन यहाँ **सोम-सूर्ययोः** में पहले सोमवंश का नाम लेते हैं । उसके बाद सूर्यवंश का नाम लेते हैं । ऐसा क्यों ? समास में 'अभ्यर्हितं पूर्वं' के अनुसार सोम अभ्यर्हित है क्योंकि इसमें षोडश कला युक्त भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है । इसलिये सोमवंश का नाम पहले लेते हैं । दूसरे बुद्धि में सोमवंश अभिसमीहित हैं क्योंकि सूर्यवंश के पश्चात् सोमवंश का वर्णन किया है । इसलिये **'भवता सोमसूर्ययोः'** अब उन वंशो में उत्पन्न राजाओं के परमाद्रित चरित्र को भी आप सुनायें -

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम।

धर्मशील यदु का चरित्र आपने सुना है । यदु का धर्मशील विशेषण लगाया । यदि वह धर्मशील न होता तो उसके कुल में भगवान् का अवतार क्यों होता ? सबसे बड़ी बात यही है । यदु ने राज्य छोड़ दिया, पर धर्म नहीं छोड़ा । पिता ययाति कहते थे - 'तुम अपनी युवावस्था मुझे दे दो ।' शुक्राचार्य जी ने कहा - 'यदि तुम्हारा बेटा तुम्हें युवावस्था दे देगा तो तू युवा हो जायगा ।'

वह उस युवावस्था का प्रयोग हमारी माता के साथ करेंगे । इस आशंका से उनका कोपभाजन बनना स्वीकार किया, परन्तु अपनी युवावस्था उनको नहीं दी । इसलिये वे धर्मशील कहलाये । **तत्रांशेन अवतीर्णः स विष्णुः।** उस यदुवंश में अंश से अवतीर्ण विष्णु हैं ।

यहाँ यह प्रश्न आता है कि पहले प्रथम स्कन्ध में यह कहा जा चुका है कि **'इति अंशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** और अवतार तो अंश और कला हैं, पर श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं । **'अंशेन'** यहाँ विद्वान् अर्थ करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं **'अंशेन विष्णुः'** जो अपने एक अंश से विष्णु हैं, आप उनके चरित्र सुनाइये।' शुकदेवजी ने कहा - 'तुम भगवान् का चरित्र क्यों सुनना चाहते हो ?' राजा परीक्षित् बोले - 'महाराज ! भगवान् के चरित्रों में ऐसा विचित्र आकर्षण है कि सभी लोग उनके प्रति आकर्षण का अनुभव करते हैं, यह बताइए-

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात्॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/4)

'निवृत्ततर्षैरुगीयमानाद्' में **'निवृत्ततर्षैः'** का अर्थ श्रीधरस्वामी ने किया है - **'गततृष्णैः'** जिसके हृदय से तृष्णा निकल चुकी है। ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष भी जिस कथा का गान करते हैं, उन भगवान् का चरित्र हम सुनना चाहते हैं ।' जीव तीन प्रकार के माने गये हैं - विषयी, साधक और सिद्ध।

विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने॥

(रामचरितमानस)

जो शास्त्रानुसार इस लोक के भोग को भोगते हुए 'परलोक न बिगड़े' इस बात का ध्यान रखते हुए बुरे कर्मों से बचते हैं, परलोक में सुख मिले, इसके लिये उत्तम कर्म करते हैं ऐसे को विषयी जीव कहते हैं । जो इस लोक के और परलोक के भी भोग को नहीं चाहते । जन्म-मरण के चक्र से छूट कर परमपद को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें साधक कहते हैं । जो ब्रह्म का साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त हो चुके हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं ।

जीवन्मुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ ॥

(रामचरितमानस)

जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान् के गुणों का निरन्तर श्रवण करते हैं । मुनि आत्माराम, पूर्णकाम एवं पूर्णनिष्काम होते हैं। वे भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते हैं । इसका कारण यह है कि **'इत्थंभूतगुणो हरिः' अचिन्त्यानन्तगुणगणैकनिलय' 'निखिलहेयप्रत्यधीः'** भगवान् के अचिन्त्य गुणगणों में जो गुण हैं - **'आत्मारामचित्ताकर्षकता'** आत्मारामों के भी चित्तों को अपनी ओर खींच लेना । बड़े-बड़े ज्ञानी भी भगवान् के चरित्र का श्रवण एवं वर्णन करते हैं । इसलिये भगवान् की कथा सिद्धों को भी प्रिय है ।

भवसागर चहँ पार जो पावा । राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥

(रामचरितमानस)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो साधक हैं, भवसागर से पार जाना चाहते हैं । श्रीमद्भागवत कथा उनको भवसागर से पार कराने वाली नाव के समान है । विषयी जीवों के लिये -

विषयिन्ह कहं पुनि हरि गुन ग्रामा ।
श्रवन सुखद अरु मन विश्रामा ॥ (रामचरितमानस)

भगवान् के गुण-ग्राम विषयी प्राणियों के श्रवण और मन को सुख देने वाले हैं । इसलिये लोग जब पूछते हैं कि 'यहाँ क्या हो रहा है?' तीर्थ में, अध्यात्म विद्या मन्दिरों में क्या हो रहा है?' तो कहते हैं--'श्रीमद्भागवत की कथा हो रही है ।' 'प्रसंग कौन सा चल रहा है?' कहा--'पुरञ्जनोपाख्यान ।' तो कहा - 'अभी तो वेदान्त की बात चल रही है। जब श्रीकृष्ण कथा आये तब हमको बताना । तब हम जरूर चलेंगे और उसमें भी रामलीला का प्रसंग आये तब तो हम जरूर चलेंगे ।'

ऐसे भगवान् के उत्तम श्लोक अर्थात् जिनका उत्तम यश है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के बिना गुणानुवाद के **'विना पशुघ्नात्'** पशुघ्न अर्थात् कसाई ऐसे नीरस हृदय वाले को छोड़कर **'हन्यते पशुःन अनेन इति शुष्ककाष्ठ - दण्डः'** जिसके द्वारा पशुओं को मारा जाता है, वह सूखा काठ या बाँस का डण्डा है, जिसमें फाँस ही फाँस और गाँठ ही गाँठ होती है। कहने का मतलब यह है कि जिसके दिल में फाँस ही फाँस और गाँठ ही गाँठ भरा है, वह भगवान् की कथा नहीं सुनना चाहेगा । और सभी सुनना चाहेंगे ।

तीसरा अर्थ है - **'विना पशुघ्नात्'** जिसमें सुख नहीं है, वह आत्मा अपसुख है । **'तं आत्मानं हन्तीति अपशुघ्नः तस्मात्'** उस आत्मा का जो हनन करे, वह आत्महत्यारा है । जो अपना हित न करे, उसे क्या कहा जाय । उस आत्मघाती को छोड़कर -

कुटिल कठोर निठुर सोइ छाती ।
सुनि हरि चरित न जे हरषाती ॥ (रामचरितमानस)

इसलिये हे महाराज ! भगवान् का गुणानुवाद सुनाइये । शुकदेव जी बोले- 'हम रामायण की कथा सुनायेंगे ।' 'नहीं महाराज ! परीक्षित ने कहा - 'श्रीकृष्ण-कथा सुनाइये ।' शुकदेव जी ने पूछा - तेरे मन में श्रीकृष्णकथा के प्रति अनुराग क्यों है ? वे बोले - 'महाराज ! परम्परा से ही हमारे यहाँ श्रीकृष्ण भक्ति चली आ रही है ।

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/5)

हमारे पितामह पाण्डव ने महाभारत के कुरुक्षेत्र में देखा कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना क्या है, मानों वह एक लहराता हुआ समुद्र है, जिसमें भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा और विकर्ण तिमिङ्गिल हैं । समुद्र में एक ऐसा मत्स्य होता है, जो सौ योजन तक विस्तृत होता है । **'आसीन् मत्स्यः तिमिनामा शतयोजनविस्तरः ।'** उस मत्स्य को खा जाने वाले का नाम है - तिमिङ्गिल। उनके रहते कौरव सैन्य सागर को पार करना हमारे पितामहों के लिये अत्यन्त कठिन था । परन्तु जिन्होंने भगवान् को जहाज बना लिया, उन्होंने उसी तरह कौरव सैन्यसागर को पार कर लिया जैसे बछड़े के खुर को प्राणी सहज में पार कर लेता है । महाराज ! हमारे पूर्वजों के इष्टदेवता भगवान् श्रीकृष्ण हैं । अतः हम उनका ही चरित्र सुनना चाहते हैं ।'

शुकदेव जी ने पूछा - 'उनसे तेरा क्या सम्बन्ध है ? यह तो तेरे पूर्वजों का सम्बन्ध रहा ।' परीक्षित ने कहा - 'महाराज ! हमारा यह शरीर उन्हीं का दिया हुआ है ।'

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम्।
जुगोप कुक्षिंगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/6)

जिस समय महाभारत युद्ध समाप्त हुआ, उस समय मेरा शरीर माँ उत्तरा के उदर में था । जब अश्वत्थामा ने पाँचों पाण्डवों के पुत्रों को मार डाला, तब द्रौपदी बहुत विलाप करने लगी थी । उन्हें रोते देख अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं उस ब्राह्मण अधम आततायी का सिर काटकर लाऊँगा तब तुम उसके ऊपर खड़ी होकर स्नान करना । उस समय मैं तेरे आँसू पोछूँगा ।' अश्वत्थामा का पीछा किया गया । उसे पकड़ कर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के सामने लाये । पाशबद्ध पशु के समान अश्वत्थामा को खड़ा कर दिया गिया । महाराज युधिष्ठिर की सभा में द्रौपदी ने जैसे ही गुरु पुत्र अश्वत्थामा को देखा तो उसका मस्तक झुक गया ।

'वामा स्वभावात् कृपया ननाम च' । (श्रीमद्भागवत 1/7/42)

सुन्दर स्वभाववाली द्रौपदी ने उसे नमस्कार किया और कहा - **'मुच्यतामुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः।'**(श्रीमद्भागवत 1/7/43) इसे छोड़ दो-छोड़ दो। ब्राह्मण तो हमारे गुरु हैं । जिन द्रोणाचार्य से 'सरहस्यो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धनुर्वेदः, सविसर्गोपसंयमः' आप ने सीखा है, वे ही द्रोणाचार्य के पुत्र के रूप में हैं । मैं तो अपने बेटों के लिये रो ही रही हूँ, इसकी माँ न रोये । ब्राह्मण के रोने से सर्वनाश हो जाता है । राजा युधिष्ठिर बोले - 'छोड़ दो' नकुल सहदेव भी बोले - 'छोड़ दो' लेकिन भीम ने लाल-लाल नेत्र करके कहा-'नहीं' **'तस्य श्रेयान् वधःस्मृतः'** (श्रीमद्भागवत 1/7/51) इसका तो वध ही उचित है । इसने जो जघन्य कृत्य किया है, उससे न इसके स्वामी का कार्य हुआ और न इसका कोई कार्य हुआ।'

भगवान् ने अर्जुन की ओर देखकर कहा - 'ब्राह्मण को शारीरिक या मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिये, किन्तु आततायी का वध अवश्य करना चाहिये और दोनों ही इसके साथ हैं । तू दोनों का पालन कर ।' भगवान् के संकेत को अर्जुन समझ गया । उसने अपने धनुष की नोंक से उस ब्राह्मण के मस्तक पर स्थित मणि को निकाल लिया और उसे छोड़ दिया। उसे घर से बाहर कर दिया ।

अपमान से क्रोधित होकर अश्वत्थामा ने ब्रह्मशीर्ष नाम के शस्त्र के पाँच बाण पाँचों पाण्डवों के लिये और छठवाँ बाण उत्तरा के गर्भ को लक्ष्य करके छोड़ा तो पाण्डवों ने अपनी रक्षा कर ली किन्तु बेचारी उत्तरा घबरा गयी । भगवान् हस्तिनापुर से द्वारका की ओर जा रहे थे। अपने केश को खोले उत्तरा दौड़ी - 'त्राहि त्राहि महायोगिन्! बचाओ-बचाओ। मेरी ओर उल्का के समान जलता हुआ एक लोहा चला आ रहा है ।

कामं दहतु मां नाथ, मा मे गर्भो निपात्यताम्'

(श्रीमद्भागवत 1/8/10)

'हे नाथ ! भले ही यह मुझे मार डाले लेकिन मेरे गर्भ का नाश नहीं होना चाहिये ।' भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि ब्रह्मशीर्ष चला आ रहा है। उन्होंने उस बालक की रक्षा के लिये उसके गर्भ में प्रवेश किया और सुदर्शन चक्र से उस ब्रह्मशीर्ष को निष्फल बना दिया । भगवान् अंगुष्ठ प्रमाण स्वरूप धारण करके गर्भ में उस बालक की तब तक रक्षा करते रहे, जब तक कि उस बालक का जन्म नहीं हो गया ।

कहीं तो यह कथा आती है कि बालक मरा हुआ उत्पन्न हुआ था। वह ब्रह्मशीर्ष के तेज से जला हुआ था।परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे पुनः जीवित कर दिया । इस तरह जिन्होंने मेरी रक्षा की उन भगवान् श्रीकृष्ण के परम पावन चरित्र को हमें सुनाइये ।' शुकदेवजी बोले - 'आप भोजन तो कर लें । भूखे रहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चार दिन बीत गये हैं । आपने पानी तक नहीं पिया है ।' राज परीक्षित् बोले -

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/13)

भूख बड़ी दुष्ट होती है । मैंने तो जल भी छोड़ दिया है । लेकिन मुझे कोई बाधा नहीं हो रही है क्योंकि आपके मुखकमल से मैं हरिकथा रूपी अमृत का जो पान कर रहा हूँ, उसी से मैं तृप्त हो रहा हूँ । यदि हमें आप जीवित रखना चाहते हैं, तो जो हमें आप अमृत पिला रहे हैं, उसको पिलाना बन्द मत कीजिए। मुझे भगवान् की कथा सुनाते ही जाइए। भूख बहुत कठिन होती हैं । इसकी कथा आती है कि जब गान्धारी के सब पुत्र मर गए तब गान्धारी अपने पुत्रों के मृत शरीरों के बीच में बैठकर विलाप करने लगी । उसे बहुत समझाया गया - 'तुम चलो उठो भोजन करो, स्नान करो । वह बोली - 'अब तो न मैं नहाऊँगी और न भोजन करूँगी । जब मेरे बेटे ही मर गए तो मैं जी करके क्या करूँगी?' भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे समझाने आए, पर गान्धारी नहीं मानी । भगवान् मुस्कुराते हुए अपनी माया छोड़कर चले गए । तभी गान्धारी को जोरों की भूख लगी। उससे रहा नहीं गया । उसने अपनी आँख की पट्टी हटाकर देखा कि कहीं कुछ खाने को हो तो खाऊँ । वहाँ बेर का एक पेड़ लगा था, जिसमें पके बेर लगे हुए थे। उसने उस पेड़ के पास जाकर बेर तोड़ने का मन बनाया । परन्तु उसकी डाल ऊँची थी । उसने अपने बेटों की लाश एक ऊपर एक रखकर ऊँचा चबूतरा बनाया । वह अपने बेटों की लाश के उसी चबूतरे पर चढ़कर बेर तोड़ने जा ही रही थी कि इतने में वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण आ गए । वे बोले -'गान्धारी ! क्या कर रही हो ?' गान्धारी लज्जित होकर बोली -

'वासुदेव जरा कष्टं कष्टं निर्धनंजीवितम्।
पुत्रशोकं महाकष्टं कष्टात् कष्टतरा क्षुधा॥ (सुभाषित)

अर्थात् हे वासुदेव ! बुढ़ापा सबसे बड़ा कष्ट है । उससे भी बड़ा कष्ट निर्धन जीवन है । पुत्र शोक तो बड़ा कष्ट है लेकिन आज मेरी समझ में आया कि सबसे बड़ा कष्ट भूख है ।'

ऐसी क्षुधा के रहते हुए भी राजा परीक्षित् बोले - 'महाराज आपके मुखकमल से हरि की कथा रूपी अमृत रस पान करते हुए मुझे भूख प्यास कुछ नहीं लग रही है ।'प्रसन्नतापूर्वक शुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित् की प्रशंसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हुए बोले - 'मथुरा में शूरसेन नाम के यदुपति मथुरा में निवास करते हुए माथुर देशों का पालन करते थे । वह मथुरा नगरी जिसमें भगवान् का सदा सन्निवास रहता है, वह नगरी यदुवंशी राजाओं की राजधानी बन गई । यह उस समय की कथा है जबकि मथुरा में उग्रसेन नाम के राजा राज्य करते थे । उग्रसेन जी बेचारे असमर्थ राजा थे । उस समय पृथ्वी क्षत्रियों के बहाने दैत्यों के भार से अत्यधिक पीड़ित हो थी -

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/17)

राजाओं के बहाने दैत्यों की सेना में बहुत गर्वीले दैत्य थे। वे सभी राजा पूर्वजन्म के दैत्य थे । पृथ्वी को इनका भार सहन नहीं हुआ । पृथ्वी कहती है-

गिरि सर सिन्धु भार नहिं मोही ।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥ (रामचरितमानस)

पृथ्वी को पर्वत, सागर और नदियों का भार उतना नहीं होता, जितना दूसरों के साथ द्रोह करने वालों का होता है । दैत्य दूसरों के साथ द्रोह ही करते थे -

पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद॥ (रामचरितमानस)

गोस्वामीजी ने कहा है कि जो दूसरों से द्रोह करते हैं, दूसरों की स्त्रियों में निरत रहते हैं, दूसरों का धन छीनते हैं, दूसरों की निन्दा करते है, वे पामर मनुष्य पापमय होते हैं । भले ही इनका शरीर मनुष्य जैसा हो, लेकिन हैं तो ये दैत्य ही। इनसे बेचारी पृथ्वी बहुत पीड़ित हुई।

प्रत्येक आधिभौतिक व्यक्ति का एक अधिदेवता होता है । पृथ्वी का भी आधिदेवता है, जिसे हम पृथ्वी देवी कहते हैं । भार से पीड़ित होकर पृथ्वी ब्रह्मा की शरण में गयी । यदि लड़का गड़बड़ निकलता है, तो पिता को उलाहना मिलता है । बेटी यदि गड़बड़ निकलती है तो माँ को उलाहना मिलती है। सास के साथ यदि बहू दुष्टता करती है तो वह सास उससे पूछती है - 'क्या तेरी माँ ने यही सिखाया था ?' वह बाप का नाम नहीं लेती । ब्रह्मा जी सबके बाप हैं। इसलिए पृथ्वी दैत्य बेटों की शिकायत लेकर ब्रह्मा जी के पास पहुँची और बोली- 'आपने इन्हें जन्म दिया है, ये हमारे लिए भार बने हुए हैं -

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/18)

ब्रह्माजी के पास जाकर पृथ्वी ने अपना दुःख रो-रो कर सुनाया । गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसका अनुवाद किया है -

सुर नर गन्धर्वा मिलि कर सर्वा गे विरंचि के लोका।
संग गोतनधारी भूमि बिचारी परम विकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरौ तोर सहाई॥

(रामचरितमानस)

ब्रह्माजी के नेतृत्व में सभी देवता शंकरजी सहित क्षीर समुद्र के किनारे गए । वहाँ भगवान् विष्णु समुद्र में शेषनाग की शैय्या पर विश्राम कर रहे हैं -

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/20)

ब्रह्माजी ने भगवान् देवदेव वृषाकपि श्रीमन्नारायण पुरुष का पुरुषसूक्त से उपस्थापन किया । भगवान् ने आकाशवाणी से देवताओं को आदेश दिया -

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/21)

आपकी आकाशवाणी तो कोई भी सुन लेता है। रेडियों गड़बड़ हो तो आवाज साफ नहीं होती । उसी प्रकार जिसका मन अपवित्र है, वासनाओं से पूरित है, वह भगवान् की आवाज नहीं सुन पाता । भगवान् सभी मनुष्य को प्रेरणा देते हैं । लेकिन उनकी प्रेरणा उसी की समझ में आती है, जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है । उसी स्लेट पर कोई अक्षर साफ आता है, जिस पर के पहले के अक्षर मिटाये होते हैं। जिस पर पहले से ही कुछ लिखा हो और उस पर लिख दो तो लिखावट का क्या पता लगता है ?

भगवान् की उस आकाशवाणी को ब्रह्मा ने सुना। फिर उन्होंने देवताओं से कहा कि भगवान् कह रहे हैं - 'हमने पहले ही पृथ्वी के दुःख को समझ लिया है । उसके दुःख के निवारण के लिये हमारा संकल्प हो चुका है । आप लोग भी अपने अंशों से यदुकुल में अवतार लें ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् की **'वासुदेव कलाऽनन्तः सहस्रवदनः स्वराट्'** (श्रीमद्भागवत 10/1/24) भगवान् का प्रिय करने के लिये उनसे आगे अवतार लेंगे । भगवान् विष्णु की जगमोहिनी माया उनका कार्य करने के लिये पहले ही अवतार ले लेगी । भगवान् कुछ समय तक व्रज में निवास करेंगे । इसलिये भगवान् का मनोरंजन करने के लिये वहाँ देवांगनाएँ भी जन्म धारण करें ।'

इस प्रकार भगवान् ने जो आकाशवाणी में कहा था, उन सभी वाणी को ब्रह्माजी ने देवताओं को सुनाया और पृथ्वी को समझाया -

धरनि धरहु मनधीर, कह विरंचि हरि पद सुमिरि।
जानहिं जन की भीर, प्रभु भंजहि दारुन विपति।।(रामचरितमानस)

'हे धरनी ! तू धीरज धारण कर । प्रभु के चरण-कमलों का ध्यान कर । वे भक्तों की पीड़ा को जानते हैं । वे उस पीड़ा का शीघ्र ही निवारण करेंगे ।'

पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी ने सबको विदा किया । इधर शूरसेन के राज्य में जो चरित्र हो रहा है उसका वर्णन करते हुए शुकदेवजी कह रहे हैं कि 'उग्रसेन के एक भाई थे, जिनका नाम देवक था । उस देवक की कन्या देवकी थी । देवकी का वसुदेवजी से विधि-विधान सहित विवाह हुआ । उग्रसेन उस से बड़ा स्नेह रखता था । इसलिये बहन की विदाई के समय देवकी वसुदेव को बड़े ही लाड़-प्यार से रथ में बैठाकर हाथ में घोड़ों की रास लेकर कंस स्वयं वसुदेवजी को घर पहुँचाने चला। इनके इस प्रकार के प्रेम को देखकर रास्ते में ही आकाशवाणी हुई -

'अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध । (श्रीमद्भागवत 10/1/34)

'अरे मूर्ख ! जिसे तू इतने प्रेम से पहुँचाने के लिये ले जा रहा है, इसका आठवाँ गर्भ तुझे मारने वाला होगा ।' यह सुनते ही कंस का प्रेम छूमंतर हो गया ।

दामिनि दमक रहन घन माहीं ।
खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ।। (रामचरितमानस कि.का.)

खलों का प्रेम स्थिर नहीं होता । जब कंस ने यह आकाशवाणी सुनी कि इसका आठवाँ गर्भ मुझे मारने वाला होगा तो उसने तुरन्त म्यान से अपना खड्ग निकाला और देवकी का सिर काटने को तैयार हो गया। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी । जब यही नहीं रहेगी तो आठवाँ गर्भ कहाँ से आयेगा । वसुदेवजी ने देखा कि कंस तो देवकी को मार ही डालने पर उतारू है । उन्होंने बड़ी ही नम्रता और प्रेमपूर्वक उसे समझाना प्रारम्भ किया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः।
स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/37)

'हे महाराज कंस ! आप शूरों में श्लाघनीय गुण वाले हैं । भोजों के यश को बढ़ाने वाले हैं । आप जैसा शूर-वीर स्त्री को मारे, यह आपके अनुरूप नहीं । वह भी स्त्रियों में अपनी छोटी बहन है तथा वह भी विवाह के पवित्र पर्व में जो एक प्रकार से भगवती का रूप बन गयी है । ऐसे समय में इसकी हत्या अनुचित है ।'कंस बोला - 'यह मेरी बहन नहीं है । यह तो मेरी मौत है। मैं तो अपनी मौत को मार रहा हूँ ।' वसुदेवजी बोले -

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/1/38)

'हे वीर ! मनुष्य के जन्म के साथ-साथ उसकी मृत्यु भी जन्म ले लेती है । चाहे आज हो चाहे सौ वर्ष पश्चात् मृत्य तो निश्चित है ।' उसने कहा - 'कहाँ सौ वर्ष पश्चात् होगी वह तो अभी होने वाली है ।' वासुदेवजी समझाये - 'मृत्यु से जीव का नाश नहीं होता । वह जीव तो बना ही होता है ।' कंस बोला - 'हमारा शरीर तो नहीं रहेगा ।' वसुदेव जी बोले - 'शरीर भी बन जायेगा । जैसे कोई अपने पलंग पर सोकर स्वप्न देखता है तो उसका शरीर तो पलंग पर ही पड़ा रहता है, लेकिन स्वप्न में नया शरीर मिल जाता है । उसी प्रकार वासना के पश्चात् यह शरीर छूटने के बाद दूसरा शरीर मिल जाता है । आत्मा कभी नष्ट नहीं होता। शरीर नश्वर है । इसलिये तुम शरीर के लिये इतना बड़ा पाप मत करो ।' कंस ने कहा - 'हमें तुम्हारा ज्ञान ध्यान नहीं सुनना है । हमें तो मारना है ।' वसुदेवजी ने मन में सोचा कि मृत्यु को किसी तरह से बुद्धिमत्तापूर्वक टालना चाहिये । मैं इसको वचन दे देता हूँ । इस तरह अभी तो इसके प्राण बचाये लेता हूँ । हो सकता है इसके पुत्र ही न हों या मेरे पुत्रों के होने तक यही मर जाय । कहीं ऐसा न हो कि मेरा पुत्र ही इसको मार डाले ।' वे बोले - 'कंस ! यह बताओ, तुम्हें देवकी से डर है या इसके पुत्रों से डर है ?' कंस बोला - 'इसके पुत्रों से ।' वसुदेव बोले - 'हम वचन देते हैं कि इसके जो भी पुत्र होंगे वह हम आपको सौंप देंगे ।' कंस ने कहा - 'ठीक है, इसे ले जाओ ।'

वसुदेव किसी तरह देवकी के प्राण बचाकर अपने घर ले गये । कुछ समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद देवकी का प्रसव हुआ और कीर्तिवान् नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । वसुदेवजी अपने वचन के पक्के थे, धर्मनिष्ठ थे । वह बिना किसी प्रकार का मोह किये, उस बालक को अपनी गोद में लेकर कंस के पास आये और बोले - 'महाराज! यह देवकी का प्रथम पुत्र है ।' कंस ने उस बालक का मुँह देखा और बोला - 'इससे हमें भय नहीं है, आठवें गर्भ से भय है ।' वसुदेवजी उस बालक को लेकर लौट ही रहे थे- 'परंतु '

अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयङ्करः' (नीति)

अव्यवस्थित चित्तवालों का कोई ठिकाना नहीं रहता, कब क्या हो जाय। बेचारे वसुदेवजी जा ही रहे थे कि वीणा बजाते तथा हरिगुण गाते हुए वहाँ नारद पधार गये । उन्होंने कंस से पूछा -'क्या सोच रहे हो ?' कंस ने कहा - 'महाराजजी ! सोच रहा हूँ कि इस समय यदि सज्जन पुरुष हैं तो वसुदेवजी ह। अपने वचन के पक्के हैं। उन्होंने हमें वचन दिया था कि देवकी का बालक हम तुम्हें सौंप देंगे। उन्होंने अपने वचन के अनुसार बालक लाकर हमें सौंप दिया । नारदजी ने पूछा - 'तुमने क्या किया ?' कंस ने कहा - 'महाराज! हमने छोड़ दिया ।' नारदजी ने कहा- 'ठीक है ।' उनके हाथ में एक कमल का फूल था, उसमें आठ पंखुड़ियाँ थीं । वे बोले - 'इसमें आठवाँ कौन है? कहाँ से गिनोगे क्या तुम्हें पता है ? तुम पहले जन्म में कालनेमि थे । अब तुम कंस के रूप में जन्मे हो । तुमको मारने के लिये देवताओं ने भगवान् से प्रार्थना की है । भगवान् विष्णु देवकी के उदर से अवतार लेने वाले हैं । वसुदेव, देवकी आदि जितने भी यदुवंशी हैं, वे सब देवता हैं। इन्होंने यहाँ पर अवतार लिया है ।' कंस ने वसुदेव को बुलवाया । वे कंस के पास आये । कंस ने उनके हाथ से बालक को लेकर पटक कर ऐसे मारा जैसे कोई पत्थर पर कपड़े पटकता है । उसके बाद देवकी और वसुदेव को कारागार में डाल दिया ।

उग्रसेन ने आपत्ति की तो राजा उग्रसेन को भी कारागार में डाल दिया और स्वयं राजा बन बैठा । उसने अपना मन्त्रिमण्डल तैयार किया। जरासन्ध, बाणासुर, अघासुर, नरकासुर आदि से मित्रता स्थापित करके मथुरा में राज्य करने लगा । वह यदुवंशियों को पीड़ा देने लगा । बहुत से बेचारे यदुवंशी भाग गये तथा कुछ उसकी हाँ में हाँ मिलाकर रहने लगे ।

इस प्रकार देवकी को क्रमशः पुत्र होते गये । उसने देवकी के छः पुत्र मार डाले । उनका सातवाँ पुत्र गर्भ में आया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः॥ (श्रीमद्भागवत 10/2/5)

भगवान् विष्णु के धाम को अनन्त कहते हैं । भगवान् का आसन, भगवान् का सिंहासन शेषनाग है । वे सभी अपने अंश से अवतार लेकर उसी तरह पहले आ गये हैं जैसे किसी महापुरुष के आने के पहले उनका सिंहासन आ जाता है ।

पहले जन्म में शेषनागजी भगवान् राम के छोटे भाई लक्ष्मण थे। भगवान् के किसी-किसी निर्णय से उनको जरा असन्तोष हुआ करता था। इस बार भगवान् विष्णु ने शेषनाग को कहा - 'अबकी बड़ा भाई तुम ही बन जाओ ।' जब सातवाँ गर्भ देवकी के उदर में आया तो **'हर्षशोकविवर्धनः'**। देवकी के हृदय में हर्ष और शोक दोनों हुआ । हर्ष इस बात का था कि अब आठवाँ आने वाला है । शोक इस बात का था कि छः पुत्र मारे गये । उसी तरह यह भी मारा जायगा ।

भगवान् श्रीमन्नारायण ने भक्तों के दुःख को पहले ही से अनुमान करके अपनी योगमाया को बुलाया और कहा -

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम्।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले॥
(श्रीमद्भागवत 10/2/7)

'हे भद्रे ! तुम गोप-गोपी से अलंकृत व्रज में जाओ । वहाँ वसुदेवजी की एक भार्या रोहिणी है । वह नन्दजी के घर में छिप कर रह रही है । देवकी के सातवें गर्भ को उसके उदर से निकलकर रोहिणी के उदर में डाल दो । तुम स्वयं नन्द की पत्नी यशोदा से अवतार धारण करो ।

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामेश्वरेश्वरीम्।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥ (श्रीमद्भागवत 10/2/10)

तुम समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली होगी । मनुष्य लोक तुम्हारी अर्चना करेगा । तुम्हारे बड़े-बड़े मन्दिर बनेंगे । दुर्गा, भद्रकाली, नारायणी, शारदा, अम्बिका ये तुम्हारे नाम होंगे ।

अब आठवें गर्भ का अवसर आया । सामान्य पुरुषों की तरह भगवान् का गर्भाधान नहीं हुआ । भगवान् के जन्म एवं कर्म दिव्य होते है -

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(श्रीमद्भगवद्गीता 4/9)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं - 'अर्जुन ! जो मेरे दिव्य जन्म के कर्मों को जानता है, वह शरीर का त्याग करके पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता । वह मुझे ही प्राप्त होता है । भगवान् सबसे पहले वसुदेव के मन में आये -

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः॥ (श्रीमद्भागवत 10/2/16)

विश्वात्मा भगवान् भक्तों को अभय देने वाले अंश भाग से **'आनकदुन्दुभे'** वसुदेव के मन में आये । जब भगवान् वसुदेवजी के मन में आये तब पुरुषतेज धारण करने के कारण वसुदेव का मुखमण्डल इतना तेजस्वी हो गया कि कोई उनकी तरफ देख भी नहीं सकता था। उनके मुख का तेज सूर्य के समान हो गया । उसके अनन्तर -

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी॥
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः।

(श्रीमद्भागवत 10/2/18)

जगत् का मंगल करने वाले ईश्वर का अंश जो वसुदेवजी के मन में आ गया था, उस अंश को वसुदेवजी के द्वारा देवकी ने अपने मन में धारण किया । अर्थात् दीक्षा कर्म से भगवान् वसुदेव के मन से देवकी के मन में आये ।

चार प्रकार की दीक्षाएँ हमारे शास्त्रों में बतायी गयी हैं -

(1) **मान्त्रिकी दीक्षा** - गुरु अपने शिष्य को जिस मन्त्र का उपदेश देकर दीक्षा देते हैं, वह दीक्षा मान्त्रिकी होती है ।

(2) **स्पर्श दीक्षा** - गुरु अपना कर कमल शिष्य के मस्तक पर रखकर उसका कल्याण करता है, वह स्पर्श दीक्षा होती है ।

(3) **काटाक्षी दीक्षा** - गुरु अपनी करुणामयी आँखों से शिष्य की ओर देखकर उसका कल्याण करता है, वह काटाक्षी दीक्षा कहलाती है।

(4) **मानसी दीक्षा** - जब शक्तिमान् गुरु मन से ही शिष्य का कल्याण कर देता है तो उसे मानसी दीक्षा कहते हैं ।

इसके अलग-अलग उदाहरण हैं । स्पर्श दीक्षा का उदाहरण पक्षी है । वह स्पर्श करके अपने अंडों को बढ़ाता है । काटाक्षी, दीक्षा का उदाहरण मछली है । मछली अपने अण्डों को छूती नहीं है, केवल प्यार से देखती है । उसी से वे बढ़ जाते हैं । मानसी दीक्षा का उदाहरण कछुआ, जो पानी में रहता है और अण्डे रखता है नदी के किनारे, और पानी में घूमते हुए अण्डों का स्मरण करते-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते उसे बढ़ा देता है । 'मनस्तः' मन से मन को धारण किया ।

इस प्रकार देवकी के मन में भगवान् श्यामसुन्दर आये तो देवकी का भी तेज बढ़ने लगा । कंस का अंधेरों से भरा कारागार जगमगा उठा। कंस स्वयं देवकी की खबर लेने आता था । जब उसने देवकी के मुखमण्डल का तेज देखा, तब उसने मन में सोचा - ओहो, आ गया हरि और कंस को क्रोध आ गया । पहले तो ऐसी नहीं थी, ऐसी अवस्था में मैं अब क्या करूँ ? **'यदर्थ तन्त्रो न विहन्ति विक्रमं'** क्या मैं अभी देवकी को मार डालूँ ? उसने देवकी को मारने के लिये खड्ग उठाया । फिर सोचा जैसे नरसिंह भगवान् खम्भा फाड़कर पैदा हो गये थे, वैसे ही यदि देवकी का पेट फाड़कर यह प्रकट हो गया, तब हमको तो मार ही डालेगा। इसको मारता हूँ तो संसार कहेगा । देखो, अपनी बहन को मारने जा रहा था, स्वयं मारा गया । हमको लोग और भी गाली देंगे । मरने के बाद जिसको लोग गाली देते हैं, उसे निश्चय ही नरक मिलता है । अन्त में कंस ने सोचा इसे जन्म ले लेने दो फिर मारेंगे । फिर उसने सोचा कि जन्म लेने के साथ ही इसे मार डालेंगे । इसे बड़ा होने ही नहीं देंगे । उसने पहरेदारों को सावधान किया और बोला - 'देखो, बहुत सावधानीपूर्वक पहरा दो और जैसे ही देवकी को प्रसव हो चाहे दिन हो चाहे रात हो, सीधे मेरे पास आकर सूचना देना ।' यह कहकर वह चला गया । बैठे हुए, पीते हुए, खाते हुए, सोते हुए उसको भगवान् श्रीकृष्ण का ही स्मरण होता रहा -

चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ।

(श्रीमद्भागवत 10/2/24)

पैदा हुआ, अब मारा, अब मारा । बस, हमेशा यही ध्यान में रहता। इधर जब भगवान् देवकी के उदर में आये -

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः।
देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन्॥

(श्रीमद्भागवत 10/2/25)

ब्रह्मा, शंकर, नारदादि मुनियों सहित कंस के कारागार में आकर इच्छित विषय को देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे -

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

(श्रीमद्भागवत 10/2/26)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवता साक्षी हुए । उन्होंने सोचा कि कहीं भगवान् जन्म लेकर भूल न जायँ । कहते हैं - 'महाराज ! **'सत्यव्रतं'** आपका संकल्प सत्य होता है।' **'सत्यपरं'** सत्य ही आपकी प्रप्ति का साधन है । तीनों काल में आप सत्य हैं - **'त्रिसत्यं'** आप सत्य की योनि हैं **'त्रिसत्यं'**। सत्य माने पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा योनि माने कारण होता है । आपसे ही ये उत्पन्न होते हैं । सत्य आचरण में ही आप निवास करते हैं। **'सत्यस्य सत्यं'** जो संसार की सत्यता है, वह संसार की सत्यता नहीं है। वह आपके सत्य से सत्य प्रतीत होता है ।

जासु सत्यता ते जड़ माया ।
भाष सत्य इव मोह निकाया॥ (रामचरितमानस)

'ऋतसत्यनेत्रं सत्यं तु समदर्शनम्' कोमल वाणी को ऋत कहते हैं। समदर्शन को सत्य कहते हैं । ये दो आपके नेत्र हैं । ऐसे आप सत्यात्मक हैं, हम आपकी शरण में हैं ।'

भगवान् का यह संसार एक वृक्ष है । इसका एक ही उत्पत्ति स्थान है। इसकी तीन जड़ें हैं । चार इसके रस हैं । इसके पाँच प्रकार हैं । इसके छः स्कन्ध हैं । सात इसकी छाले हैं । आठ इसकी डाले हैं । नौ इसके छिद्र हैं और दस इसमें पत्ते हैं । इस पर दो पक्षी हैं ।

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥
(श्रीमद्भागवत 10/2/27)

इसके दो फल सुख और दुःख हैं । इसकी तीन जड़ें सत्त्व, रज एवं तम हैं । इसके चार रस धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है । इसके पाँच प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं । इसके छः स्कन्ध जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यते । इसके सात तत्व रस, रक्त, मज्जा, मेद, मांस, अस्थि, शुक्र शरीर की सात धातुएँ हैं -

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता 7/4)

भूमि, जल, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ इसकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं । शरीर के नौ छिद्र ही इसके नौ द्वार हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके दस पत्ते हैं । जीव और ईश्वर ये दो इसके पक्षी हैं।

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्माययया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये॥

(श्रीमद्भागवत 10/2/28)

आप ही इस उत्पत्ति के कारण हैं । आप में ही यह रहता है। यह आप ही द्वारा संचालित, अनुग्रहीत है । अन्त में यह आप में ही विलय हो जाता है । इसलिये यह आपसे भिन्न नहीं है । आप की माया से जिनका ज्ञान ढक गया है, वे इस संसार को भेद-दृष्टि से देखते हैं । परन्तु जो विद्वान् हैं, वे इस संसार के प्रति भेद दृष्टि नहीं रखते हैं । अज्ञानी नाना देखते हैं । ज्ञानी मामा देखते हैं । नाना माने भिन्न-भिन्न और मामा माने कुछ नहीं ।

आपके भक्त इस संसार सागर से सहज तर जाते हैं। परन्तु जो ज्ञान के मान में मतवाले हो रहे हैं, आपकी भक्ति का जो अनादर करते हैं, वह परमपद के निकट जाकर भी वहाँ पतित हो जाते हैं, क्योंकि वे आपके चरणों का अनादर करते हैं । लेकिन आपके भक्त निर्भय होकर विचरण करते हैं । भगवन्! यदि आपका अवतार न होता तो परमात्मा के स्वरूप का मात्र अनुमान ही हो पाता, साक्षात्कार न होता । तब तो केवल यही होता कि यह संसार किसी के लिये है। किसी के द्वारा इसका ज्ञान होता है। आत्मा का अनुमान इस प्रकार होता है - जो वस्तु संघात होती है, वह परार्थ होती है । कई चीजों से मिलने वाली वस्तु अपने ही लिये नहीं होती । अपने से किसी भिन्न के लिये होती है । शैय्या, प्रसार, बिस्तर, पलंग, उसके पाये, निवार, गद्दा, तकिया आदि वे सब कुछ उसके अपने लिये नहीं है । सोने वाले के लिये है। ईंट, पत्थर, सीमेन्ट, लोहे, और लकड़ी से बनने वाले मकान भी अपने लिये नहीं होते । मकान किसी रहने वालों के लिये होता है । पाँच तत्वों से बना यह शरीर संघात है । यह शरीर किसी और के लिये है । वह इससे भिन्न है । वह चेतन विलक्षण है ।

इसी तरह ये ज्ञानेन्द्रियाँ - आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा अपने लिये नहीं दूसरों के लिये हैं । आँखें अपने लिये नहीं देखतीं । कान अपने लिये नहीं सुनते । नाक अपने लिये नहीं सूँघता । जिह्वा अपने लिये स्वाद नहीं लेती। त्वचा अपने लिये स्पर्श नहीं करती । ये सभी किसी अन्य विलक्षण के लिये कार्य करते हैं । इसी प्रकार अन्तःकरण भी जड़ है । इन्द्रियाँ जड़ हैं । किसी चेतन के प्रकाश से प्रकाशित होकर ही ये इन्द्रियाँ और यह मन अपने-अपने विषय का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाश करते हैं । वह कोई अन्य ही विलक्षण चेतन है। इतना तो हो ही जाता है । परन्तु उस विलक्षण का साक्षात्कार तभी होता है जबकि हमारा मन पूर्णरूपेण शान्त हो जाय, समाधिस्थ हो जाय और यह तभी सम्भव है, जब कोई भगवान् के सगुण साकार स्वरूप का ध्यान करता है, जब उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, तब उसका साक्षात्कार होता है ।' देवताओं ने भगवान् की स्तुति की ।

अथ सर्वगुणोपेतः कालःपरमशोभनः।

यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्।। (श्रीमद्भागवत 10/3/1)

वह परम शोभन काल आ गया, जो भगवान् श्रीकृष्ण का शुभ जन्म नक्षत्र था । आप सबने तो यह सुना ही होगा कि भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार रोहिणी नक्षत्र में हुआ है । भगवान् ने रोहिणी नक्षत्र क्यों चुना? इसलिये कि वसुदेवजी की दो पत्नियाँ हैं - देवकी और रोहिणी । भगवान् ने सोचा - देवकी से तो हम जन्म ले ही रहे हैं, रोहिणी को भी यदि माता बना लें तो अच्छा ही रहेगा। इसलिये भगवान् ने रोहिणी नक्षत्र में जन्म लिया।

'यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्'।

उस समय सभी नक्षत्र, ग्रह, तारागण सबके सब शान्त हो गये । उसके बाद सभी तत्वों का संशोधन हो गया । **'दिशः प्रसेदुः'** (श्रीमद्भागवत 10/3/2) दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं क्योंकि पहले ये भगवान् समझे जाते थे ।

देशकाल के अवशेष से अवछिन्न अनन्त चिन्मात्रमूर्ति भगवान् अब दिशाओं में आने वाले हैं । यहाँ से उत्तर दिशा में मथुरा है, जहाँ भगवान् का अवतार होगा । वे ग्वाल-बालों के संग खेलेंगे । संकेत करेंगे कि वे पूरब की ओर गये हैं या पश्चिम की ओर गये हैं । इसलिये भगवान् के अवतार का समय आने पर सभी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । आकाश निर्मल हो गया । तारागण छिटक गये । जैसे किसी महापुरुष के आने पर लोग अपने आँगन में फूल बिखेर देते हैं उसी प्रकार मानो आकाश ने तारों को बिखेर दिया ।

'ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः' (श्रीमद्भागवत 10/3/4) पवित्र गन्ध लेकर शीतल मन्द पवन बहने लगा -

इस प्रकार जब भगवान् के आने का अवसर आया तो -

'अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत' (श्रीमद्भागवत 10/3/4) कंस के डर से ब्राह्मणों के घर की जो अग्नियाँ शान्त हो गयी थीं, कोई अग्निहोत्र नहीं कर सकता था, वे अग्नियाँ अपने आप प्रज्ज्वलित हो उठीं । इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही नहीं, यहाँ तक कि सरोवर और नदियों का जल निर्मल हो गया । सरोवर कमलों को खिलाकर मानो भगवान् के आगमन पर उनके स्वागत की तैयारी करने लगे । जिन ब्राह्मणों के मुख से वेद-ध्वनि नहीं निकल पा रही थी, आज उनका मुख खुल गया। वे भगवान् के आगमन के उपलक्ष्य में वेदमन्त्रों का गान करने लगे।

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः।
द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः॥ (श्रीमद्भागवत 10/3/3)

नदियाँ प्रसन्न सलिलमय हो गयीं । ब्राह्मणों के मुख से वेदध्वनि निकलने लगीं । पक्षी कलरव करने लगे । भूमि पुष्पित हो गयी । वह अनेक प्रकार के फूलों और फलों से पुष्पित होने लगी थीं । सबका मन भी शुद्ध हो गया।

मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्।
जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि॥(श्रीमद्भागवत 10/3/5)

असुरों के द्रोही अथवा जिससे असुर द्रोह करते हैं, ऐसे सज्जनों के मन प्रफुल्लित हो गये । इस प्रकार भगवान् के अवतार के समय सब कुछ प्रसन्न हो गये । जब भगवान् के अवतार का अवसर आया -

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।
मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः॥(श्रीमद्भागवत 10/3/6)

किन्नर और गन्धर्व गान करने लगे । देवता स्तुति करने लगे। मुनि और देव आनन्दित होकर सुमनों की वर्षा करने लगे । देवता सुन्दर फूल बरसाने लगे । मुनियों ने सुन्दर मन की ही वर्षा प्रारम्भ कर दी। भगवान् को समर्पित करने योग्य कौन-सी वस्तु हो सकती है ?

किसी भक्त ने भगवान् श्रीकृष्ण की अर्घ्य, आचमन आदि विविध उपचारों से पूजन करने के पश्चात् दक्षिणा दान के अवसर पर सोचा कि भगवान् को क्या चढ़ाऊँ ? उसके मन को कुछ सूझ ही नहीं रहा था। अन्त में वह भगवान् से पूछ बैठा - 'भगवन् ! मैं आपको क्या चढ़ाऊँ?'

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
गोपालवामनयनार्पितमानसाय दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ।

'रत्नाकर समुद्र आपका घर है । अतः रत्नों की कमी आपके यहाँ कहाँ है ? यदि आपको लक्ष्मी चढ़ाऊँ तो अनन्त ऐश्वर्यों की समस्त ब्रह्माण्डों की अधिष्ठात्री आपकी गृहिणी है । जगत् के आप ईश्वर हैं । आपकी ही वस्तु आपको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूँ, यह धृष्टता की बात होगी ।' भक्त ने काफी सोचने के बाद प्रभु से कहा - 'हाँ, आपके पास एक वस्तु नहीं है । गोपों की वामनयनाओं ने आपके मन को चुरा लिया है। अतः हम अपना मन ही आपको देते हैं ।

गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के मन को चुरा लिया है। सात वर्ष के छोटे से साँवरे सलोने श्रीकृष्ण एक गोपी का आँचल पकड़ कर खींचने लगते हैं । तब वह गोपी डाँट कर कहती है -

मुञ्चाञ्चलं चञ्चल पश्य लोकम् बालोऽसिनालोकयसे कलंकम् ।
भावं न जानासि हि कामनीनां गोपाल गोपालन पण्डितोऽसि ॥

'अरे गोपाल ! तू विलासिनियों के भाव को समझता नहीं है । तू निरा गोपाल ही है । तू पण्डित नहीं है ।' इस प्रकार गोपियों ने आपके मन को चुरा लिया है । इसलिये मैं आपको अपना मन समर्पित कर रहा हूँ । कृपा करके इसको ग्रहण कर लीजिये ।' देवताओं ने सुमन बरसाये तो मुनियों ने अपना सुन्दर मन भगवान् के प्रति बरसा दिया ।

मूमचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम्॥ (श्रीमद्भागवत 10/3/7)

मेघ समुद्र के पास जाकर मन्द-मन्द गरजने लगे। ऐसा क्यों? क्योंकि वे मानो समुद्र से कह रहे थे - 'भगवान् का दर्शन कराओ।'

समुद्र कहता था - 'भागो यहाँ से, भगवान् विश्राम कर रहे हैं।' सबका एक समय आता है । मेघ गरज-गरज कर कह रहे हैं कि अब भगवान् व्रज में आ रहे हैं । जब वे गौ चराने जायेंगे तब हम उन पर छाया करेंगे । जब वे थक जायेंगे तब हम नन्हीं-नन्हीं बूँदें बरसा कर उनके श्रम का अपनोदन करेंगे । जब कोई उनके अंग की उपमा देगा तब वह कहेगा 'घनश्याम' अर्थात् हमसे उनकी उपमा दी जायेगी । अब हमारा समय आ रहा है । जब घोर निशा थी । अन्धकार में ही प्रकाश होता है और वही अन्धकार प्रकाश का मूल होता है । भगवान् सोमवंश में अवतीर्ण हो रहे हैं। इसलिये प्रभु ने रात्रि का समय चुना । गुजरात में श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी और दूसरे क्षेत्रों में भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि के समय जब सारे संसार में अन्धकार व्याप्त था--'

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।'

(श्रीमद्भागवत 10/3/8)

सब प्राणियों के हृदयरूपी गुहा में निवास करने वाले भगवान् विष्णु ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवरूपिणी देवकी से अर्धरात्रि में उसी प्रकार प्रकट हो गये जैसे पूर्व की दिशा में पूर्ण चन्द्रमा का उदय होता है । वसुदेवजी ने देखा - ओ हो !

'तमद्भुतं बालकमम्बुजक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।'
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/3/9)

कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले इस अद्भुत बालक के सुन्दर लावण्यमय शरीर पर आँखें टिक नहीं पा रही थीं। उस बालक के कमल के समान नेत्रों की काली पुतलियाँ भ्रमर जैसी लग रही हैं । अपनी चारो भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किया हुआ यह अद्भुत बालक भगवान् विष्णु ही है । उनका इतना अद्भुत स्वरूप है, उन्हें देखकर भगवान् स्वयं मुग्ध हो जाते हैं । मानो यह बालक सब कुछ खा जाने वाला है । श्रुति कहती है - **यस्त ब्रह्मसत** । चराचर को ग्रहण कर लेने वाला यह अद्भुत बालक है । इतना ही नहीं - **'पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्'** सुन्दर नवीन मेघ के समान अंग वाले ये भगवान् पीताम्बर धारण किये हुए हैं । इनके कानों में कुण्डल है। मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट धारण किये हुए हैं । हाथों में कंगन है । भुजाओं में अंगद है । पगों में नुपूर है । गले में वनमाला है । वसुदेवजीने इस रूप में भगवान् के अद्भुत स्वरूप को देखा । आप सोचें, यदि ऐसा कोई बालक जन्म लेता है तो वह अद्भुत ही कहा जायगा । वसुदेवजी प्रसन्न हो गये -

जाकर नाम सुनत सुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानन्द पूरि मन राजा । कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥

(रामचरितमानस)

इधर बाजा बजवाने को कहा । उधर उन्होंने स्नान किया और दस हजार गायों के दान का संकल्प लिया । अब भगवान् का अवतार हो गया। इसलिये थोड़ी देर के लिये भजन कर लीजिये । बोलिये - श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

नन्द के आनन्द भयो जय कन्हैया लाल की ।
हाथी घोड़ा पालकी जय कन्हैया लाल की ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: IKS-MoE-Grant-2

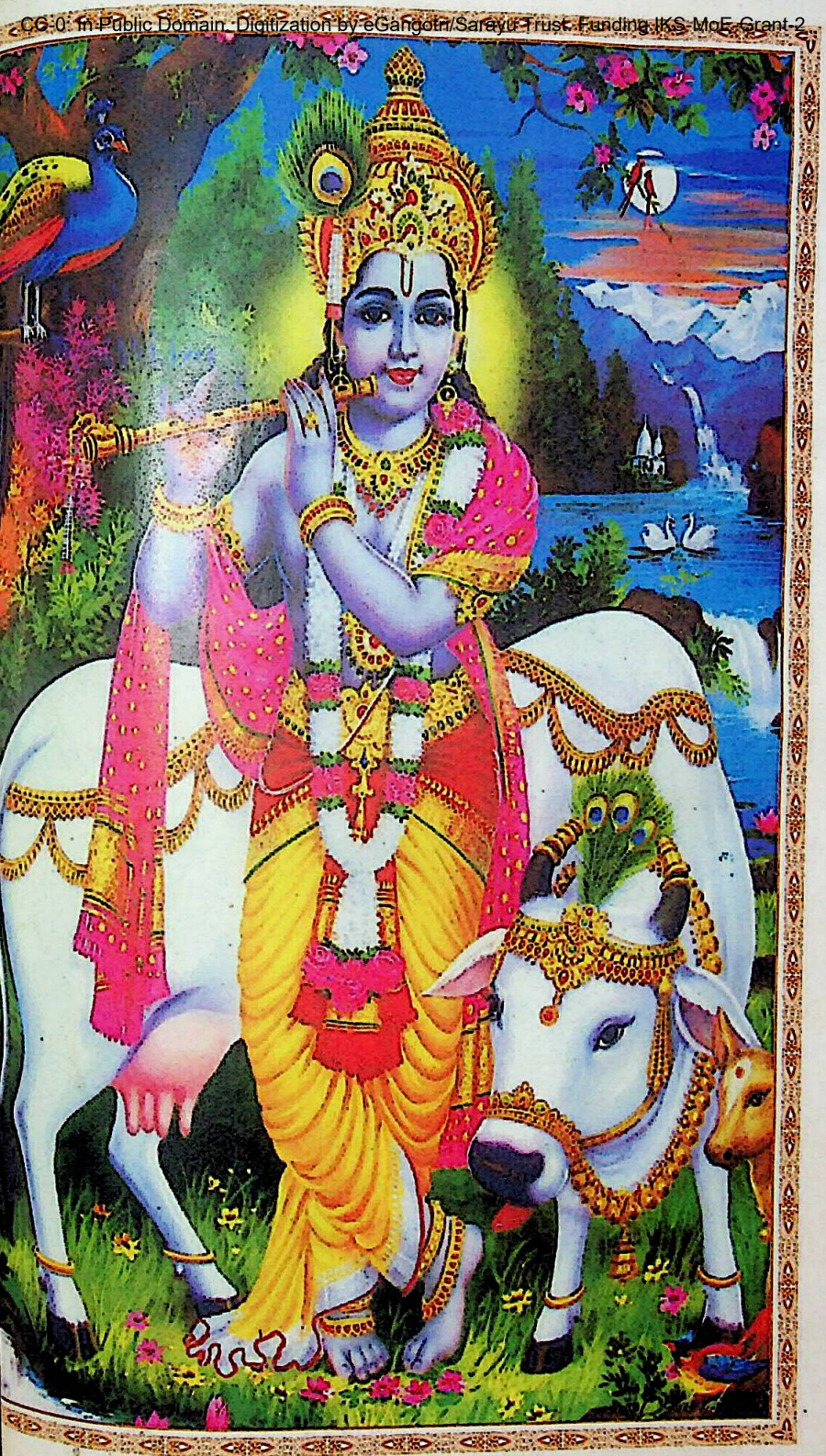

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्तम दिवस

उपस्थित विद्वद्वृन्द, देवियो, सज्जनो!

भगवान् का अवतार हुआ । वसुदेवजी ने देखा एक मेघ श्यामल दिव्य मूर्ति जो विविध अलंकारों से अलंकृत है, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उनके चारों ओर दिव्य तेज छिटक रहा हैं । ऐसा लग रहा है साक्षात् पख्रह्म परमात्मा ही हमारे घर में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । उन्होंने प्रसन्न होकर स्नान किया और दस हजार गायों के दान का संकल्प लिया। उसके पश्चात् हाथ जोड़कर कृतज्ञतापूर्वक भगवान् की स्तुति की। वसुदेवजी ने कहा -

'महाराज ! आप साक्षात् पख्रह्म परमात्मा हैं । आप अपनी प्रकृति से चराचर जगत् को उत्पन्न करते हैं । यद्यपि आप सर्वरूप हैं, इसीलिये आपका किसी में प्रवेश बनता नहीं है । आप अप्रविष्ट हैं, फिर भी प्रविष्ट जैसे प्रतीत होते हैं । भगवन् ! आप सर्वव्यापक हैं । आप सर्वत्र हैं । फिर भी आपका दर्शन नहीं होता। आपका दर्शन इसलिये नहीं होता है कि हमें अपने नेत्रों से तथा अन्य इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान तो होता है, नाम-रूप का ज्ञान तो होता है, परन्तु उसके मूल में अधिष्ठान के रूप में सच्चिदानन्दघन परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है । ये इन्द्रियाँ अतीन्द्रियाँ हैं । इन्द्रियों का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता, उनका अनुमान मात्र होता है।

अनुमान इस प्रकार होता है - जब हम रूप को देखते हैं, तो हमारी रूपाकार वृत्ति हो जाती है । उस रूपाकार वृत्ति से हम अनुमान करते हैं कि हमारी एक नेत्रेन्द्रिय है । उसके द्वारा हमने रूप का दर्शन किया है। बुद्धि माने विषय का ज्ञान होता है । जिसके द्वारा लक्षण स्वरूप का अनुमेय तथा उन इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य गुण होता है । गुण के कार्य शब्द, रूप, रस, गन्ध ज्ञान होने के साथ-साथ आपका भी ज्ञान होना चाहिये। परन्तु आपका ज्ञान इसलिये नहीं होता कि इन्द्रियों में आपको जानने की क्षमता नहीं है । इन इन्द्रियों में जितना ज्ञान प्राप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने की क्षमता होती है, वह उतना ही कर सकती हैं । उदाहरण के लिये आप समझ लीजिये कि आपके सामने दूध का गिलास रखा है । आप आँख से देख रहे हैं कि यह दूध है । आँख उतना ही देख सकती है । उस दूध में शक्कर मिला है या नहीं, इसको आँख नहीं देख सकती । इसका अनुभव तो जिह्वा ही कर सकती है ।

इसी प्रकार **घटः सन्, पटःसन् , मठः सन्** सर्वशब्द है । इसमें है क्या चीज? जैसे हमलोग गुजराती में 'छे' कहते हैं। वैसे ही हिन्दी में 'हैं' कहते हैं और संस्कृत में सन् कहते हैं । घर है, मठ है । यह घट, मठ सबके साथ 'हैं' लगा हुआ है । 'है' माने सत् होता है । और सबका ज्ञान होता है । सबका ज्ञान लगा हुआ वह हो गया चित् तथा सबमें प्रियता है । जहाँ प्रियता होती है, वहाँ आनन्द होता है। इसलिये सबके साथ आनन्द लगा हुआ है ।

हमारे आपके बन्धु-बान्धव दिखलायी पड़ते हैं । उनको देखकर हम जान जाते हैं कि ये हमारे बन्धु हैं । हमारे रक्षक, हमारे हितैषी हैं। आप सबके हितैषी हैं, पर आप दिखलायी नहीं पड़ते । अव्यक्त रहकर सबकी रक्षा करते हैं। यह काल चेष्टा है । जिससे सारा संसार चेष्टा करता है।'

इस प्रकार वसुदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के परम सत्य की स्तुति की और कहा - 'भगवन् ! आप हमारे घर में अवतीर्ण हुए हैं। आपके अवतार का प्रयोजन यह है कि राजाओं के रूप में दैत्यों की सेना को मारकर पृथ्वी का भार उतारना है । अतः आप उग्रसेन के बेटे कंस से हम सबकी रक्षा कीजिये । आप अपने सेवकों की रक्षा करने वाले हैं ।'

इसके बाद देवकी ने भगवान् की स्तुति की -

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः॥

(श्रीमद्भागवत 10/3/24)

'रूपं यत्तत्प्राहुः' हमारे उपनिषदों ने जिस अव्यक्त और आद्यरूप का प्रतिपादन किया है, **'ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारं'** ब्रह्म का अर्थ बृहद् होता है, जो अतिशय बृहद् हो उसी का नाम ब्रह्म है। श्रुति कहती है -

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' । ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है। ब्रह्म का अर्थ बृहद् होता है । कितना बृहद् तो उसकी बृहदता की कितनी सीमा है। कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार शब्द के अर्थ में संकोच करना पड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे किसी ने कहा है - **'सर्वे ब्राह्मणाः भोजनीयाः'** 'सब ब्राह्मणों को भोजन कराओ ।' समस्त संसार को भोजन कराना कठिन है । सम्भव नहीं है। अतः इसका ऐसा अर्थ लगाया जायेगा । **'निमन्त्रिताः सर्वे ब्राह्मणाः भोजनीयाः'** जिन-जिन ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया गया है, उन सभी निमन्त्रितों को भोजन कराओ ।' यहाँ सर्व शब्द का संकोच कर दिया गया है ।

'परब्रह्म' शब्द के लिये कोई संकोचन प्रमाण नहीं है। अपितु अनन्त शब्द से व्याहृत है । **'सत्यं ज्ञानमनन्तम्'**(तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/1) अनन्त अर्थात् सजातीय, विजातीय भेद से देश-काल से रहित वस्तु, जो अपरिच्छिन्न है, उसे अनन्त कहते हैं । कोई भी वस्तु देश से परिच्छिन्न होती है । उदाहरण के लिये आप जिस अहमदाबाद नगर में रहते हैं, इस अहमदाबाद का अन्त है। आप अहमदाबाद से निकल कर जब आगे चलेंगे तो कारपोरेशन की सीमा का अन्त होगा । वहाँ जाकर आप कहेंगे अहमदाबाद पीछे छूट गया । अर्थात् देश से परिच्छिन्न हो गये । कोई व्यक्ति है, उसकी जितनी आयु है, उतने ही वर्ष वह जीवित रहता है । उसके बाद जब वह मर जाता है, तब भूतकाल हो जाता है । इसका अर्थ वह काल से परिच्छिन्न हो गया।

वह जन्म के पहले नहीं था । मृत्यु के पश्चात् नहीं रहेगा । यह कालगत परिच्छेद है । एक वस्तु दूसरे रूप में नहीं है । दूसरी वस्तु पहले रूप में नहीं है । घट पट नहीं है । पट घट नहीं है। घट वस्तु पट वस्तु से परिच्छिन्न हो जाती है । पट वस्तु घट वस्तु से परिच्छिन्न हो जाती है।

ब्रह्म में देश-काल, वस्तु का परिच्छेद नहीं है। इसलिये वह अपरिच्छिन्न अनन्त, सत्य और ज्ञान रूप है। ऐसा वह ब्रह्म **'ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारं'** ज्योति स्वरूप है। वह न तो सूर्य की ज्योति है, न चन्द्रमा की ज्योति है, न अग्नि की ज्योति है और न बिजली की ज्योति है। वह तो कोई एक विलक्षण ही ज्योति है। सूर्य, चन्द्र और विद्युत् के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले जगत् को प्रकाशित करनेवाली इन्द्रियाँ हैं । इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली ज्योति मन है। मन को प्रकाशित करने वाली ज्योति बुद्धि है । बुद्धि को प्रकाशित करने वाली ज्योति आत्मा है । वह ज्योति -

'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते'

(श्रीमद्भगवद्गीता 13/17)

बहुत से लोग त्रिकुटी में ध्यान लगाने के लिये कहते हैं । जब त्रिकुटी में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान लगाते हैं, वहाँ प्रकाश का दर्शन होता है। तब वह कहता है - 'हमको ब्रह्म का दर्शन हो गया ।' वह ब्रह्म नहीं है। जो वस्तु वहाँ दृश्य होती है, वह मिथ्या होती है । वह कभी रहता है, कभी नहीं रहता है। लेकिन जो वास्तविक प्रकाश है, वह न कभी उदय होता है, न कभी अस्त होता है । इसलिये रामचरित मानस में बतलाया है -

सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना ॥

(रामचरितमानस)

भगवान् सहज प्रकाश हैं । उनमें बिहान माने सबेरा नहीं है। जहाँ रात होती है, वहाँ दिन होता है। जहाँ दिन होता है, वहाँ रात होती है। सूर्य में न दिन है न रात । वह स्वयं प्रकाश रूप है। इस प्रकार वह ब्रह्म ज्योति स्वरूप है ।

वह मिथ्यात्मक ज्ञान और सोपाधिक ज्ञेय ब्रह्म तथा ज्ञानगम्य माने निरुपाधिक ब्रह्म होता है । उसमें किसी प्रकार वह गुण नहीं है। उनमें कोई विशेष नहीं है । परमात्मा का जाति-गुण-क्रिया में बिलकुल सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा की न तो कोई जाति है । न उनमें नीला-पीला-हरा कोई गुण है। उनमें न किसी प्रकार की क्रिया है। उनका न किसी से किसी प्रकार का सम्बन्ध है। **'निर्गुणं निर्विकारं'** उनमें न किसी प्रकार का विकार है। एक **'सत्तामात्रम्'** परमात्मा को जानने का, उनके अनुसन्धान का, प्रकार है।

उपाधि को छोड़ते जाओ और सत्ता पर दृष्टि लगाओ। इस प्रकार आप अपनी खोज कीजिये। **'सोऽहम्'** 'मैं कौन हूँ' यह भाव आपके मन में आयेगा । मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, बालक हूँ, वृद्ध हूँ, युवा हूँ। जाति-गुण आदि सब आयेंगे। लेकिन ये उपाधियाँ हैं। 'मैं' सत्ता है। प्राण, मन, बुद्धि आदि जो भी आये, उन सबको छोड़ते जाओ और सत्ता की ओर दृष्टि डालो । समस्त उपाधियों से रहित जो दृग्-मात्र है। जिसमें द्रष्टा और दृश्य का भेद नहीं है, वह अपना निश्चित स्वरूप कहलायेगा । **'सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं'** और जिसमें किसी प्रकार की चेष्टा नहीं है। **'सत्त्वं साक्षात्, विष्णुरध्यात्मदीपः।'** माता देवकी कहती हैं - 'वह अध्यात्म दीप सर्वत्र व्याप्त विष्णु स्वरूप है । जब ब्रह्माजी की आयु पूर्ण हो जाती है तब इस लोक का नाश हो जाता है।

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः॥

(श्रीमद्भागवत 10/3/25)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मा अपनी आयु से सौ वर्ष रहते हैं । पचास वर्ष प्रथम पूर्वार्ध में और पचास वर्ष आगे के परार्ध में उनकी आयु है । इस प्रकार दो खण्डों में उनकी आयु है । जब परार्ध का अवसान हो जाता है अर्थात् ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाती है तब इस लोक का नाश हो जाता है । जिस क्रम से प्रगत संसार बना था, उसी क्रम से इसका विलय भी हो जाता है । पृथ्वी जल में विलीन हो जाती है, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंतत्त्व में, अहंतत्त्व महत् तत्व में, महत् तत्व प्रकृति में और प्रकृति आत्मा में विलीन हो जाती है । सबके सब अव्यक्त हो जाते हैं । उसकी प्रकृति के साक्षी के रूप में भगवान् केवल आप अवशिष्ट रहते हैं । इसलिये आप शेष रहते हैं । शेष का अर्थ हुआ सबको हटा देने के बाद जो बचा रहे, उसका नाम शेष है और अदृष्ट संज्ञा है ।

देवकी कितना सुन्दर परमार्थ का निरूपण कर रही है - 'भगवन्! हम आपके भक्त हैं । कंस ने जब यह सुना कि हमारे द्वारा आपका अवतार होने वाला है और आपके द्वारा उसकी मृत्यु है, उसने हमारे छः पुत्रों को मार डाला । वे सभी आपके बड़े भाई थे । हमें इस बात का डर है कि कहीं आपके अवतार की बात सुनकर आ न जाय । हमें कंस से आपके लिये डर है । अपने लिये नहीं आप उससे हमारी रक्षा कीजिये।'

भगवान् ने देवकी वसुदेव से कहा कि तुम स्मरण करो । पहले जन्म में तुम पृश्नि थी । तुम्हारे पति ये वसुदेव सुतपा नाम के पति थे। तुमने ब्रह्मा के आदेश से बहुत वर्षों तक तप किया। जब मैं तुम्हारे सामने प्रादुर्भूत हुआ, तो तुमने मेरे समान पुत्र माँगा । मैंने देखा कि मेरे समान तो मैं ही हूँ । उस जन्म में तुम्हारे घर में पृश्नि-गर्भ के रूप में अवतरित हुआ । तुमने कश्यप-अदिति के रूप में दूसरा जन्म लिया । उस समय मैंने वामन रूप में अवतार लिया । तुम्हारा यह तीसरा जन्म है । जबकि तुम्हारे घर मैंने जन्म लिया है । तो तुम पुत्र भाव से मुझे भजो। निश्चित रूप से तुम मुझे प्राप्त हो जाओगी ।

यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय।
मन्मायामानुयाश त्वं यशोदागर्भसम्भवाम्॥ (स्फुट)

'यदि तुमको कंस से डर है तो मुझे गोकुल ले जाओ । वहाँ यशोदा के गर्भ से मेरी माया ने जन्म लिया है, उसको ले आओ।' यह सुनकर देवकी ने प्रार्थना की - 'भगवन् ! मुझसे आपका जन्म हुआ है। इस बात को कंस जानने न पाये । अब आपने जो चतुर्भुज रूप धारण किया है, इसको त्यागकर बालक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का रूप धारण कीजिये ।' भगवान् छोटे से बालक बन गये । वसुदेवजी भगवान् की प्रेरणा से श्रीकृष्ण को छिपाने के लिये कहीं अन्यत्र ले जाने लगे । किन्तु कैसे ले जाते ? पहरेदार पहरा दे रहे थे । वज्र जैसे किवाड़ लगे थे । वसुदेवजी के हाथ में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी लगी होती थी ।

'या योगमायाऽजनि नन्दजायया' (श्रीमद्भागवत 10/3/47)

नन्दजाया यशोदा से जिस योगमाया ने जन्म लिया था, श्रीकृष्ण की वह छोटी बहन थी । योगमाया ने उन पहरेदारों को सुला दिया । वज्र किवाड़ खोल दिये । वसुदेव-देवकी की हथकड़ी बेड़ी अलग हो गयी। वसुदेवजी एक पात्र में श्रीकृष्ण को सुलाकर तथा उनको लेकर मथुरा से गोकुल की ओर चल दिये । उस समय मेघ गर्जना कर रहे थे । मन्द-मन्द गर्जना के साथ पानी बरस रहा था । अपने फणों को फैलाये शेषजी वसुदेवजी के पीछे-पीछे चल रहे थे । शेषजी ने फणों का छत्ता भगवान् के ऊपर लगा लिया । योगमाया और बड़े भाई दोनों ने काम किया। वसुदेवजी को पता ही नहीं लगा कि हमारे पीछे-पीछे शेषनागजी आ रहे हैं। वे यमुनाजी के किनारे पहुँचे । उन्होंने वहाँ देखा कि यमुनाजी में भयानक बाढ़ आयी हुई है । उनमें बड़ी-बड़ी तरंगे उठ रही हैं । फेन उठ रहे हैं। बहुत-सी लकड़ियाँ बह रही हैं । सिवार बह रहे हैं। वे सोच में पड़ गये । इन्हें कैसे ले जायँ । जैसे समुद्र ने भगवान् श्रीराम को मार्ग दिया था, उसी तरह यमुना ने उनको भी मार्ग दे दिया । यमुनाजी वसुदेवजी के घुटनों के नीचे तक आ गयीं । वसुदेवजी भगवान् को लेकर बीच यमुना में जब आये, तब यमुना को होश आया । उसने सोचा अरी यमुना! तू बहुत बड़ी भूल कर रही है । तेरी छोटी बहन गंगा अधिक महिमावती हो गयी क्योंकि उसने इनके चरणों का स्पर्श कर लिया था। तू इनके चरणों के स्पर्श से वंचित होने के कारण गंगा से छोटी हो रही है। आये हुए इस सुन्दर अवसर को क्यों छोड़ती है ? यह विचार आते ही यमुना भगवान् का चरण छूने के लिये बढ़ने लगी ।

वसुदेवजी घबराये । अब क्या करें ? न आगे जा सकते हैं न पीछे । इतने में भगवान् ने पीछे से अपना सुन्दर चरण बढ़ा दिया । कालिन्दी ने मूँगे के समान भगवान् के चरण-कमल जब स्पर्श किया तब वे सन्तुष्ट होकर घुटनों से नीचे चली गयी ।

इस प्रकार वसुदेवजी यशोदाजी के कक्ष में चले गये । वहाँ सब लोग सो रहे थे । माया ने वहाँ भी पहले से ही सारी व्यवस्था कर रखी थी। वहाँ यशोदाजी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने एक कन्या को जन्म दिया था । उन्हें इस बात का पता ही नहीं रहा कि हमारे पुत्र हुआ है या कि कन्या । वे गहरी नींद में थीं । वसुदेवजी उनके पास धीरे से गये और अपने श्याम सुन्दर को उनके पास लिटाया और अपने साथ कन्या को लेकर लौट आये । उन्होंने जैसे ही कारागार में प्रवेश किया, कन्या को देवकी ने गोद में ले लिया। उनके हाथ-पैरों में हथकड़ी-बेड़ी लग गयी। किवाड़ लग गये । ताले लग गये । कन्या ने रोना प्रारम्भ कर दिया । उसके रोने की आवाज को सुनकर पहरेदारों की नींद खुल गयी । वे सोचने लगे- 'अरे, बड़ी भूल हो गयी। हम सो गये। महाराज कंस ने कहा था - 'जैसे ही इसका जन्म हो, तत्काल हमें सूचना दी जाय ।' वे सब दौड़े-दौड़े कंस के पास पहुँचे। उधर कंस भयंकर स्वप्न देख रहा था । तभी पहरेदारों ने उससे कहा - 'महाराज! देवकी का प्रसव हो गया है ।' उसने पूछा - 'पुत्र हुआ है या कन्या।' पहरेदारों ने कहा - 'महाराज ! ध्वनि से तो कन्या लग रही है।' कंस दौड़ा-दौड़ा झटपट कारागार की ओर चल पड़ा । कहीं पैर में ठोकर लगी। वह खोपड़ी के बल गिरा। उसके मस्तक से खून बहने लगा । उसके बालों के लट खुल गये । उसी तरह भयंकर अकायदण्डमान कारागार में गया । उसको देखकर देवकी ने उस कन्या को छाती से चिपका लिया और कहने लगी -

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः।
त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम्॥ (श्रीमद्भागवत 10/4/5)

'हे भैया! तूने मेरे बहुत से बेटों को मार दिया। अब यह मेरी पेट पोछिनी कन्या हुई है । इसे तुम मुझे दे दो । मैं तेरी वही छोटी बहन हूँ, जिसको तू बहुत दुलार करता था । अब दया करके यदि तू इस कन्या को छोड़ देगा तो मैं इसे तेरे बेटे से व्याह दूँगी । यह तेरी बहू बन जायेगी। इसको तू मत मार ।' यह कहकर देवकी रोने लगी । परन्तु कंस की दया स्वार्थ के कारण उन्मूलित हो गयी थी।'

उसने देवकी को डाँटा । वह बेचारी चुप रही । कंस ने उसकी गोद से कन्या को बलात् छीनकर उसके दोनों पैर पकड़े और घुमाने लगा। उसने सोचा था कि घुमाकर कन्या को हम पत्थर पर पटककर मार डालेंगे। परन्तु उसके हाथ से कन्या का पैर छटक गया । वह कंस की खोपड़ी पर एक लात मारती हुई आकाश की ओर चली गयी । कंस ने ऊपर देखा 'अरे, यह तो अष्टभुजी दुर्गा है । यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, चारण उसकी पूजा कर रहे हैं । उसकी जय-जयकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो रही है, स्तुति की जा रही है । उसने कहा - 'यह तो देवी है । ऊपर से देवी ने कहा -

'किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा॥

(श्रीमद्भागवत 10/4/12)

अरे मूर्ख ! मुझे मारने से क्या होगा ? तुझे तो मारने वाला कहीं जन्म ले चुका है । दीनों को व्यर्थ में क्यों मारता है?' ऐसा कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयीं । **बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ।** (श्रीमद्भागवत 10/4/13) इस प्रकार वह योगमाया बहुत से स्थानों में बहुत से नामों से जानी जाने लगीं । कहते हैं उनके इक्यावन शक्तिपीठ बन गये । वहाँ माँ जगदम्बा की कलाएँ स्थित हैं । इस तरह विभिन्न स्थानों में विभिन्न रूपों में भगवती की पूजा होती है । यही कात्यायनी हैं । यही दुर्गा हैं । यही जीवों को भगवान् श्रीकृष्ण से मिलाती हैं ।

इस प्रकार भगवान् गोकुल में सुरक्षित पहुँच गये । कंस को उस रात नींद नहीं आयी । सबेरा होते-होते उसने अपने मन्त्रि-मण्डल की आपातकालीन बैठक बुलायी । इनके मन्त्रिमण्डलसदस्यों के नाम श्रीमद्भागवत में इस प्रकार लिखे हैं-

चाणूर, मुष्टिक, शल्व, तोष्टक, पुट, धेनुकासुर, अघासुर, नरकासुर और एक महिला पूतना । यह पूरा मन्त्रिमण्डल एकत्र हुआ। उस रात जो कुछ भी हुआ और उस कन्या ने जो कुछ कहा था, कंस ने उन सारी बातों को अपने मन्त्रि मण्डल को सुना दिया । अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कंस ने कहा - 'हमें मारने वाला कहीं जन्म ले चुका है। अब हम क्या करें ?' मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य उठकर बोला -'महाराज! यह सब देवताओं का षड्यन्त्र है **'देवाः समर-भीरवः।**(श्रीमद्भागवत 10/4/32)' वे युद्ध से डरने वाले हैं । जिस समय आप धनुष-बाण उठाकर चलते हैं, देवता स्वर्ग छोड़कर भाग जाते हैं । यदि वे कहीं रास्ते में मिल गये तो अपनी शिखा और कच्छ खोलकर कहते हैं - 'हम डरे हुए हैं ।'

जिसके हाथ में शस्त्र न हो, युद्ध से विमुख हो, उसको आप जैसे महापुरुष वीर मारते नहीं । इसलिये वे कुछ नहीं कर सकते । आप अपने मन में बिलकुल चिन्ता मत कीजिये । परन्तु नीति कहती है -

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।

(रामचरितमानस)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे स्वामी ! शत्रु, रोग, अग्नि और पाप को छोटा नहीं समझना चाहिये। यदि आपका शत्रु कहीं जन्मा है तो उसको मारने का भी कोई उपाय किया जाना चाहिये। कोई दूसरा सदस्य खड़ा हुआ और बोला-'मेरा एक प्रस्ताव है--

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः। (श्रीमद्भागवत 10/4/39)

यदि यह देवताओं का षड्यन्त्र है तो इनकी जड़ को ही काट दें। पेड़ के पत्तों को काटने से लाभ नहीं है, उसकी जड़ को ही काट देनी चाहिये। देवताओं की जड़ विष्णु है और विष्णु-यज्ञ है। जहाँ गौ, ब्राह्मण रहते हैं, वहाँ यज्ञ होता है। डाल्डा का हवन होगा नहीं। बिना ब्राह्मण के मन्त्र कौन पढ़ेगा? दक्षिणा देने वाला भी कोई चाहिये। विना दक्षिणा के यज्ञ नहीं हो सकता।

श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है -

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 17/13)

जिसमें शास्त्र की विधि न हो, अन्नदान न हो, जिसमें वेद-मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण न हो, ब्राह्मणों को जिसमें दक्षिणा न दी जाय, ऐसा श्रद्धारहित यज्ञ तमोगुणी कहलाता है। वह यज्ञ ही नहीं है।

'महाराज ! ब्राह्मणों की बस्तियों में आग लगा दो। साँप-बिच्छू बनकर गौओं को हटवा दो। जब वे ही नहीं रहेंगे, तब विष्णु नहीं रहेगा। विष्णु नहीं रहेगा तब देवता अपने आप मर जायँगे। उसका यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया।

तीसरे सदस्य खड़े हुए और बोले - 'महाराज ! हमारा भी एक दूसरा प्रस्ताव है - आपको मारने वाला दस दिन के भीतर जन्म लिया होगा। इसलिये दस दिन के भीतर जितने भी बालकों ने आपके राज्य में जन्म लिया है, आप उन सबकी हत्या करवा दें।' कंस ने कहा - 'हाँ, यह बहुत सुन्दर प्रस्ताव है।' यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास हो गया। उस मन्त्रिमण्डल में जितने भी सदस्य थे, उनमें कोई भी सज्जन नहीं था।

आप सोचिये, मनुष्य यह सोचकर बाल हत्या कर रहा है कि हम अमर हो जायँगे। जबकि बुरे कर्म करने से आयु क्षीण होती है, बढ़ती नहीं। परन्तु काल से प्रेरित होकर कंस ने ऋषि एवं बाल हिंसा को अपना हितकारी मान लिया। इस तरह यहाँ कृष्ण को मारने का षड्यन्त्र तैयार हो गया। लेकिन लिखा है -

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभिप्रायाः न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्॥ (स्फुट)

सर्पों का, खलों का और सभी दुष्ट चित्त वालों का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता । इसलिये संसार बचा हुआ हैं नहीं तो ये कब के खा गये होते। इधर आप देखें, षड्यन्त्र अपनी जगह है । भगवान् नन्दजी के घर पहुँच गये । वहाँ नन्दजी के घर एक दासी घर की टहल करने के लिये आयी। यशोदाजी सो रही थीं । नन्दजी नारायण का स्मरण कर रहे थे, क्योंकि वे भगवान् के भक्त थे । जो भगवान् के भक्त होते हैं, उन्हीं के घर में भगवान् का अवतार हुआ करता है । उस दासी ने देखा यशोदाजी की बगल में एक सुन्दर सुकुमार बालक लेटा हुआ है । वह बहुत प्रसन्न हुई और नन्दजी के पास आकर बोली - 'बाबा ! बधाई हो। आपके घर में पुत्र ने जन्म लिया है -

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः॥

(श्रीमद्भागवत 10/5/1)

नन्दजी पुत्र के जन्म को देखकर बहुत आनन्दित हुए । वे बोले-'जाओ और ब्राह्मणों, देवज्ञों और ज्योतिषियों को बुलाओ ।' इस तरह अपने सेवकों को आदेश देकर दासी को अपने गले का बहुमूल्य हार पहनाकर उसको विदा किया। स्वयं **'प्रातः शुचिरलंकृतः'** स्नान करके पवित्र हो गये। विविध प्रकार के अलंकार धारण करके बैठ गये । इतने में ब्राह्मण आये। नन्दजी ने उनसे कहा- 'महाराज ! जन्म लेने के पश्चात् बालक का संस्कार होता है, जिसे जातकर्म संस्कार कहते हैं ।' जन्ममात्र से मनुष्य का संस्कार नहीं होता । हमारे यहाँ षोडश संस्कार हैं । समय-समय पर उनकी आवश्यकता पड़ती है । जैसे आपने देखा होगा कि हीरे का पत्थर जब खदान से निकलता है, तब पता नहीं लगता कि वह हीरा है। जब उसको खरीदा जाता है, पालिश की जाती है, तब वह चमकता है । इसी प्रकार मनुष्य जन्म से नहीं चमकता । जब उसमें संस्कार दिया जाता है, तब वह चमकता है । तब उसमें विशेषता आती है । ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन एवं नान्दीमुख श्राद्ध करके उस बालक का जातकर्म संस्कार किया । नान्दीमुख श्राद्ध वह होता है, जो विवाहादि से पहले कर लिया जाता है ताकि बीच में जननाशौच, मरणाशौच आ जाय तो वह लगता नहीं है।

नन्दजी ने सात तिल के पर्वत बनवाये । उनके भीतर रत्न रख दिये और उन पर्वतों को स्वर्णिम वस्त्र से समावृत करके ब्राह्मणों को दान कर दिया। कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसी वस्तुएँ होती हैं, जो काल से शुद्ध हो जाती हैं जैसे भूमि आदि। मनुष्य स्नान से पवित्र होता है। वह कभी अपवित्रता के रहने पर भी पवित्र होता है। कुछ तपस्या से पवित्र होती हैं। किन्तु धन की शुद्धि दान से होती है। आत्मा की शुद्धि आत्मज्ञान से होती है। नन्दजी ने सोचा हमारा धन हमारे बेटे के लिये है। इसको शुद्ध कर देना चाहिये। इसलिये उन्होंने धन का दान किया। कविगण वर्णन करते हैं - जिसने जो माँगा, नन्दजी ने उसको वह सब दिया -

नन्द बबा ने दियो इतनो,
न बची बछिया छछिया न पिछौरी।

उन्होंने सब कुछ दे दिया। दशरथजी के घर में जब परब्रह्म परमात्मा ने अवतार लिया तब दशरथजी ने भी ऐसे ही दान किया। वहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने वर्णन किया है -

सर्वस दान दीन्ह सब काहू। जो पावा राखा नहिं ताहू॥

(रामचरितमानस)

दशरथजी ने सर्वस्व दान कर दिया। शंका करने वाले आजकल पूछते हैं कि महाराज ! रखा किसने जबकि जिसने पाया वह भी दे दिया। वह गया कहाँ? उनको शंका इसलिये होती है क्योंकि उनको अपने धर्मशास्त्रों का ज्ञान नहीं है। जब तक बालक का नाल छेदन नहीं हो जाता है तब तक सूतक नहीं लगता है। जब बालक का नाल छिन्न हो जाता है, तब जननाशौच लग जाता है। ज्योंही सूतक लगा, दान की प्रक्रिया बन्द हो गयी। फिर जिसके पास जो रहा वही रखेंगे। यही इसका समाधान है। इस तरह नन्दजी ने उत्सव मनाया। श्रीकृष्ण के अवतार का समाचार गोपियों ने सुना -

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।
आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः॥

(श्रीमद्भागवत 10/5/9)

तो पहले उन गोपियों ने अपने आपको आभूषित किया। उन्होंने वस्त्र-आभूषण धारण किया और आँखों में काजल लगाया। अपने बाल सँवारे। बालों में मालती की माला लपेटी। वे सुन्दर थाल में गोरोचन, दधि, दूर्वा और मांगलिक वस्तुएँ रखकर यशोदाजी को बधाई देने चली। जब गोपियाँ चलीं तो उनके जल्दी-जल्दी चलने के कारण उनके जूड़े की माला गिरती जा रही थी और कुण्डल हिल रहे थे। उस समय का बड़ा ही सुन्दर दृश्य था। उन्होंने यशोदाजी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के पास जाकर यही कहा - **'चिरं पाहीति'** । यशोदा ! तेरा बालक युग-युग जीये ।' वे जान गयी थीं कि यशोदा का लाल कोई सामान्य लाल नहीं है। वृजवासी ऐसा गाते हैं ।

यशोदा जायी ललना मैं वेदन में सुनि आई।
वेदन में सुनि आई पुराणन्ह में सुनि आई॥

वेद, पुराण जिसकी महिमा का गान करते हैं, उस परमात्मा ने यशोदा के यहाँ जन्म लिया । फिर भी वे उनको आशीर्वाद ही देती हैं। भगवान् से कुछ माँगती नहीं हैं । इधर एक गोप मथुरा चला जा रहा था। उस बेचारे को पता नहीं था, वह बहरा था । दूसरे गोपों ने जब श्रीकृष्ण के अवतार का समाचार सुना तो उन्होंने अपने गायों को सजाया, बैलों को सजाया । उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े ओढ़ाये । उनके सींगों को रँगा, उनके खुरों को रँगा । उनको अच्छी तरह सजाये। उन्हें बहुत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाकर उन गायों-बैलों के साथ नन्दजी के यहाँ बधाई देने आये । वे सोचे गाय तो प्रतिदिन चराते हैं । आज चलकर नन्दजी को बधाई दें। वे नन्दजी को बधाई देने लगे । वह बहरा मथुरा की ओर चला जा रहा है । लोगों ने उसको पकड़ा । उसी की दही को उसके मुँह पर लपेट दिया । अब तो वहाँ होली मच गयी । दूध, दही, मक्खन से लोग एक दूसरे को स्नान कराने लगे । जय-जयकार मच गयी । व्रज की गलियाँ दूध, दही से भर गयीं ।

भगवान् जब से व्रज में लाये गए व्रज और नन्दजी का आँगन लक्ष्मीजी का क्रीड़ास्थल बन गया । धन-धान्य समृद्धि की हमेशा पूर्णता रही । भगवान् का वियोग हो जाने पर रासलीला में गोपियाँ कहती हैं -

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(श्रीमद्भागवत 10/31/1)

इसका अर्थ है - हे प्रियतम ! आपने जब से व्रज में जन्म लिया है, यह व्रज त्रिलोकी को जी रहा है । इन्दिरा का अर्थ है लक्ष्मी । अन्य स्थानों में लक्ष्मी की सेवा की जाती है लेकिन वही लक्ष्मी व्रज की स्वयं सेवा कर रही हैं । व्रज सर्वसमृद्धिमय हो गया । चतुर्दिक अत्यधिक आनन्द हो रहा है । अन्त में नन्दजी ने सोचा, यहाँ तो आनन्द हो रहा है, लेकिन वहाँ कंस जल रहा होगा । राजा को भी सन्तुष्ट करना चाहिये । ये भी व्रजराज थे । इनका मुख्य राजा कंस था ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसीलिये वे वर्ष में वार्षिक कर के रूप में कुछ मुद्राएँ, कुछ दूध, दही, घृत, मधु की भेंट कंस को देते थे । इस बार वह भेंट के साथ-साथ यह समाचार भी लेकर कंस के पास स्वयं आये और बोले - 'महाराज ! आपके पुण्य प्रताप से हमारे घर में पुत्र ने जन्म लिया है ।' दुष्टों का यह स्वभाव होता है कि वे दूसरे का उत्कर्ष सह नहीं सकते -

जब काहू की सुनहिं बड़ाई । सांस लेइ जनु जूड़ी आई ॥

(रामचरितमानस)

किसी की प्रशंसा उनसे सही नहीं जाती । यदि कोई दूसरे की प्रशंसा करता है, तो उनकी ऐसी सांस चलने लगती है जैसे उनको दमा का रोग हो गया हो । जब वे यह सुनते हैं कि उस पर विपत्ति आ गयी तो इतने प्रसन्न होते हैं जैसे वे दुनिया के सम्राट् हो गये । खलों का यह स्वभाव है । नन्दजी का समाचार सुनकर कंस जल उठा । अगर यह विना सन्तान के मर जाता तो उसकी सारी सम्पत्ति हमारे खाते में जमा हो जाती। अब इसका बेटा हो गया । वह भीतर से जल गया और कहने लगा-'बहुत ही प्रसन्नता की बात है नन्दजी कि आपको अस्सी वर्ष की अवस्था में पुत्र प्राप्त हुआ ।'

कंस ने अपने मन में सोचा, कहीं यही न मुझे मारने वाला हो। नन्दजी तो लौटकर चले गये । वसुदेवजी ने नन्दजी के आने का समाचार सुना तो वे उनसे मिलने पहुँच गये । वसुदेव नन्दजी के परम मित्र थे। जैसे प्राण आने पर शरीर उठ खड़ा होता है, उसी प्रकार वसुदेवजी को आते देखकर नन्दजी उठ खड़े हुए । उन्होंने वसुदेवजी को उत्तम आसन पर बैठाया और उनसे कुशलता पूछी । वसुदेवजी ने नन्दजी को पुत्र जन्म की बधाई दी । मित्र अपने सुख की तरफ ध्यान न देकर मित्र के दुःख की तरफ ध्यान देते है -

निज दुःख गिरि सम रज करि जाना ।
मित्रक दुःख रज मेरु समाना ॥ (रामचरितमानस)

नन्दजी बोले - 'वसुदेवजी ! कंस ने आपके अनेक पुत्रों को मार डाला है, ऐसा हमने सुना है । एक कन्या बची थी वह भी आकाश में चली गयी ।' वसुदेवजी बोले - 'नन्दजी ! आप यह बतायें । इस समय आप जहाँ रह रहे हैं, इस बृहद् वन में -

कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम्।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः॥ (श्रीमद्भागवत 10/5/26)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहाँ चारा तो है न ।' वसुदेवजी सीधे-सीधे पूछने पर संकोच कर रहे थे कि इन्हें यह सन्देह न हो जाय कि कृष्ण मेरा बेटा है । इसलिये वसुदेवजी कहते हैं - 'उस वन की घास, पानी रोगरहित तो है न ।' क्योंकि घास रोगरहित होगा, पानी रोगरहित होगा तो गाय भी रोगरहित होगी । उसका दूध भी शुद्ध होगा। उस दूध को यशोदा पीयेगी तो उसका भी दूध शुद्ध होगा । तब मेरा बेटा भी शुद्ध रहेगा । ऐसा वसुदेवजी चिन्तन कर रहे थे। वसुदेवजी ने कहा - 'मेरा एक बेटा जो रोहिणी का पुत्र है । वह तुम्हारे यहाँ रहता है । तुम्हीं को माता-पिता मानता है । वह कुशल तो है न।'

इस प्रकार परस्पर कुशलक्षेम होता रहा । नन्दजी ने वसुदेवजी को धन्यवाद दिया । अन्त में वसुदेवजी ने कहा - 'अब आपको यहाँ बहुत देर तक नहीं रुकना चाहिये' -

सन्त्युत्पाताश्च गोकुले । (श्रीमद्भागवत 10/6/31)

गोकुल में बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं । नन्दजी ने तुरन्त अपना शकट जोता, बैलों को लगाया और वहाँ से तुरन्त चल दिये । कोई उत्पात न आ जाय- इस आशंका से भगवान् श्रीहरि की शरण में गये और बोले-भगवन् ! जैसे आपने बुढ़ापे में हमको पुत्र दिया है, वैसे ही आज इसकी रक्षा कीजिये । वसुदेवजी निश्चित ही कोई ऋषि हैं । वे समझ गये कि कोई न कोई उपद्रव अवश्य होगा।'

इधर जब नन्दजी कंस के पास से आये कंस ने उसी समय पूतना को बुलाया । पूतना वह राक्षसी थी, जिसका भोजन ही रुधिर था । छोटे-छोटे बच्चों का खून पीती थी । उसका नाम रुधिराशना था । पूतना अर्थात् जो पवित्र नहीं है । **'पूतान् अपि नयति'** बड़े-बड़े पवित्रों को कुमार्ग में ले जाने वाली यह अविद्या की रूप देहधारिणी थी पूतना ।

अनात्मा में नित्य शुचि और आत्मा की बुद्धि ही अविद्या है । यह अविद्या भगवान् की लीलाओं में बाधक है । ऐसी अविद्या व्रज में तो पहले ही पहुँचेगी । कंस ने उसे बुलाया और बड़े आदर के साथ उसे अपने आसन पर बिठा लिया 'बहन ! आओ, आओ ।'

जब तक स्वार्थी लोगों का कार्य सिद्ध नहीं होता, तब तक वे बड़ा आदर करते हैं । बड़ी ही इज्जत करते हैं । जैसे ही काम पूरा हुआ फिर वे पहचानते ही नहीं हैं । कहते हैं कि 'तुम कौन हो ?' कंस ने बड़े प्यार से पूतना को बैठा कर कहा - 'बहन ! तुम मेरा एक काम कर दो। मैं तुम्हारा उपकार जीवन भर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं भूलूँगा ।' पूतना ने कहा - 'बताओ भैया ! तेरे लिये तो सब कुछ दे दूँगी।' कंस बोला - 'वह कन्या जो ऊपर चली गयी थी, उसने कहा था कि तुझे मारने वाला कहीं और जन्म ले चुका है । मुझे सन्देह है कि नन्द के यहाँ जो बालक जन्मा है, कहीं वही तो मुझे मारने वाला नहीं है ?' पूतना ने कहा -'अरे क्या चिन्ता करते हो ? भैया! मैं उसे अभी मार कर आती हूँ । थोड़ी ही देर में आपको यह समाचार मिल जायेगा कि वह मर गया ।'

अब पूतना यह सोचने लगी कि मैं वहाँ कैसे जाऊँ ? मैं राक्षसी के रूप में जाऊँगी तो गोप लट्ठ से मार-मार कर मुझे घायल कर देंगे।' यह सोचकर उसने मानवीय रूप बनाया । राक्षस कामरूप होते हैं । जैसा चाहे वैसा रूप बना लेते हैं । वह बहुत सुन्दरी स्त्री बनी । उसने अपने आपको गोपी बना लिया । जैसे गोपियाँ हार हवेल पहनती हैं, वह उसी तरह बढ़ियाँ जूड़ा बाँध कर उसमें फूल की माला लपेट कर चली । गले में हार पहन कर उसने सुन्दर साड़ी पहन लिया। उसने नाक में बेसर पहन लिया और कानों में झुमका पहन लिया । इस प्रकार वह रूप बनाकर हाथ में कमल लिये नन्द के भवन पहुँच गयी । उसके सुन्दर स्वरूप को देखकर वहाँ के पहरेदार और गोपों ने सोचा, यह कौन है? उनके मन में किसी अनिष्ट की भावना नहीं हुई ।

साधु चोर औ पण्डित ज्ञानी । आप सरिस सब घर पहिचानी ॥

(रामचरितमानस)

साधु, चोर, पण्डित और ज्ञानी सबको अपने समान समझते हैं। साधू सबको साधू समझता है । चोर सबको चोर ही मानता है । पण्डित-ज्ञानी भी अपने ही तरह सबको पण्डित ज्ञानी समझते हैं ।

उन गोपों ने सोचा कि इस समय कमलापति नारायण ने अवतार लिया है तो सम्भव है कमला उनसे मिलने आयी हैं । 'इनको जाने दो' उसके रूप से हर्षित होकर किसी ने यह भी नहीं पूछा कि 'तुम कहाँ से आयी हो और कहाँ जा रही हो ?' वह धड़धड़ाती हुई वहाँ पहुँच गयी, जहाँ यशोदा जी सखियों के साथ पलने में श्रीकृष्ण को झूला झुला रही थीं। पूतना वहाँ पहुँची । भगवान् जान गये कि पूतना आ गयी ।

भगवान् ने सोचा कि अब क्या करें ? **'चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः।** (श्रीमद्भागवत 10/6/8)' श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों को बन्द कर लिया । अब भक्तों ने यह विचार करना शुरू किया कि भगवान् ने नेत्रों को क्यों बन्द कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया ? इसके कई भाव निकलते हैं । भगवान् ने नेत्रों को इसलिये बन्द कर लिया कि यह पूतना है, अविद्या है । माया को अविद्या कहते हैं । माया भगवान् के सामने खड़ी नहीं हो सकती । लिखा है -

विलज्जमानया यस्य पातुमीक्षा पथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाह दुर्धियः॥ (श्रीमद्भागवत अष्टटीका)

जिस माया से विमोहित होकर दुर्बुद्धि - 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा है' इस प्रकार की भावना बना लेते हैं और बोलते हैं । वही माया है। माया तो माया का ही रूप है, जिसे अविद्या भी कहते हैं । भगवान् ने सोचा कि माया तो मेरे सामने आयेगी नहीं, भाग जायेगी और मेरे भक्तों को सतायेगी । इसलिये उसे आने दो तथा भगवान् ने यह सोचकर आँखें मूँद ली कि आयेगी तो देखा जायेगा । कुछ भक्तों का यह भाव है कि भगवान् ने आँखें इसलिये मूँद लीं कि दुष्टों की तरफ देखना ही नहीं चाहिये। कौन क्या कर रहा है ? इस बात पर यदि ध्यान देंगे तो बुद्धि हमेशा कलुषित रहेगी । इसलिये यदि आपको शान्ति चाहिये तो संसार का चिन्तन छोड़िये - **कः किं करोति। इत्थं व्याप्तबुद्धिस्यात्।** अपनी बुद्धि को उसमें मत लगाइये । आप अन्तर्मुखी होकर भगवान् का ध्यान कीजिये । इससे शान्ति मिलेगी । एक भाव यह भी है कि दुष्टों से उदासीन रहिये -

उदासीन नित रहिअ गोसाईं । खल परिहरिअ स्वान की नाईं ॥
(रामचरितमानस)

उनकी तरफ देखो ही मत । जैसे कुत्ते को प्यार करो तो चाटता है । मारो तो काटता है । उसका काटना और चाटना दोनों ही बुरा है । इसी तरह से दुष्टों से न वैर अच्छा और न प्रेम अच्छा । उनसे उदासीन होकर रहना ही अच्छा है । इसलिये भगवान् ने उदासीनता ग्रहण कर ली ।

भक्तों का कहना है कि भगवान् ने सोचा कि पूतना आ गयी, इसको हमें मारना पड़ेगा । हमने रामावतार में ताड़का का वध किया था तो लोगों ने हमारे विषय में यह अपवाद उठाया था कि राम ने सभी कार्य अच्छे किये लेकिन स्त्री को मारा, यह ठीक नहीं किया । इसलिये हम स्त्री पर हाथ तो छोड़ेंगे नहीं लेकिन क्या बतायें । **'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः'** आ गयी है तो अब हमको उसे मारना ही पड़ेगा ।

भगवान् को यह भी स्मरण था कि गोपियाँ जब व्यंग्य करेंगी तो इसी पूतना का उदाहरण देंगी । भगवान् जब रासलीला में अन्तर्ध्यान हो गये तो उस समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का वर्णन करते हुए गीतगोविन्दकार जयदेव कहते हैं-

अटतिभवान् अबलाकबलाय वनेषु प्रतत विचित्रम् ।
प्रथयतिपूतनकैववधूवध निर्दय बाल चरित्रम्॥

(जयदेवकविकृत गीतगोविन्द)

आप जंगल में घूम रहे हैं न महाराज ! हम आपको जानती हैं कि 'अबला कोई मिल जाय तो हम खा जायँ' यही सोचकर आप जंगल में घूम रहे हैं । आप स्त्रियों के सदा के शत्रु हैं । आपने पलने के नीचे पैर रखा तो एक अबला को मार डाला ।

भगवान् यही सब सोच रहे थे । यह कलंक तो लगेगा ही । लेकिन करें क्या । अरे, वह तो आ गयी । भगवान् ने आँखें मूँद ली । भगवान् ने सोचा कि पृथ्वी का भार उतारने के लिये मेरा अवतार हुआ है । इसलिये कोई भी पवित्र कार्य करने से पहले अपने इष्टदेव का स्मरण कर लेना चाहिये । भगवान् श्रीकृष्ण के इष्टदेव शंकर हैं । भगवान् ने शंकर का स्मरण किया - 'महाराज ! आओ अब आप मुझे शक्ति दो । संहार करना आपका कार्य है । हमारा कार्य पालन करना है । लेकिन हमें आपका कार्य करना पड़ रहा है । इसलिये इस कार्य के लिये आप हमें शक्ति दो।' कहकर श्रीकृष्ण आँखें मूँद कर भगवान् शंकर का ध्यान करने लगे ।

कुछ भक्तों का कहना है कि भगवान् ने यह सोच कर आँखें मूँद ली कि हम तो व्रज में माखन, मिश्री खाने के लिये आये हुए थे । दूध-दही पीते खाते आनन्द मनाने के लिये हम यहाँ आये हुए थे । लेकिन यह अपना-अपना प्रारब्ध है । जहाँ जायँ भूखा वहीं पड़े सूखा । यहाँ हम कुछ सोच कर आये थे परंतु यह तो अपने स्तन पर जहर लपेट कर आयी है। जहर पीना ही पड़ेगा । क्या किया जाय ? ऐसा सोचकर भगवान् अपने भाग्य का स्मरण करने लगे ।

जब दुःख आता है तब ज्ञानी लोग उसे प्रारब्ध के ऊपर डाल देते हैं। इसलिये भगवान् ने आँखें मूँद लीं । भगवान् ने शंकर जी का स्मरण करते हुए कहा - 'देवताओं और असुरों ने जब समुद्र का मन्थन किया था तब समुद्र से जहर निकला जिसके प्रभाव से तीनों लोक जलने लगा था । सभी देवता आपकी शरण में गये और आपने जहर पान करके उन सभी देवताओं तथा तीनों लोकों को सुखी कर दिया था -

जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेहि न भजसि मतिमन्द को कृपाल संकर सरिस॥

(रामचरितमानस)

आपने देवताओं से या मुझसे यह भी नहीं पूछा मन्थन करने से पहले कि- 'अमृत मिल जाता तो क्या उसे तुम हमें दे देते ?' आप महान् हैं । उस समय भगवान् शंकर ने पार्वती जी से पूछा था - 'अब क्या करें ?' आज की पार्वती होती तो कहतीं - 'पहले हमारी चूड़ियाँ फोड़ दो, उसके बाद जहर पीओ ।' लेकिन माता पार्वती जगन्माता हैं -

'कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति ।'

(शङ्कराचार्यकृत देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र)

पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, पर माता कुमाता कभी नहीं हो सकती। माता पार्वती ने कहा - 'भगवन् ! आप पी लें ।' भगवान् शंकर ने लोक कल्याण के लिये विषपान कर लिया । इस प्रकार भगवान् का चरित्र बड़ा विचित्र है । भगवान् शंकर जी ने सोचा, विषपान तो कर लिया । अब इसे कहाँ रखा जाय । मुँह में रखता हूँ तो संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं । एक तो वे होते हैं, जिनका स्वरूप तो बड़ा सुन्दर होता है, परन्तु उनके दिल में जहर होता है -

मन मलीन तन सुन्दर कैसे । विष रस भरा कनक घट जैसे ॥

(रामचरितमानस)

दूसरे वे होते हैं, जिनका दिल तो साफ है, मगर मुँह जहर है। वे कर्कश बोलते हैं । ये दोनों ही ठीक नहीं है । भगवान् शंकरजी ने सोचा इस जहर को न मुँह में रखें, न दिल में रखें । इसे कण्ठ में रख लें । दूसरे भक्तों का यह सोचना है कि भगवान् शंकर विचार करते हैं-'मेरे हृदय में बालकरूप राम हैं । वह बालक कहीं जहर न पी ले । वाणी में राम-नाम रूपी अमृत है । अमृत और विष का कोई मेल नहीं है । इसलिए इसे गले में डालो । **'यच्चकार गले नीलं'** भगवान् शंकर ने विषपान कर लिया । उनकी कोई क्षति नहीं हुई । विष ने अपना इतना प्रभाव दिखाया कि कर्पूर धवल उनका श्रीअंग था। उनका कण्ठ नीला पड़ गया। **'तच्च साधोर्विभूषणम्'** (श्रीमद्भागवत 8/8/43) वह उनका विभूषण बन गया ।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥

(श्रीमद्भागवत 8/8/44)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रायः साधुजन लोक के ताप से तप्त हो जाते हैं । इस लोक के ताप से तप्त होना ही भगवान् की आराधना का आधार बन जाता है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा - 'भगवन् ! अब वह जहर तो हम पीयेंगे ही, जिसे पूतना ने अपने स्तन में लपेट रखा है । क्योंकि जहर तो आप ही पचा सकते हैं । हमारी शक्ति नहीं है । कहकर अपने इष्टदेव शंकरजी का ध्यान करते हुए भगवान् ने अपनी आँखें मूँद लीं ।

लौकिक बात यह है कि भगवान् ने सोचा कि हम इससे निबट ही लें। क्योंकि यदि यह यहाँ से भाग गयी तो हमारे मित्रों को मारेगी। इसलिये इसका यहाँ अन्त हो जाना चाहिये । एक भावना भगवान् के मन में और आयी कि यदि इसे दूध ही पिलाना था तो मेरी स्त्री लक्ष्मी का रूप धारण करके हाथ में कमल लेकर क्यों आयी ? अब इसका दूध पीना भी पड़ेगा **'शान्तं पापम्'**। इसलिये भगवान् अपनी आँखें मूँद लिये -

चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः॥

पूतना को आते देखकर भगवान् ने आँखें मूँद लीं । पूतना ने समझा कि यह तो छोटा सा बालक है । किसी भी अपरिचित को देखता है तो डर जाता है । यह मुझको देखकर डर गया है । इसको मारने में क्या दिक्कत है ? जैसे कोई रस्सी के भ्रम में साँप पकड़ ले ठीक ऐसा ही भ्रम पूतना को हो गया ।

वेदान्तियों का उल्टा भ्रम होता है । वे सर्प को रस्सी मान लेते हैं । उसी तरह पूतना को सत्य में झूठ प्रतीत हुआ । पूतना ने भगवान् श्रीकृष्ण को अधिक दुलार-प्यार किया । उसने उसी तरह इतना प्रेम दिखाया, जैसे नकली लोग अधिक रूपक बनाते हैं । जो ढोंगी होते हैं, उनका रूपक इतना बढ़िया होता है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि ये ही सच्चे हैं ।

पूतना ने इतना प्यार दिखाया कि उसे देखकर लोगों ने सोचा-यह यशोदा का बेटा नहीं, बल्कि इसी (पूतना) का बेटा है । उसने झट से भगवान् को गोद में ले लिया । गोद में लेने के बाद अपना स्तन खोला और भगवान् के मुँह में दे दिया । भगवान् ने सोचा--अब क्या करें । आँख तो मूँदें ही हैं । जब आ ही गयी है, तब पीना तो पड़ेगा ही।

गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत्।

(श्रीमद्भागवत 10/6/10)

भगवान् ने अपने हाथों से उसके स्तन को जोरों से पकड़ा और प्राणों सहित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तनों को खींचा । **प्राणैः समम्** अर्थात् **ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्** । (श्रीमद्भगवद्गीता 4/11)

भगवान् का कथन है कि जो जिस प्रकार मेरी शरण में आता है, मैं भी उसका उसी प्रकार भजन करता हूँ । यह मेरा प्राण लेने के लिये अपना स्तन पिला रही है । इसलिये मैं भी इसके प्राण खीचूँगा । इस दुष्टा ने न जाने कितनों के प्राण लिए हैं । पूतना ने कई गोपाल-बालों के प्राण लिये थे ।

उसके प्राण उसके हृदय में भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे कि भगवान् का अवतार हो तो हमारा सायुज्य मोक्ष हो जाय । इसलिये भगवान् ने उन प्राणों को भी खींचा । 'आओ तुम भी आ जाओ । **प्राणैः समं रोषसमन्वितः**' रोष माने क्रोध होता है । क्रोध तमोगुण से होता है। तमोगुण के देवता रुद्र हैं । 'हे भगवन् शंकर ! आप जहर पीजिये, हम दूध पीते हैं ।' कहकर भगवान् ने अपने होठों से उसके प्राणों को जैसे ही खींचा तो उसे पीड़ा होने लगी । जैसे किसी कपड़े को निचोड़ दिया जाय ठीक वैसे ही उसका शरीर निचुड़ने लगा । अब तो वह घबरायी -'अरे ! यह तो आफत हो गयी ।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥

(श्रीमद्भागवत 10/6/11)

'अरे ! छोड़-छोड़' कहकर वह चिल्लाने लगी । उसके सारे शरीर में पीड़ा होने लगी थी । भगवान् ने कहा - 'देखो पूतना ! हमने तुम्हें पकड़ रखा है । हम पकड़ने में देर भले ही करें, लेकिन पकड़ने के बाद हम छोड़ते नहीं हैं । हमारा काम छोड़ना नहीं है ।' भगवान् जिसको पकड़ लेते हैं, उसका छूटना बड़ा ही मुश्किल होता है ।

एक गोपी यमुना में जल भरने गयी । यमुना का जल देखकर उसे अपने प्राणप्रिय श्यामसुन्दर का स्मरण हो आया । उनके प्रेम में डूब गयी । बहुत देर हो गयी । उसे घड़े को भरने का ध्यान ही नहीं रहा। किसी प्रकार जब होश में आयी तो उसने घड़े को जल से भरा । उसे उठाकर घड़े को सिर पर रखा और घर की ओर चल दी । उसको ऐसा लगा कि पीछे से कृष्ण काकरी मार रहा है । उसने घूम कर देखा परन्तु कोई नहीं था । उसने सोचा कि यह मेरा भ्रम था । वह दो-चार डग आगे बढ़ी ही थी कि उसे वंशी की सुन्दर ध्वनि सुनायी पड़ी । मानो कृष्ण मेरा नाम लेकर पुकार रहे हैं । उसे ऐसा लगा । उसने कहा - 'हाय,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्या करूँ । मैं कृष्ण के कारण परेशान हूँ । देर हो जाती है तो सास लड़ती है । ननद ताना मारती है - कहीं कृष्ण मिल गया होगा, उसी के साथ तू खेलती रहती है । यहाँ बहाना बनाती है ।'

उसने सोचा कि आज कृष्ण को हृदय से निकाल दूँ । वह पद्मासन लगाकर मेरुदण्ड सीधा करके प्राणायाम करने लगी । वह पूरक, कुम्भक और रेचक का अभ्यास करने जा रही थी । इतने में वहाँ नारदजी आये। नारदजी ने उससे पूछा - 'गोपी ! क्या कर रही हो ?' वह बोली - 'महाराज! प्राणायाम कर रही हूँ । सुना है कि योगी प्राणायाम के द्वारा मन से सारे विषयों को दूर करके भगवान् की शरण में जाते हैं । मैं सोचती हूँ कि जो कृष्ण मेरे मन में आ गया है । प्राणायाम करके उसे निकाल दूँ क्योंकि इसी के कारण मुझे बहुत कष्ट हो रहा है । मेरा जीवन बड़ा संकटपूर्ण हो गया है ।' आश्चर्यचकित होकर नारदजी मन में कहने लगे कि 'बड़े-बड़े योगीजन विषयों का मन से प्रत्याहार करके जिनमें स्थापित करते हैं, यह बाला उन्हीं भगवान् से अपने आपको अलग करके विषयों में डालना चाहती है । जिनकी क्षणमात्र की इस पूर्ति के लिये बड़े-बड़े योगी उत्कण्ठित रहते हैं, इस भोली बाला को तो देखो, उन्हीं भगवान् को हृदय से निकालना चाहती है । भगवान् को भी देखो वे कैसे हैं । कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, वे हृदय से जाते ही नहीं है - **जित देखूँ तित श्याममयी है** । जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ श्याम ही दिखायी पड़ते हैं। भगवान् कहते हैं - 'हमारे मिलने में भले ही देर हो जाय लेकिन जब मिल जाते हैं, तो छोड़ते नहीं है । छोड़ना हमारा स्वभाव नहीं है ।'

भगवान् ने जब पूतना को नहीं छोड़ा तब उसकी पीड़ा और बढ़ गयी। वह बड़े जोरों से चिल्लायी । यह भूल गयी कि उसने कौन सा रूप बनाया था। वह अपने राक्षसी रूप में प्रकट हो गयी । उसने अपने हाथ से कृष्ण को छोड़ दिया । भगवान् उसके स्तनों को पकड़े लटके रहे। उसे छोड़ा नहीं । वह गोकुल के बाहर भागती हुई गयी । वहाँ वन में इधर-उधर हिलती हुई ऐसी गिरी कि निष्प्राण हो गयी ।

भगवान् श्रीकृष्ण उसकी छाती पर बैठे खेलते रहे । सभी ग्वाल-गोपियाँ उसके पीछे-पीछे दौड़ते हुए 'ले गयी, ले गयी' कहते हुए गाँव के बाहर वहाँ पहुँचे, जहाँ पूतना मरी पड़ी थी । उसकी आँखें मानो कुआँ हैं, नाक मानो गुफा है, दाँत बड़े-बड़े हल के फाल जैसे दिखलायी पड़ रहे हैं। ऐसी भयंकर पूतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को देखकर सभी ग्वाल-बाल, गोपाल डर गये। उन्होंने देखा कि ऐसी भयंकर पूतना की छाती पर बैठे भगवान् कृष्ण खेल रहे हैं ।

गोपियों ने झट भगवान् श्रीकृष्ण को उठाया और यशोदाजी की गोद में दे दिया । यशोदाजी ने चाहा कि हम बालक को दूध पिला दें। परन्तु दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है । यशोदाजी का दूध उन्होंने नहीं पिया । यशोदाजी ने झाड़-फूँक करायी । डोरा डामर कराया। गोपुच्छ भ्रमण कराया । गोपियों ने भगवान् के बारह नामों से उनके बारह अंगों में गोबर की चिपकी लगायी । इस प्रकार उन सबने भगवान् कृष्ण की रक्षा की । इससे यह सिद्ध हुआ कि भगवान् से बढ़कर भगवान् का नाम है । इस प्रकार भगवान् ने पूतना को मोक्ष प्रदान किया ।

कुछ विज्ञों का यह कहना है कि भगवान् ने पूतना को फिर भी नहीं मारा। वह अपने पाप से मर गयी । क्योंकि भगवान् बड़े दयालु हैं। वह भला दूध पिलाने वाली को क्यों मारते ?

यह स्वाभाविक है, बच्चे जब माँ के स्तन को पकड़ते हैं और उनके पैने नख जब स्तन में चुभ गये तो उसमें से खून निकल आया। पूतना के स्तन पर जो जहर लपेटा हुआ था, वह 'इन्फेक्शन' बन गया। उसी से बेचारी मर गयी। भगवान् ने उसे मारा नहीं । भगवान् ने पूतना को वह गति दी, जो माता यशोदा को मिलनी चाहिये । इसलिये उद्धवजी विदुर जी से कहते हैं -

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

(श्रीमद्भागवत 3/2/23)

बगुले की बहन को बकी कहते हैं । बगुले की बहन और क्या होगी। बगुली ही तो होगी । ढोंगी माँ बनकर, स्तनों पर कालकूट विष लगाकर पूतना ने भगवान् को मारने की नीयत से उन्हें दूध पिलाया। परन्तु भगवान् ने उसके दुर्गुणों को नहीं देखा । बस, उन्होंने यही देखा कि इसने मुझे दूध पिलाया है, अब यह मेरी माँ हो गयी । इसलिये उसको भगवान् ने वही गति दी, जो यशोदा माता को मिलनी चाहिये ।

'कं वा दयालुं शरणं व्रजेम'

श्रीकृष्ण को छोड़कर कौन ऐसा दयालु है, जिसकी शरण में हम जायँ। इस प्रकार पूतना के मोक्ष का चरित्र जो कोई भी सुनता है, उसका भगवान् गोविन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्रेम हो जाता है । पूतना के मोक्ष के पश्चात् नन्दजी वहाँ पहुँचे । वहाँ उन्होंने देखा कि राक्षसी मरी पड़ी है । सब ग्वाल-बाल उसे घेरे हुए हैं । नन्दजी ने उन सबसे कहा - 'इसको ठिकाने लगाओ, यह फिर कहीं जीवित न हो जाय ।' सभी ग्वाल-बालों ने मिलकर लकड़ियाँ इकट्ठी कीं । कुल्हाड़ी से उसके अंगों को काट-काटकर लकड़ियों पर रखते गये और अन्त में उसमें आग लगा दिया ।

इस प्रकार उसका दाह-संस्कार किया गया । उसके शरीर के जलने पर उसमें से अंगार जैसी सुगन्धि निकल रही थी । भगवान् जिसका स्तन-पान करे, भला उसके शरीर में दुर्गन्ध कहाँ रह जाती है ?

राजा परीक्षित् बोले - 'महाराज ! भगवान् अवतार धारण करके जिन-जिन लीलाओं को करते हैं, वे बड़े मनोहर होते हैं । इसलिये आप वह कथा मुझे सुनाइये ।

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसाम्।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत्॥

(श्रीमद्भागवत 10/7/2)

महाराज ! जिस चरित्र के सुनने से मनुष्य के मन की अरति दूर होती है, वह कथा हमें सुनायें ।' यदि अरुचि दूर करना हो तो भगवान् की कथा सुनें। तृष्णा बढ़ गयी हो तो भगवान् की कथा सुनो । यदि कथा से मन ऊबता है तो भी कथा सुनो । तुम्हारे मन में कथा के प्रति तृष्णा हो जायेगी और चित्त भी शुद्ध हो जायेगा ।

भगवान् में भक्ति और भगवान् के भक्तों में प्रीति हो जायेगी। **'तदेव हारं' 'हरेः चरित्रं हारं'** भगवान् का चरित्र ही हार है । यदि आप हमें उस योग्य समझते हैं तो वह हमें सुनाइये ।

शुकदेवजी बोले - 'एक दिन भगवान् का जन्म नक्षत्र आया। भगवान् ने अपने आप करवट ले ली । यशोदाजी ने उत्सव मनाया । उन्होंने अपने स्वजन और गाँव की स्त्रियों को निमन्त्रित किया । ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर उनको भोजन दिया, वस्त्र दिया और उन्हें दक्षिणा दी। आने वाली महिलाओं के स्वागत में तत्पर हो गयीं । अपने कृष्ण को दूध पिलाया । जब उनको नींद आने लगी, तो अपने घर में एक बहुत बड़े शकट के नीचे पलना रखकर उसमें उनको सुला दिया । उनके पास में ग्वाल-बाल थे । यशोदाजी ने उनसे कहा - 'यह जाग जाय तो हमको बतला देना ।' यशोदाजी काम में लग गयीं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इधर श्रीकृष्ण जाग गये और रोने लगे । हाथ-पैर फटकारने लगे। पैर फटकारते-फटकारते उन्होंने अपना कोमल चरण ज्योंही शकट (गाड़ी) पर मारा, वह उलट गया-**'विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनम्।** (श्रीमद्भागवत 10/7/7)' सब टूट-टूट कर बिखर गया। उसकी आवाज सुनकर सबलोग आये । उलटे हुए शकट को देखकर आपस में कहने लगे - 'यह कैसे उलट गया ?' ग्वाल-बालों ने कहा - 'इसी ने तो उलटा है ।' वह शकटासुर था, जो भगवान् द्वारा मारा गया ।

भगवान् का नामकरण संस्कार किया गया । उनका नाम कृष्ण रखा गया, वासुदेव रखा गया । बलदेवजी का नाम राम और संकर्षण रखा गया । अब भगवान् छोटे से बालक के रूप में घुटनों के बल चलने लगे। उनकी बड़ी चंचल स्थिति थी । अपने हाथ-पैर घसीटते हुए चलते थे । कभी बछड़े की पूँछ पकड़कर खड़े हो जाते तो बछड़े भाग जाते थे । वे इतने चंचल थे कि कभी कुत्ते के मुँह में हाथ डाल देते थे तो कभी पैने सींग वाली गाय के पास चले जाते थे। कभी आग पकड़ने लगते थे तो कभी जल में झाँकने लगते और कभी व्रज की कर्दम में चल जाते ।

एक बार माता यशोदा ने इनको उबटन लगाया, स्नान कराया और रेशमी झँगुली पहनायी । उनके आँख में काजल लगाया, उनके बाल सँवारे । इस तरह उन्हें सजाकर जैसे ही किसी काम से भीतर गयीं । ये घुटने के बल चलकर व्रज की कीचड़ में पहुँच गये । अपने शरीर को कीचड़ से लथपथ कर लिया । माता यशोदा ने जब लौट कर देखा कि इसने हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ कर दिया तो उन्हें उन पर बड़ा क्रोध आया।

पङ्कविलिप्तवपुषं प्रसमीक्ष्य सद्यः
कृष्णं तदा वदति कोपवशाद् यशोदा
त्वं सूकरेति गतजन्मनि पूतनारे
इत्युक्ति सुस्मितमुखोऽवतु नो मुरारिः ॥ (गोपालचम्पू)

पंक से उपलिप्त शरीर को देखकर यशोदा कृष्ण से बोली -'अरे पूतना के शत्रु, लगता है तू पहले जन्म का सूकर है । भगवान् मुस्कुराये कि मैया को पता कैसे लग गया । हमने शूकर अवतार तो लिया ही था। कुछ दिनों बाद भगवान् के पैर सीधे हो गये । माता ने खड़ा करके उनको चलना सिखाया । वे खड़े होकर दो चार-डग चलें और गिर पड़े । मैया उठाकर चूमती थीं, प्यार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करती थीं और फिर चलाती थीं ।

जब ये चलने लगे तब इन्होंने अपनी एक टोली बनायी। अपने बराबर के बालकों की एक टोली बनाकर बलरामजी सहित गोपियों के हृदय में आनन्द लेने के लिये क्रीड़ा करने लगे ।

गोपियाँ यशोदाजी के द्वारा भगवान् को माखन, मिश्री, दूध-दही खिलाने को भगवान् से एकान्त में प्रार्थना करती थीं - 'प्रभो! यदि हमने युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर में कोई पुण्य किये हों तो आप हमारे घर में आयें और हमारा दूध-दही चोरी करके खायें ।' उनकी भक्ति को देखकर भगवान् उनके यहाँ जाते थे । वे गोपियाँ भी अपने प्रेम को छिपाकर कृष्ण को डाँटती थीं - 'हमारे घर में क्यों आये ?'

किसी गोपी के घर में भगवान् गये और उसका माखन चुराकर खाने लगे । इतने में वह गोपी वहाँ आ गयी । वह बाहर के चौखट के पास हाथ फैला कर खड़ी हो गयी तथा कृष्ण को डाँटती हुई बोली -

रे रे नन्दशिशो किमत्र भवने मातुर्भयादागतः ।
एते के मम साक्षिणो वद सखे किं गूहितं जंघयोः ?
चौर्यं नात्र कृतं मयाऽत्र सुमुखे मार्जारसंरक्षितम् ।
लग्नं किं नवनीतमत्र वदने लग्नं यशोदाकरात् ॥ (स्फुट)

अरे नन्द के लाल ! तू मेरे भवन में क्यों आया है ?' भगवान् ने तत्काल बहाना बनाया - **मातुर् भयादागतः** । 'अपनी माता यशोदा के भय से आया हूँ । आज वह मुझे मारने दौड़ी । मैं उनसे बचने के लिये आकर तेरे घर में छिपा हूँ ।' उसने पूछा - 'अच्छा तो तुम मैया के डर से आये हो । ये ग्वाल-बाल तेरे साथ क्यों हैं ?' श्रीकृष्ण ने कहा - 'मैं जानता था कि तू मुझपर चोरी लगायेगी । इसलिये मैं अपने साथ गवाह लाया हूँ ।'

वह पूछती है - '**एते के?**' श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया -'**मम साक्षिणः**' वह बोली 'अच्छा, गवाह की बात तो हम तब करें, जब हम देख न लें । आप अपने पैरों के भीतर क्या छिपाये हैं ?'

'हे सुमुखे ! हमने चोरी नहीं की है । जब हम तुम्हारे घर में आये तो हमने देखा कि एक बिल्ली बार-बार तुम्हारे घड़े की तरफ जा रही थी । हम उसे भगा रहे थे और पता नहीं कब आकर वह माखन खाने लगी थी । हम उसे हटाने का प्रयत्न करने लगे । जब वह नहीं भागी, तब हमने घड़े को पैरों के भीतर छिपा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया ।'

वह बोली - 'अच्छा, आप बड़े ईमानदार और परोपकारी हैं । लेकिन आप यह बताइये - **'लग्नं किं नवनीतं मत्र वदने'** अर्थात् आपके मुँह में मक्खन कैसे लग गया ?' श्रीकृष्ण बोले - **'लग्नं यशोदाकरात्'** माने मेरे मुख में तेरे घर का मक्खन थोड़े ही लगा है । मैया यशोदा हमको मक्खन खिला रही थीं । उन्हीं के हाथ का यह मक्खन लगा हुआ है। हमने उसे पोछा नहीं, यह बात अलग है ।' इस प्रकार गोपी को उत्तर देते हुए भगवान् भाग खड़े हुए । भगवान् के दर्शन से गोपियों के नेत्र तृप्त नहीं होते थे । उनको हमेशा भगवान् के दर्शन की आशा बनी रहती थी ।

एक बार गोपियों का झुण्ड यशोदा जी के आँगन में गया । वे आँगन में जाकर बोलीं - 'यशोदा ! अब हम तुम्हारी नगरी में नहीं रहेंगे।' यशोदा ने पूछा - 'क्या बात है ? तुम्हें कौन सा कष्ट है ?' वे बोलीं -'तुम्हारे राज्य में तो बड़े सुख से रही । लेकिन जब से तुम्हारा लाडला जन्मा है, इसने हमको हैरान कर रखा है ।' यशोदाजी बोलीं - 'क्या करता है ?' इसके उत्तर में गोपियाँ उनसे भगवान् की शिकायत करती हुई कहती हैं - 'वह हमारे बछड़ों को खोल देता है।' यशोदाजी बोलीं - 'तुम भी खोलती होगी । मेरा बेटा तुम्हारा काम कर देता है।' गोपियाँ बोलीं -**'असमये'** माने दूध दुहने के पहले ही खोल देता है ।' यशोदाजी बोलीं -'डाँट दिया करो ।' गोपियों ने कहा - 'जब हम डाँटती हैं, तब वह ताली पीट कर हँसता है, डरता नहीं है ।' यशोदाजी बोलीं -'बस इतना ही करता है कि और कुछ ?' गोपियाँ बोलीं - 'हाँ, अब तुम्हारे लड़के में चोरी की आदत पड़ रही है । जरा देख लो ।' यशोदाजी बोलीं -'तुम्हारा कौन सा जेवर, कपड़ा मेरे बेटे ने चुराया है ?' गोपियाँ बोलीं - 'वह कुछ और नहीं चुराता है । जो खाने वाली वस्तु होती है, उसी को चुराता है। हमारा दही, दूध, मक्खन खाता है ।' यशोदाजी बोलीं - 'अपनी वस्तु सुरक्षित रखो तो क्यों कोई खायेगा ।' गोपियाँ बोलीं - 'वह चोरी के कई तरीके जानता है । मानो पेट से यह विद्या सीख कर आया है ।' यशोदाजी बोलीं - 'ऊपर बाँध दिया करो ।' वहाँ उसका हाथ नहीं जायेगा ।' गोपियाँ बोलीं - 'हमने यह भी करके देख लिया । छींके में बाँध करके रख दिया। पर वह ग्वाल-बालों के साथ में जाता है । वहाँ पीढ़ा रख देता है । उसके ऊपर ओखल औंधी कर रख देता हैं और उसके ऊपर ग्वाल-बालों को खड़ा कर देता है । उनके कन्धे पर स्वयं खड़ा होता है और छींके से माखन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकाल लेता है । यदि इतने पर भी माखन न निकले तो वे अपनी लाठी से घड़े में छेद कर देता है । जैसे नल में कोई पानी पीये वैसे ही वह दूध दही पीता है।' एक बार लाठी से मटके में छेद करके भगवान् जब दूध पी रहे थे, तब वहाँ एक गोपी आ गयी । 'क्या करते हो ?' कहकर गोपियाँ उनको पकड़ने लगीं। तब भगवान् ने उसकी आँखों में दूध छिड़क दिया । वह अपनी आँखों को पोंछने लगी, तब तक भगवान् भाग गये । इस तरह से वह चोरी करने का बहुत उपाय जानता है । यशोदाजी बोलीं - 'अँधेरे में रख दिया करो ।' गोपियाँ बोलीं - 'हमने अँधेरे घर में भी रखकर देख लिया। तुमने इसको जो आभूषण पहना रखे हैं, उनकी मणियों के कारण अँधेरे घर में उजाला हो जाता है । उससे अँधेरे में भी वह सब कुछ देख लेता है । यशोदाजी बोलीं - 'ठीक है, मैं सब गहने उतार लूँगी ।' गोपियाँ बोलीं - 'उसका शरीर ही मणि है।'

यशोदाजी बोलीं - 'फिर ठीक है, मेरा बेटा जो कुछ खाता है, इस बात का तुम सबको दुःख होता है । मैं तो मनाती रहती हूँ फिर भी नहीं खाता है ।' गोपियाँ बोलीं - 'तुम्हारा बेटा खाये, कोई बात नहीं । हमारा बेटा तुम्हारा बेटा एक ही है । लेकिन यह ग्वाल-बाल की टोलियों को लेकर जाता है ।' यशोदाजी बोलीं - 'ठीक है, जितना तुम्हारा दूध-दही गया हो, उतना सब हमसे ले जाओ।'

पुत्र की बुराई मेरे कस के करे जे माँ
मेरो प्राण प्यारो तेरो कहा करि आयो है।
माखन को माड लेके द्वार पे यशोदा बैठी,
दूनो दून लेओ वीर जाको जेतो खायो है॥
आँचल पसारत हौं माखन के काज आज,
गारी मत देओ मो गरीबनी को जायो है॥

जितना मेरे बेटे ने खाया है, जितना ग्वाल-बालों ने खाया है, उसका दो गुना तुम सब लेती जाओ, लेकिन मेरे लाल को गाली मत दो। बड़ी तपस्या से, देवताओं की बड़ी आराधना से बुढ़ापे में मैंने इसको पाया है । कोई इसकी बुराई करता है, तो मुझे बड़ा दुःख होता है ।' इस तरह से गोपियाँ भगवान् की शिकायत करती हैं और भगवान् माता यशोदा के पीछे से उन्हें अँगूठा दिखाते हैं - 'तुम कुछ करो हमारी माँ कुछ नहीं सुनती हैं।' गोपियाँ कहती हैं - 'ऐसी बात नहीं है । हम बहुत सावधानी से रहती हैं । लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि जब उसे कोई सामान नहीं मिलता है तो कहता है - 'हम कल आग लेकर आयेंगे । यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ नहीं मिला तो आग लगाकर जायेंगे । बहुत बुरा लगता है। हमारे जो बच्चे पलने में सोये रहते हैं, उनको चिकोटी काट लेता है । वे रोने लगते हैं ।' भगवान् हाथ जोड़कर इशारे से बोले - 'अब मत बोलो, मैया मारेगी।' गोपियों को हँसी आ जाती है । यशोदा कृष्ण को तो देखती नहीं हैं । वह गोपियों के मुँह पर मुस्कुराहट देखकर कहती हैं - 'अच्छा, तुम हँस रही हो। इसका मतलब है, तुम सब झूठ बोल रही हो । मेरा बेटा कुछ नहीं करता ।' तब भगवान् कहने लगे - 'मैया ! देख, हम तो आपके पास ही रहते हैं । कभी कहीं जाते नहीं है। ये हमारे ऊपर कलंक लगाती हैं।' इस तरह गोपियाँ प्रसन्न होकर चली जाती हैं। उनके हृदय में भगवान् के प्रति बड़ा प्रेम है । कभी-कभी वह प्रेम प्रकट हो जाता है।

एक बार दिन में किसी गोपी के घर में भगवान् माखन चुराने गये । गोपी की आहट सुनकर जब वे भागने लगे तब वह कहती हैं -

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन ।
आतप तापित भूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥ (स्फुट)

यदि तुमने माखन ले लिया तो ले लिया । कोई बात नहीं है। इस समय धरती तप रही है । तुम्हारे चरण-कमल बहुत अधिक कोमल हैं । कहीं फफोले न पड़ जायँ । मत दौड़ो । मत दौड़ो ।' वे कुछ नहीं बोले और चले गये । तब फिर बोली -

क्षीरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।
मानसे मम घनान्धकारे नन्दनन्दन कथं न निलीयसे ॥ (स्फुट)

यदि क्षीरसार (माखन) चुराकर तुम्हें अंधेरी जगह में छिपना ही है तो कहाँ जाते हो? मेरे हृदय में ही अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ है । आओ यहीं छिप जाओ ।' यह गोपियों का भगवान् के प्रति भाव है ।

कुछ भगवल्लीलाएं हमने आपको सुनाईं । अब समय हो गया है । श्रीमद्भागवत अनन्त है। भगवान् की कथा अनन्त है - **हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता** (श्रीरामचरितमानस) जितने दिन भी भगवान् की कथा सुनायी जाय वह कम ही है। अभी जो प्रसंग सुनाया गया, अति संक्षेप में सुनाया गया है । फिर भी इतना समय लग गया । पहला श्लोक जो मङ्गलाचरण का है, उसी में महीनों लग जाते । भगवान् के चरित्र की महिमा अनन्त है । अब यहीं कथा का विराम करते हैं । आप हरि का स्मरण करेंगे तो निश्चित रूप से आपको सुख-शान्ति और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख का अनुभव होगा । सब लोग मिलकर भगवान् का नाम लें ।

श्रीराम जय राम जय जय राम॥5॥
गोविन्द जय जय गोपाल जय।
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय॥5॥

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो।
प्राणियों में सद्भावना हो। विश्व का कल्याण हो।
गो माता की जय हो । गो-हत्या बन्द हो।
हर हर महादेव ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

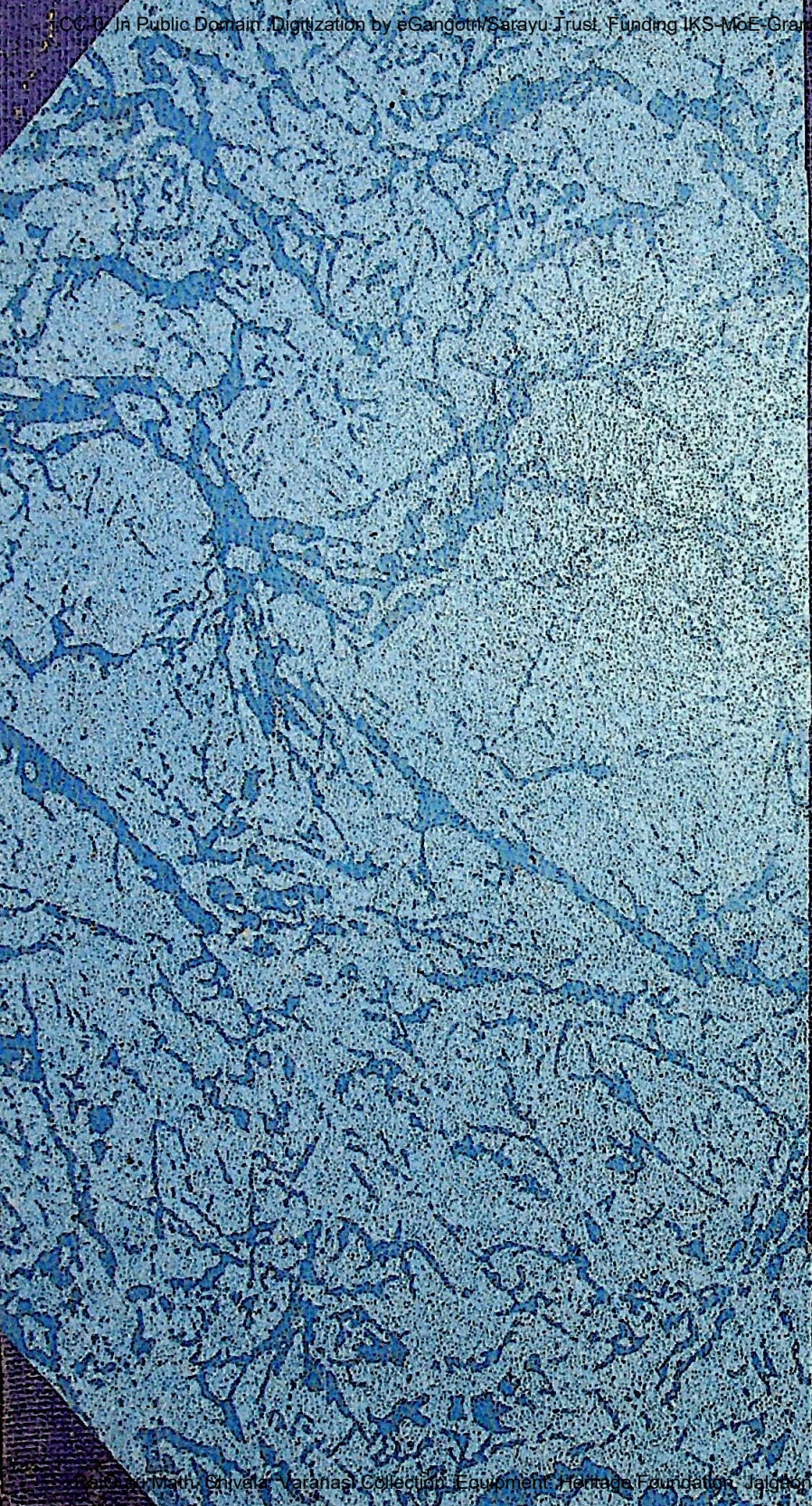

Ramakrishna Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaipur